



# परमानन्द-सागर का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत  
शोध-प्रबन्ध का सार

T-2061

निर्देशक :—

डॉ० जी० एल० शर्मा

डी० लिट०

हिन्दी-विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,  
अलीगढ़ ।

प्रस्तुतकर्ता :—

रामस्वरूप

एम० ए०

## **“ परमानन्द सागर का काव्यशास्त्रीय क्लृप्ति ”**

### **प्रबन्ध-सार**

शोध प्रबन्ध का प्रमुख बाधाग्रन्थ डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल, कलिंगद सुस्लिम विश्वविद्यालय, कलिंगद द्वारा सम्पादित “ परमानन्द सागर ” है।

परमानन्द सागर का क्लृप्ति जिन साहित्यिकों के बाधा पर किया है, शोध प्रबन्ध में उनके संक्षिप्त शास्त्रीय विवेचन करने का भी क्यासंभव प्रयास किया है। शास्त्रीय क्लृप्ति की सुविधा की दृष्टि से शोध प्रबन्ध को बाठ कथायों में विभक्त किया है, जिनका क्रमबद्ध सारांश निम्न लिखित है :

### **प्रथम कथाय**

विषय-प्रवेश के अन्तर्गत षण्यं- विषय के क्षेत्र विस्तार सहत्व एवं उपादेयता को विवेचन है जिसमें निम्नलिखित तथ्यों का उद्घाटन है :

(१) परमानन्दसागर एक भक्तिपरक रचना है जिसमें मुख्यतः श्रीकृष्ण जीराधा विषयक लीलाओं का गायन है।

(२) भक्तिपरक होते हुए भी साहित्यिक

दृष्टि से भी अत्यन्त समृद्ध है।

(२) साहित्यिक समृद्धि के कारण रचना का शास्त्रीय अनुशीलन करना अपेक्षित है।

विषय के उपरान्त कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेक है, जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित तथ्य उजागर हुए हैं :

(१) कवि स्वभाव से अत्यन्त भावुक, सत्य-निष्ठ, सात्विक धृति एवं भक्ति-भावना आदि मानवीय गुणों से युक्त था ।

वाक्यम ब्रह्मचारी होने के कारण उनका व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली था ।

(२) वत्सभ सम्प्रदाय के आठ कीर्तनकारों में प्रमुख स्थान था ।

(४) गौ० विट्ठलनाथ जी ने उन्हें साक्षात् 'लीला धानर' की उपाधि से विभूषित किया था ।

(५) वे अपने समय के कुशल संगीतज्ञ थे ।

(६) कवि-जीवन एक कृष्ण भवत के रूप में प्रारम्भ हुआ था ।

(७) कवि महाशु वत्सभाचार्य के शिष्य थे ।  
उनका जन्म संवत् १५५० के लगभग कन्नौज के एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार

में हुआ था तथा संवत् १६४१ में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दूसरे दिन नवमी को उस महान् आत्मा ने अपनी भौतिक उरीर को त्याग दिया ।

परमानन्ददास जी के ग्रन्थों का विवरण निम्नलिखित है : दान लीला, उदय लीला, ध्रुवचरित, संस्कृत रत्नमाला, दधि लीला, परमानन्द दास जी की फल तथा परमानन्द सागर हैं। परन्तु इनमें से अन्तिम दो ग्रंथ ही उपलब्ध हैं, इन्हीं की प्रामायिक ग्रन्थ माना है।

कवि का कोई स्वहस्त लिखित ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। प्राचीनतम प्रति का संवत् १७५४ मिलता है, जो विषा विभाग, काकरोली में सुरदास है, जिसकी फल संख्या ११२१ है।

कवि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के पश्चात् 'परमानन्दसागर' के अध्ययन में विभिन्न विद्वानों के योगदान का विवेक है :

परमानन्द सागर के ज्येष्ठताओं में श्री दासिदास दास जी परीस, डा० दीनदयालु गुप्त, डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल आदि ही प्रमुख हैं।

श्री दासिदास परीस जी ने परमानन्द सागर के अध्ययन में भक्त का भागवतीय रूप, सागर में भागवती लीला तथा सेवा का रूप आदि तीर्थों के अन्तर्गत अध्ययन किया है। परीस जी ने 'परमानन्द सागर' को 'दूर सागर' के समकक्ष माना है।



डा० दीन दयालु गुप्त ने अपनी शोध प्रबन्ध 'वटशाप और वल्लभ सम्प्रदाय' के अन्तर्गत परमानन्द दास जी के जीवन वृत्त तथा उनकी रचनाओं का विवेक प्रस्तुत किया है। आपने 'परमानन्द दास जी के काव्य का विवेक' नामक शीर्षक से उनके काव्य के विषय, भाव- व्यञ्जना, बाल भाव चित्रण, शृंगार प्रेम आदि विषयों पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला है। परमानन्द दास जी के काव्य के विषय में गुप्त जी के प्रस्तुत विचार इस प्रकार हैं :

(१) परमानन्द दास जी का काव्य प्रबन्धात्मक नहीं है।

(२) यह एक सुवक्त्र काव्य है।

(३) कवि ने अपने वर्णन में प्रेम पूर्ण रसवती ब्रजलीलाओं को ही स्थान दिया है।

(४) उन्होंने भाव- सौन्दर्य एवं काव्य-शक्ति के सुव्यङ्ग्य रूप की सराहना की है।

(५) भावात्मक अनुभूति के विषय में परमानन्द दास जी को 'धूर' के समान निश्चित किया है।

डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल जी ने कवि को प्रसन्नः शृंगार रस का ही कवि निश्चित किया है जिसके वर्णन में कवि 'धूर' की भाँति पंडित है। कवि दृष्टि श्रीकृष्ण की बात, किशोर, एवं पौगण्ड लीला की ओर ही अधिक केन्द्रित रही है। उनके काव्य में

साहित्यिकता का प्रहुर समाविष्ट है।

निष्कर्षतः हम कह सकती हैं कि "परमानन्द सागर" भक्ति भावनाओं से जीत प्रीत एक भक्तिपरक पुमधुर काव्य रत्ना है। जिसमें साहित्यिकता का कोई अभाव नहीं है। "परमानन्द सागर" की अधिकांश विषय वस्तु "सुरसागर" की विषयवस्तु से साम्य भाव रखती है।

### द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय के अन्तिम भाग, शारंगीय विवेचन, परमानन्द सागर में भाव- संस्थापन पद्धति एवं रत्नों के ऐदान्तिक विवेचन के पश्चात् परमानन्द सागर में उनका विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

(१) भाव- प्रत्येक व्यक्ति की अन्तरात्मा का एक विशेष धर्म है।

(२) भावों का केवल अनुभव ही किया जा सकता है।

(३) भाव तीन प्रकार के होते हैं :

१- इन्द्रियजन्य भाव

२- प्रजात्मक भाव

३- गुणात्मक भाव

परमानन्द सागर में भाव संस्थापन पद्धति का

विकास क्रमिक रूप से हुआ है। उसमें तबूष सर्व मनोनुकूल विष्णु का गुण है। भाव संस्थापन पद्धति के पश्चात् भारतीय व्याचार्यो द्वारा गृहीत रस-सिद्धान्त सर्व रस निष्पत्ति का विवेचन किया गया है।

रस निष्पत्ति के विषय में भारत मुनि के सुप्रसिद्ध सिद्धान्त छिन्नक कथन का वर्णन किया गया है :

विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद् रस निष्पत्तिः

अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

रस निष्पत्ति के विवेचन के पश्चात् परमानन्द सागर में प्रयुक्त विभिन्न रसों के सिद्धान्तिक विवेचन सर्व 'सागर' में उनका वर्णन प्रस्तुत किया गया है जिनमें शृंगार रस ( संयोग विप्रलम्भ ) शान्त, रस, वात्सल्य रस, वदभुत रस, करुण रस, रोद्र रस, वीर रस आदि प्रमुख हैं।

(१) शृंगार रस : सिद्धान्तिक विवेचन

शृंग + वार = शृंगार । शृंगार का पूर्ण अर्थ ' कामोद्देक की प्राप्ति ' होता है। शृंगार का स्थायी भाव रति है। जिसका तात्पर्य अर्थ प्रेम है। शृंगार ही एक मात्र रस है जिसमें जालम्बन वीर आशय को चेष्टाई एक दूसरे को उद्योत करती है।

रस वर्णन

परमानन्द सागर में शृंगार के दोनो ही

प्रमुख पक्षों के उदाहरण दर्शनीय हैं, परन्तु कवि की अधिक सफलता विप्रलम्भ शृंगार के वर्णन में मिली है। यथा-

ब्रज के विरही लोग बिचारे ।

बिन गोपाल ठी से ठाढ़े बति कुबल तन हारे ॥

०

०

परमानन्द स्वामी<sup>१</sup> किनु ऐं वैस बन्दा किनु तारे ॥ ९

परमानन्द सागर में अन्य रसों की अपेक्षा शृंगार रस की प्रवृत्ति है। कवि शृंगार रस के दोनो ही पक्षों ( संयोग, विप्रलम्भ ) के वर्णन में अधिक वक्त है। परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं है कि " परमानन्द सागर " में अन्य रसों की खोजना नाम मात्र की ही हुई है। उसमें वास्तव्य रस वर्णन के भी सुव्यवस्था बिना दर्शनीय है।

" परमानन्द सागर " में संवारी भावों की कृष्ण भी दर्शनीय है। संवारी भावों में " वीर्युजय ", स्तम्भ , स्मृति, वापस्य , चिन्ता आदि का वास्तव्य रस है। इस ही पद में एक संवारी भावों का समन्वित रूप मिलता है। यथा-

जब ते प्रीति स्वाम सौ कीनी ।

ता दिन ते मेरे ल नैननि नैकहु नहि त लीनी ॥

०

०

परमानन्द प्रु पीर प्रेम की काहु सौ नहि कहिए ॥

उपर्युक्त पदितियों में चिन्ता, स्मृति एवं पीर संवारी भावों का वर्णन है। इस प्रकार कवि ने " सागर " की विषय-

वस्तु में राधा ब्रीकृष्ण तथा गोप, गोपियों के लीला वर्णन द्वारा विभिन्न प्रकार के संवारी भावों का सौन्दर्य परिलक्षित होता है।

### तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय में परमानन्द सागर में कर्तकार योजना का वर्णन किया गया है। वर्णन के इस क्रम में सर्वप्रथम कर्तकारों की व्युत्पत्ति, महत्त्व तथा शास्त्रीय विवेचन भी किया गया है। इसके उपरान्त 'सागर' में कर्तकार योजना का वर्णन है।

कर्तकार शब्द की रचना संस्कृत भाषा के दो शब्दों के योग से मानी गयी है 'कर्त' और 'कार' । कर्त शब्द का अर्थ वास्तव्यता है और 'कार' शब्द से अविज्ञाय जो प्रदान करे अर्थात् जो उत्पन्न करे वही काव्योपादन कर्तकार है।

सर्वप्रथम जाचारे भामह ने काव्य के सौन्दर्यो-  
करण के लिए कर्तकार तत्त्व को एक आवश्यक तत्त्व निश्चित किया है।

कर्तकारकाव्य की समस्कृति के ही विधायक नहीं है, बल्कि स्वास्वादन में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

भामह ने कर्तकारों को तीन वर्गों में विभक्त किया है :

१- शब्दगत

२- अर्थगत

३- शब्दार्थगत

भारत मुनि ने केवल चार कर्तकार माने थे ।  
 नामह ने ३६ । इस प्रकार कर्तकारों के विषय पैदावार्यों के विभिन्न मत  
 रहे हैं ।

परमानन्द सागर में कर्तकार योजना का प्रयोग  
 स्वाभाविक प्रच्छुपि में हुआ है। परमानन्द सागर एक कर्तकारवादी काव्य  
 न होकर एक भक्तिपरक सरस काव्य है, जिसमें शब्दाभित और वर्णस्थित  
 कर्तकारों के विविध रूप दर्शनीय हैं।

कर्तकार योजना में कृतप्रास, उपमा, रूपक  
 तथा उत्प्रेक्षा कर्तकारों की अधिक भरमार रखी है। श्रीकृष्ण और राधा  
 के रूप सौन्दर्य में कृतपम उत्प्रेक्षाओं का विशेष वर्णन है। सागर के एक  
 ही पद में लोक कर्तकारों के दर्शन होते हैं।

‘उत्प्रेक्षा’ कवि का सर्वप्रिय कर्तकार कहा  
 जा सकता है।

### चतुर्थ अध्याय

प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय में कन्द नियोजना  
 का आयोजन है, जिसके अन्तर्गत रस विधान का महत्त्व, विवेचन, व्युत्पत्ति,  
 भेद एवं शास्त्रीय विवेचन के उपरान्त परमानन्द सागर में निहित प्रसृत कन्द  
 एवं उनके सौन्दर्य का विवेचन किया है।

काव्यशास्त्रियों के कथनानुसार वेदों में भी छन्दों का ज्ञान सर्व प्रयोग मिलता है। उन्होंने छन्द शास्त्र के ज्ञान में वेदों को भी पैरु पीणित किया है। छन्द काव्यान्तर्गत प्रसाद गुण संवार कराने वाला एक श्रेष्ठ उपादान है।

पं० रामदत्त त्रि० के विचारानुसार ,

“ छन्द ही काव्य का संगीत है, संगीत में जो संयम ताल है वही छन्द है, वही संयम व वित्त में छन्द से जाता है। ”

छन्द शब्द की व्युत्पत्ति “ कदिर ” धातु से हुई है जिसका अर्थ है जो आश्वासन कर सके ।

छन्द वर्णों जथा मानाओं की संख्या उनका क्रम, गति, यति, आदि के नियमों से बद्ध एक योजना है, जिसके अन्तर्गत काव्यकार अपनी काव्यमयी वाणी में अपनी विचारों की अभिव्यक्ति करता है।

छन्द दो प्रकार के होते हैं :

(१) नास्त्रिक छन्द

(२) वर्णिक छन्द

नास्त्रिक छन्द - मंत्र प्रत्येक चरण की मात्र मानाओं की गणना के आधार पर की जाती है।

वर्णिक छन्द के प्रत्येक चरण की मात्र वर्ण जथा बद्ध गणना के आधार पर की जाती है।

परमानन्द सागर के अन्तर्गत निम्न लिखित  
शब्दों का वर्णन मिलता है - विष्णुपद, रंकर, सिंह, सार, तार्टक,  
चवपैया, रौला, फूलना, चौपाई, दोहा, हरिगीतिका, गीतिका आदि  
हैं। परन्तु अपनी प्रबन्ध में उन्होंने शब्दों का वर्णन किया है जिनका प्रयोग  
सर्वाधिक रहा है। उनका क्रम इस प्रकार है :

चौपाई, लावनी, दोहा, सार, तार्टक,  
चवपैया, रौला, गीतिका, फूलना आदि। इनमें भी सर्वाधिक फूलना  
और गीतिका शब्दों की हैं।

‘सागर’ की शब्द योजना प्रसंगानुसृत, ली-  
लात्मकता, प्रवाह, अर्थ हीर्ष्य, सरलता, स्वाभाविकता, सुबोधता, ऐतिहा-  
सिकता, आदि गुणों से सम्पन्न है।

#### पंचम अध्याय

प्रबन्ध के इस प्रकरण में ‘सागर’ की  
भाषा और उसके कलात्मक संविधान का विवेचन है, जिनके अन्तर्गत भाषा-  
लीला, वर्ण-योजना, कलात्मक रूप, भाषा का प्रस-  
रूप, मुहावरे, लोकोपित्याय, सूक्तियाँ, लड़ी बोली का प्रयोग, शब्द निर्माण की प्रवृत्ति  
अनुकरणात्मक शब्दों का प्रयोग, शब्दावली ( तत्सम, धर्म तत्सम, तद्भव,  
देशज, विदेशी ) प्रत्येक भाषा के स्वल्प आदि विषयों का विवेचन किया है।



भाषा में मध्यकालीन ब्रजभाषा के प्रयोग के साथ साथ ऊँची बोली के प्रारम्भिक रूप के दर्शन होने लगते हैं। इसके अतिरिक्त राजभगानी, अवधो, मातवो, बुन्देलखण्डी शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। सर्वाधिक प्रयोग ब्रजभाषा के तद्भव शब्दों का है। 'सागर' की भाषा कन्नीजीभर तिर हुर है।

'सागर' के इस भाषा वैविध्य के परिधि में भी साहित्यिक सौन्दर्य का भावानुसृत विकास परिलक्षित होता है। वर्ण-योजना में माधुर्य एवं संगीत की कृत्रिम शृंगार सुनायी देती है। साथ ही भाषा का सरल भी होना एक विशेष गुण है। भाषा में कर्तव्य का कोई प्रयोजन नहीं है।

डा० सावित्री सिन्हा के शब्दों में -

" परमानन्ददास जी की वर्ण-योजना की गति स्वयं कलकृत ग्राम वातिका के समान है जिसका सौन्दर्य अपने आप निसर पड़ता है। "

परमानन्द सागर में प्रयुक्त भाषा की प्रगति एवं विभिन्न भाषाओं के शब्द, परमानन्द सागर की भाषा पानानुसृत एवं सुहावनीदार है, जिसका उदाहरण निम्न रूप से है :

माई री डार डार पात पात झुझत करायो ।

०

०

माथी परि नई लीक लई ॥

खड़ी बोली के फर की एक वैधित एक प्रकार है :

वैसी ही यह कैसा बालक रानी ज्युमति जाया है ॥

अनुश्रवणात्मक शब्दों का प्रयोग निम्नलिखित वैधितयों में किन्तना सजीव हो उठा है :

मेया मीहि रेखी दुलहिन भावें ॥

जैसी यह काहू की छिठीनियाँ हनरु कुञ्जक घर बावें ॥

परमानन्द सागर में तदुभव, अर्द्ध तत्सम और तत्सम शब्दों का स्वरूप निम्न प्रकार है :

तदुभव	अर्द्ध तत्सम	तत्सम
कान्हा	किशन	कृष्ण

वन्ध भाषाओं की शब्दावली

प्रमुख वैदेशिक शब्दावली - ऐलान, बाजूस, नाउ, ससम, सैहरा, फौज, शहर, विरादर, दीवान आदि ।

हन्दी भाषा की शब्दावली- जैह, पैह, दैह, नसैह आदि

मालवी भाषा की शब्दावली - जावी, जावी, हाती, विदिया, सुंदरी

ब्रज भाषा की शब्दावली - कीनी, दीनी, ज्हा, बीसर, बटाऊ

देज शब्दों का प्रयोग- विहाल, बीधिन, सौह, कौधन आदि

इस प्रकार परमानन्दसागर की भाषा का शब्द-भाण्डार कृत्यन्त व्यापक है। प्रयुक्त सभी शब्दों के विषय में विवेचन करना यहाँ समीचीन प्रतीत नहीं होता है। अतः भाषा में कतिपय प्रमुख शब्दों का ही विवरण मात्र प्रस्तुत किया गया है। अन्य प्रकार के शब्दों के प्रयोग से भाषा कृत्यन्त समृद्ध है।

### अष्ट कथाय

शोध प्रबन्ध के अष्ट कथाय में शब्द-शक्तियों के शास्त्रीय विवेचन करने के उपरान्त 'सागर' में उनकी व्यवस्था का विवेचन प्रस्तुत किया है।

### शब्द-

वस्तुओं का ऐंगित रूप जो मूल से निःसृत होता है। वह शब्द है जिसे यक्षवेद में साक्षात् ब्रह्म का स्वस्मय माना गया है। साहित्य के अन्तर्गत शब्द वही है जिसमें ज्योत्स्नी की शक्ति होती है।

### शब्द शक्ति

'शब्द शक्ति' और 'शब्द-वृत्ति' स्वरूप वाच्य शब्द हैं।

### मैद

साहित्य दर्पण में शब्द शक्ति के तीन मैद निश्चित किये हैं : (१) वभिधा (२) सदाणा (३) व्यञ्जना ।

काव्यशास्त्रियों ने उनके भी लोक भेषीभेद किये हैं।

परमानन्दरागर में तीनों ही शब्द शक्तियों का प्रयोग मिलता है। परन्तु बहिधा और सदाणा की अपेक्षाकृत व्यञ्जना शक्ति का प्रयोग कम मिलता है, इसका प्रयोग अधिकतर वक्र एवं कटु भावों के चित्रण में हुआ है। बहिसार तथा विरह के फलों में गोपियों के द्वारा प्रीकृष्णा के प्रति कहे गए वचनों में व्यञ्जना शक्ति का प्रयोग हुआ है। बास लोला, रास लोला तथा उराहने के फलों में बहिधा शक्ति तथा सदाणा शक्ति का प्रयोग मिलता है।

बहिधा शक्ति का प्रयोग अधिकतर अनुभूत्यात्मक और वर्णनात्मक और व्याख्यात्मक प्रयोगों में किया गया है।

सदाणा शक्ति का प्रयोग मुहावरों और लोकोक्तियों के माध्यम से हुआ है। इसके द्वारा वर्तुल का पूर्ण विधान प्रस्तुत होता है। 'सागर' की निम्नलिखित शक्ति में सदाणा शक्ति का कितना मनमोहक चित्रण हुआ है :

देखो भाई पीजल रस भरे दोऊ ।

नन्द नन्दन वृषभान नन्दनी छोड़ पति है जोऊ ॥

कवि का सप्यार्थ 'रस भरे' शब्दों से राधा के दोनों उरोजों की खूबी व्यञ्जना करता है।

इनके अतिरिक्त व्याख्यात्मक शक्ति एवं कटुशक्तियों का भी वर्णन भी मिलता है। इस प्रकार 'सागर' भी विस्तृत भाव-भूमि शब्द शक्तियों का गद्यासभव वर्णन हुआ है। कवि इनके प्रयोग में

कहों भी समष्टि प्रतीत नहीं होता है।

### सप्तम अध्याय

शोध प्रबन्ध के इस प्रकरण में रीति-वृत्ति, वक्रोक्ति तथा गुणों के शास्त्रीय विवेचन के उपरान्त 'परमानन्द सागर' में गुण रीति-वृत्ति सम्बन्धी विन्यास प्रस्तुत किया है।

#### रीति-

वाचार्य वामन के अनुसार, 'रीति विशिष्ट पद-रचना को कहते हैं। पदों की रचनाओं में जो विशेषता उत्पन्न होती है उसके जन्मदाता गुण होते हैं।

#### गुण

काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों को कहते हैं। वाचार्य वामन ने 'रीति' को ही काव्य की सेवा दी है। वाचार्य दण्डी ने 'रीति' को मार्ग और वृत्त्य कहा है। उद्भट ने 'रीति' को 'वृत्ति' के नाम से अभिहित किया है।

#### रीति के भेद

इस सन्दर्भ में भी वाचार्य एक मत नहीं हैं। वाचार्य वामन और दण्डी 'रीति' के दो भेद मानते हैं- वैदर्भ और गौड़ी। वाचार्य वामन ने इसके अतिरिक्त पांचासी रीति भी विशिष्ट

की है। पारम्परिक काव्यशास्त्रियों ने 'रीति' के स्थान पर स्टाइल  
क्या कहती हैं की माना है।

प्लेटो ने तीन शैलियाँ निश्चित की हैं :

(१) सहज- सरल

(२) विचित्र

(३) कृत्रिम मिश्र ।

वस्तु शैली के दो प्रमुख गुण मानते हैं : स्पष्टता और वीर्य,   
मद दो हैं- (१) साहित्य शैली (२) विवाद शैली ।

निष्कर्षतः रीति क्या है? एक ऐसी  
निश्चित शैली है, जिसका प्रयोग विषयानुसृत होने पर ही उपयोगी होता  
है। यदि ऐसा नहीं होता है तो वह निरर्थक योजना मात्र है।

आचार्य ने गुण तीन प्रकार के निश्चित  
किये हैं : १- माधुर्य (२) वीर्य (३) प्रसाद । माधुर्य पूर्ण रचना हृदय  
को आह्लादमय बनाकर उसे प्रसन्न करता तक पहुँचाती है। वीर्य गुण पूर्ण  
रचना चित्त-वृत्ति में उत्तेजा उत्पन्न करती है। प्रसादगुण सम्पूर्ण रचना  
प्रसन्नता की पीतक होती है।

परमानन्द सागर के अक्षर ही विनय की  
मधुरिमा में वैदर्भी रीति क्या उपमागणिकावृत्ति का अन्वय परिलक्षित  
होता है। वीर्यपूर्ण रचनाओं में गौड़ी रीति, परमावृत्ति का विन्यास  
हुआ है। प्रसादपूर्ण उद्भावनाओं में पद्मावती रीति क्या कोमलावृत्ति  
की कटा दृष्टिगत होती है।

माधुर्य गुण युक्त ( वैदर्भी रीति, उप्ताग-  
रिका वृत्ति ) से सम्बन्धित कतिपय वैधित्यो निम्नलिखित हैं :

हरि तेरी सीला की सुधि आवे ।

कमल नैन मन मोहन मुरति के मन मन चित्त बनावे ॥

‘ सागर ’ की रचनामें जितना माधुर्य गुण  
और प्रसाद गुण युक्त का वाधिय है उतना वीर गुण का नहीं है। रच-  
नावों में वक्रोचित वैशिष्ट्य की अत्यन्त मनोहारी है। उनके परिवेज में  
राधा और कृष्ण की युक्त प्रणय तोलावों के भाव भीने चित्र संजीये हैं।

#### अष्टम अध्याय

परमानन्द सागर के काव्यशास्त्रीय कुलीन  
के इस अन्तिम अध्याय के अन्तर्गत ‘ कल्पना तत्त्व ’ प्रतीक, विधान, बिम्ब  
विधान, दीर्घों की अवस्थिति, सौन्दर्य तत्त्व, वाक्यात्मिकता एवं वाक्-  
निकता के संक्षिप्त शास्त्रीय विनियोग के साथ साथ परमानन्द सागर में  
उनके वर्णन करने का वायीज है।

कल्पना- पाश्चात्य कालीना में कल्पना  
की प्रतिभा के समकक्ष माना है। वैक्सटर ने कल्पना की चित्र विधायिनी  
शक्ति के रूप में स्वीकार किया है। कल्पना के तीन कार्य हैं :

(१) परीक्षा वस्तुओं के बिम्बों का मानसिक  
पुरास्मान ।

(२) बिम्बी का पुनः प्रत्यक्ष

(२) बिम्बी के समीकरण से कला दृष्टि  
में योगदान ।

निष्कर्षतः कल्पना वह शक्ति है जो एक  
और दूरस्थ तत्वों में स्वयं स्थापन करती है, दूरी और सामान्य वस्तुओं  
को नवीन सुनमा से संजोकर काव्य का विषय तैयार करती है।

“सागर में बालकृष्ण सीताजी के पदों में  
कल्पना साकार हो उठी है। जैसा कि निम्नलिखित पंक्तियाँ से द्रष्टव्य है :

गुह्यो उद्भासत लागे बाल ।

सुन्दर पत्नी बंधि मनमोहन नाचत है मीन के ताल ॥

राधा और कृष्ण की बात एवं किशोरावस्था  
की सीताजी के प्रस्तातिष्ठ रूप चिन्तों का वर्णन कवि की कल्पना में संजीव  
हो गया है। कल्पना का वास्तविक सौन्दर्य उनकी उपमाओं, रूपों और  
उत्प्रेक्षाओं के परिप्रेक्ष्य में परिलक्षित होता है।

प्रतीक

एक प्रकार से रूढ़ उपमानों का ही दूसरा  
नाम है। जब उपमान स्वतन्त्र न होकर पदार्थ विशेष के रूढ़ हो जाता है  
तब वह प्रतीक बन जाता है।

प्रतीक का सम्बन्ध मूलतः वर्ण व्यंजना से  
रहता है। “सागर” में कविगत उपमानों के माध्यम से बड़े ही सुन्दर



सर्व वाक्यार्थक प्रतीकों के वर्णन होते हैं। यथा-

घन में शिव रही ज्यों दाहिनी ।

नन्द कुँवर के पीछे ठाढ़ी सीछत राधा पाहिनी ॥

बिम्ब

छिन्नी के छिन्न का पर्यायवाची है। परन्तु  
संस्कृत के वाचार्थों ने बिम्ब शब्द कावर्थ प्रतिच्छाया निश्चित किया है।

बिम्ब निर्माण के साधनों में उपमा, रूपक,  
उत्प्रेक्षा, सदाणा, व्यञ्जना, मुहावरे, प्रतीक आदि का विशेष योग  
दान रहता है।

‘सागर’ में श्रीकृष्ण की बाल झीड़ावों  
के वर्णन में बिम्बों का वाधिक्य परिलक्षित होता है। यथा-

झीड़त कान्तकनक तगिन ।

निध प्रतिबिम्ब विलोकि क्लिक्छि धावत फहरन की  
परशानन ॥

दोष

दोषों के विषय में वाचार्थ एक मत नहीं

है :

साधारणतः हम कह सकते हैं कि ‘दोष’  
की विषय वस्तु गुणों के विपरीत रूप में होती है। गुण, रस के उत्कर्ष

कारक होते हैं तो दोष काव्य में उस के वर्णन कारक होते हैं। परन्तु कभी कभी ऐसा नहीं भी होता है।

कतिपय प्रसुत दोष इस प्रकार हैं :

- १- पदगतदोष
- २- वाक्य दोष
- ३- अर्थ दोष

वाचार्थों ने उनके भी अनेक भेदोभेद किये हैं ।

“ छागर् ” की रचना में कतिपय दोषों की स्थिति कवि की भक्ति विमोहता के कारण ही समझी जायेगी क्योंकि भक्ति की पूर्ण तन्मयता में कवि की काव्य रचना के गुण दोषों का ध्यान ही नहीं रहा है। परन्तु ऐसे प्रसंगों की संख्या अत्यन्त कम है। इसकी कवि कर्म की अनिच्छा नहीं समझा जा सकता है।

### सौन्दर्य

व्युत्पत्ति की दृष्टि से विद्वानों ने सौन्दर्य शब्द का अर्थ मन को आर्द्र करनेवाला निश्चित किया है।

प्लेटी ने सौन्दर्य को दिव्य माना है।

सुकरात के अनुसार सौन्दर्य का लक्षण जोष्ट उद्देश्य की पूर्ति में है। दृष्टिगत सौन्दर्य के मानवीय और मानवैतर दो उपवर्ग हैं।

“सागर” में मानवीय सौन्दर्य के अन्तर्गत श्रीकृष्ण, राधा, गोप, गीपियाँ आदि के सुन्दरतम चित्र वर्णित किये हैं। मानवैश्वर्य के अन्तर्गत मन्दिरों की शोभा कृष्ण की शोभा, श्यामल घटा, यमुना आदि की शोभा के मनीषुष्कारों चित्र उँजाये हैं।

परमानन्द सागर एक मात्र भक्ति एवं शृंगारिक रचना हो नहीं है अपितु उसमें आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता का भी समुचित विकास मिलता है। मानव जीवन के चिरन्तन सत्य को स्पर्श करने वाली तथ्याँ की उसमें कमी नहीं है। विनय माहात्म्य, शरणा-गति आदि ऐसे प्रकरण हैं जिनमें भौतिकवाद के झूठे सौख्योपन से हटकर जीवन के वास्तविक परमानन्द ( मोक्ष ) प्राप्ति के मार्ग पर चलने की प्रेरणादायिनी शक्ति है।

ब्रह्म, जोव एवं माया से सम्बन्ध रखने वाली विचारधारा में परमानन्ददास जी ने ब्रह्म की सत्ता की ही सर्वोच्च माना है। उनके इस ब्रह्म का स्वयं सत्य चिरन्तन, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ एवं त्रिभिन्नी है, वह सर्वशक्तिमान है तथा निर्गुण, सगुण दोनों ही रूपों में व्याप्त है। जीवात्मा उसी का एक मात्र है। जोव इस संसार में जन्म लेकर काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि में फँसकर उस परम ब्रह्म की भूल जाता है, सद्गुरु की कृपा से ही उसका उद्धार संभव है।

परमानन्द सागर की स्वरूपर की उर्वरक भक्तिभावना में ही हमें आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता परिलक्षित होती है।



# परमानन्द-सागर का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए प्रस्तुत  
शोध-प्रबन्ध

निर्देशक :—

डॉ० जी० एल० शर्मा

डी० लिट०

हिन्दी-विभाग

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,

अलीगढ़ ।

प्रस्तुतकर्ता :—

रामस्वरूप

एम० ए०

## प्राक्कथन

श्रेष्ठ साहित्य वही कहा जा सकता है जो कि मानव-मात्र का कल्याणकारी सिद्ध हो। सत्य और प्रेम का पोषक हो। अत्याचार, भय एवं शोषण विरोधी हो। भक्तिकालीन साहित्य इन सभी मानवीय गुणों का अक्षुण्ण भाण्डार है जिसमें कंस, हिरण्यकश्यप, वृणावत, रावण, अहिरावण, कुम्भकर्ण आदि दानवों के संहार लीला पर्यादा पुरुषोत्तम राम और लीला पुरुषोत्तम कृष्ण द्वारा कराकर मानव धर्म स्थापन का वर्णन किया गया है। इसके साथ ही राम और कृष्ण की लीलाओं, उनके सौन्दर्य आदि का भीति भीति से वर्णन किया गया है। भक्तिकालीन साहित्यकी इन्हीं प्रमुख विशेषताओं के कारण साहित्य-मर्मज्ञों ने भक्तिकाल को 'हिन्दी का स्वर्ण-युग' कहा है।

भक्तिकालीन साहित्य की उपर्युक्त विशेषताओं के कारण ही मैं भक्ति-साहित्य की ओर सदैव से आकृष्ट रहा हूँ। यही कारण है कि इस काल के महात्माओं की पावन काव्य-वाणी आज भी मेरे लिए विज्ञान का विज्ञान बनी हुई है।

प्रारम्भ से ही भक्तिकाव्य के प्रति मेरा आकर्षण रहा है, क्योंकि यह साहित्य सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक है। दूसरे विषय-वस्तु की दृष्टि से समूचे भक्ति साहित्य में अष्टरूपायी कृष्ण-भक्ति-साहित्य ही अधिक धनी है। इन अष्टरूपायी कवियों में भी अभी तक

द्वारा ही विशेष उल्लेखनीय है, परन्तु इसी ही सीधे परमानन्द दास जी भी अपने अष्टदेव श्रीकृष्ण की लीला गायन के सन्दर्भ में कम महत्वपूर्ण नहीं हैं, जिन्होंने श्रीकृष्ण की किशोर वीर पीनपडावस्था के भाव-धारे बिना अपनी काव्यमय वाणी में प्रस्तुत किये हैं। यही कारण है कि श्री० विट्ठलनाथ जी ने 'सूर' और 'परमानन्द दास' को 'लीला-सागर' की उपाधि से विभूजित किया था। श्रीकृष्ण की लीलाओं के निरूपण करने में इन भक्त कवियों की भावना मूलतः भक्ति से ही लीत प्रीति थी। राधा वीर कृष्ण की लीला गान के माध्यम से ही अपने विनय के पदों में 'सूर' और 'परमानन्ददास' जी ने मानव जीवन के चरम सत्य का भीवर्णन किया है।

परन्तु मेरे का विषय है कि सूर के समान प्रतिभा सम्पन्न महाकवि परमानन्ददास जी के काव्य के प्रति साहित्य पर्यङ्ग अभी तक उदासीन रहे हैं। अभी तक परमानन्ददास जी के जीवन-युग एवं उनकी रचनाओं की वीर कतिपय विद्वानों का ही ध्यान गया है। जिनमें अष्टहाप वीर वल्लभ सम्प्रदाय - डा० दीन दयाल गुप्त, कविवर परमानन्द दास वीर उनका साहित्य- डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल तथा अष्टहापी कवियों के अन्य व्यक्तियों ही प्रमुख रहे हैं, परन्तु परमानन्ददास जी के काव्य के राष्ट्रीय व्यक्त की वीर विद्वानों का ध्यान प्रायः बाक्य नहीं हुआ है। जिसका हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अभी तक अभाव ही बना हुआ है।

वास्तव में काव्यशास्त्र किसी भी भाषा का गहनवृष्ट होता है। उसका एक पक्ष साहित्य के प्रत्येक दर्शन का तथा दूसरा पक्ष उसके अन्तर्गत प्रतिकूलित भाषादर्श का सुन्दर समन्वय होता है। अतः

साहित्य के उचित मूल्यांकन तथा उसका सम्यं जाननेके लिए काव्यशास्त्र का अध्ययन करना अति आवश्यक होजाता है। यही कारण था कि प्राचीनकाल में काव्यमर्मज्ञों द्वारा संस्कृत साहित्य में काव्यशास्त्र के अनुशीलन के सिद्धान्तों का निरूपण किया गया ।

### हिन्दी साहित्य की शास्त्रीय परम्परा

संस्कृत साहित्य की शास्त्रीय परम्परा की ही देन है। संस्कृत भाषा के वैयाकरणों वासन, पम्पट, भट्ट लोल्लट आदि ने जिस प्रकार संस्कृत भाषा की नियमबद्ध किया तथा उसके साहित्योत्कर्ष के मूल्यांकन के लिए मानदण्ड निर्धारित किये, उन्हीं मानदण्डों के आधार पर ही हिन्दी साहित्य के काव्यशास्त्रीय अध्ययन तथा अनुशीलन की परम्परा आज भी अबाध गति से प्रवाहित हो रही है। शास्त्रीय अनुशीलन की इस महत्वपूर्ण परम्परा से काव्य का वास्तविक स्वरूप पाठकों के समक्ष प्रसरित होने लगता है। फल-स्वरूप पाठकगण काव्य-कृति की आत्मा से भी परिचित हो जाते हैं।

उपर्युक्त दृष्टिकोण के आधार पर हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण निधि 'परमानन्द सागर' की आत्मा से साक्षात्कार के लिए उसके शास्त्रीय अनुशीलन की नितान्त आवश्यक है। जब तक कतिपय विद्वानों का ध्यान उनके साहित्य की ओर ही केन्द्रित रहा है। साहित्यिक अनुशीलन का नितान्त अभाव बसता है।

शास्त्रीय अनुशीलन की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को बाठ अध्यायों में विभाजित किया गया है।

### प्रथम अध्याय - विषय प्रवेश के अन्तर्गत

प्रस्तुत प्रबन्ध का क्षेत्र, विवेचन, उसकी उपादेयता, महत्त्व एवं आवश्यकता

आदि पर प्रकाश डाला गया है। तत्पश्चात् मन्त्र प्रवर महाकवि परमानन्द दास जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व तथा परमानन्द सागर के अध्ययन में विभिन्न विद्वानों के योगदान का विवेचन किया गया है।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत परमानन्द सागर की भाव- योजना तथा विभिन्न रसों के परिपाक का विवेचन करते हुए भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यों द्वारा रस सिद्धान्त, रस निष्पत्ति तथा सागर के सैवारी भावों के सौन्दर्य की कृष्टा का भी अध्ययन किया गया है।

तृतीय अध्याय में 'सागर' की कर्तार- योजना के अन्तर्गत कर्तारों की व्युत्पत्ति, विनियोग, महत्ता का विवेचन करते हुए 'सागर' में प्रयुक्त विभिन्न कर्तारों का वैशिष्ट्य प्रदर्शित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में कवियों के शास्त्रीय विवेचन और महत्त्व आदि पर अध्ययन दृष्टि रखते हुए 'सागर' की कव्य नियोजना का अध्ययन किया गया है।

पंचम अध्याय के अन्तर्गत 'सागर' के कला पक्ष का अध्ययन किया गया जिसमें उसकी भाषा तथा निहित शब्दावली का अध्ययन किया गया है।

षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत सागर की शब्द-शक्तियों का अध्ययन उनकी शास्त्रीय विवेचना सहित किया गया है।



सप्तम अध्याय में गुण एवं रीतियों के शास्त्रीय विवेचन के साथ सागर में प्रयुक्त गुण एवं रीतियों का अध्ययन किया गया है।

अष्टम अध्याय के अन्तर्गत कल्पना बिम्ब, प्रतीक योजना, दोषादि के शास्त्रीय विवेचन के साथ सागर में उनकी अवस्थिति का अध्ययन किया गया है। तत्पश्चात् सागर की दार्शनिकता एवं वाध्यात्मिकता का भी अध्ययन किया गया है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि सूर सागर की भाँति परमानन्द सागर भी ब्रजभाषा-साहित्य की एक उत्कृष्ट काव्य-कृति है। परन्तु यह बड़े स्तर की बात है कि ब्रजभाषा के इस विशाल साहित्य के अनुशीलन के लिए हिन्दी साहित्य के विद्वान् आज भी उदासीन ही दिखाई पड़ते हैं।

भवत प्रवर दारकादास परीस, डा० दीनदयालु गुप्त एवं डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल आदि के सद्प्रयत्नों से बहुत कुछ ज्ञात साहित्य प्रकाश में आ चुका है, परन्तु 'सागर' के साहित्यिक अनुशीलन की ओर किसी भी विद्वान् ने दृष्टिपात नहीं किया। साहित्य के इसी अभाव की पूर्ति के लिए हमने अपने इस अष्ट अध्यायी शोध प्रबन्ध द्वारा साहित्यिक अनुशीलन करने का यथा शक्ति प्रयास किया है। परन्तु फिर भी जाने अनजाने इसमें कतिपय त्रुटियों का समावेश हो सकता है। आशा है विद्वान् उस सन्दर्भ में क्षमा करेंगे।

प्रबन्ध की सामग्री संकलन के लिए लेखक अतीव महत्त्वपूर्ण विश्वविद्यालय तथा अन्य पुस्तकालयों का आभारी है।

श्रेष्ठ गुरु डा० गैदालाल शर्मा डी०लिट् ,  
हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के निर्देशन में शोध प्रबन्ध  
का सारा कार्य सम्पन्न हुआ है। डा० साहब के साथ बैठकर समय-समय  
पर विषय सम्बन्धी जो चर्चा करने का मुझे अवसर प्राप्त हुआ उससे मुझे  
विषय को स्पष्ट करने में विशेष सहायता मिली है। वस्तुतः इस कार्य में  
लेखक को प्रवृत्त करने का श्रेय उन्हीं को है, और उन्हीं के बहुमूल्य परामर्श  
से इस प्रबन्ध को इतना सुव्यवस्थित रूप मिल सका। उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट  
करने के लिए मेरे पास न उचित शब्द हैं, न कोरे शब्दों में जामात प्रकट  
कर वह उनके अपार स्नेह और सहृदयता का मूल्य कम करना ही चाहता है।

इसके साथ ही डा० प्रेमस्वरूप गुप्त, डी०लिट्  
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, डा० गोवर्धन नाथ  
शुक्ल, डा० विश्वनाथ शुक्ल आदि विद्वानों से भी विशेष सहायता मिली,  
तदर्थ उन्हीं हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इस सन्दर्भ में मैं डा० रामेश्वर  
दयाल का भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को सजाने एवं संवारने में  
महनीय योगदान दिया।

अन्त में पुनः निवेदन करता हूँ, यह सब कुछ  
गुरुजन एवं विद्वानों की कृपा का ही फल है। इसमें यदि किंचित् भी साहित्य  
समीक्षा के अध्ययन में लाभ पहुँचा तो मेरे अपने परिश्रम की सार्थक मानूँगा,  
तथा बार-बार सुझावों के प्रति अनुगृहीत रहूँगा।

## विषयानुक्रमिका

### “ परमानन्द सागर का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन ”

पृष्ठ संख्या

#### प्रथम अध्याय

##### विषय- प्रवेश

प्रस्तुत विषय की सीमा : विवेचन की प्रस्तुत दिशाएँ एवं नवीनता , विविध विषय की उपादेयता , मध्य प्रारंभ तथा परमानन्ददास जी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व , परमानन्दसागर के अध्येत में विभिन्न विद्वानों का योगदान ।

#### द्वितीय अध्याय

##### परमानन्द सागर में भाव- संस्थापन

भाव : शास्त्रीय विवेचन , परमानन्द सागर की भाव-संस्थापन पद्धति , भारतीय वाचार्थों द्वारा गृहीत रस-सिद्धान्त तथा रस- निष्पत्ति , परमानन्द सागर में

विभिन्न रसों का परिपाक , शृंगार रस एक वैदिकान्तिक विवेचन , परमानन्दसागर में शृंगार रस वर्णन, शान्त रस एक वैदिकान्तिक विवेचन, परमानन्द सागर में शान्त रस - वर्णन, वात्सल्य रस एक वैदिकान्तिक विवेचन, परमानन्द सागर में वात्सल्य रस वर्णन , कम्भुत रस एक वैदिकान्तिक विवेचन, परमानन्द सागर में कम्भुत रस , करुण रस : एक वैदिकान्तिक विवेचन, परमानन्द सागर में करुण रस वर्णन , रौद्र रस एक वैदिकान्तिक विवेचन, परमानन्द सागर में रौद्र रस वर्णन, वीर रस एक वैदिकान्तिक - विवेचन, परमानन्द सागर में ऐवारी भावों का प्रयोग ।

### तृतीय अध्याय

#### परमानन्द सागर में कर्तार- योजना

कर्तारों की व्युत्पत्ति, उनका विनियोग तथा प्रकृति , परमानन्द सागर में कर्तार- योजना , परमानन्द सागर में शब्दाभित कर्तारों का वैशिष्ट्य , कृतप्रस कर्तार एक शास्त्रीय विवेचन, कृतप्रस कर्तार का प्रयोग , वीष्ठा कर्तार, एक शास्त्रीय विवेचन, वीष्ठा कर्तार का प्रयोग, यम कर्तार, एक शास्त्रीय विवेचन , यम कर्तार का प्रयोग , सुहृद कर्तार : एक शास्त्रीय विवेचन, सुहृद कर्तार का प्रयोग , परमानन्द सागर में वर्णित कर्तारों का वैशिष्ट्य , उपमा कर्तार एक शास्त्रीय विवेचन, उपमा

कर्तार का प्रयोग , उत्प्रेक्षा कर्तार : एक  
 शास्त्रीय विवेचन , उत्प्रेक्षा कर्तार का प्रयोग ,  
 रूप कर्तार : एक शास्त्रीय विवेचन, रूप कर्तार  
 का प्रयोग , रूपातिशयोक्ति एवं वतिशयोक्ति  
 कर्तार : एक शास्त्रीय विवेचन , रूपातिशयोक्ति  
 कर्तार का प्रयोग , वतिशयोक्ति कर्तार का प्रयोग,  
 विभावना कर्तार : एक शास्त्रीय विवेचन, विभावना  
 कर्तार का प्रयोग , वन्योक्ति कर्तार : एक शास्त्रीय  
 विवेचन, वन्योक्ति कर्तार का प्रयोग , स्मरण कर्तार :  
 एक शास्त्रीय विवेचन , स्मरण कर्तार का प्रयोग ,  
 स्वभावोक्ति कर्तार : एक शास्त्रीय विवेचन , स्वभावोक्ति  
 कर्तार का प्रयोग , व्यतिरेक कर्तार : शास्त्रीय विवेचन,  
 परमानन्द सागर में व्यतिरेक कर्तार का प्रयोग , परिकर  
 कर्तार : शास्त्रीय विवेचन , परमानन्द सागर में परिकर  
 कर्तार का प्रयोग ।

### चतुर्थ अध्याय

#### परमानन्दसागर की इन्द्र-नियोजिता

काव्य में इन्द्र विधान का महत्त्व, विवेचन, व्युत्पत्ति,  
 विकास तत्त्व और भेद परमानन्द सागर की इन्द्र नियोजिता  
 एवं उसका प्रयोगात्मक शौन्दर्य , परमानन्द सागर में निम्न  
 प्रसृत इन्द्र एवं उनका शौन्दर्य , चौपार्श्व इन्द्र : शास्त्रीय  
 विवेचन , परमानन्द सागर में चौपार्श्व इन्द्र का प्रयोग ,

दोहा छन्द : शास्त्रीय विवेचन , परमानन्द सागर  
 में दोहा छन्द का प्रयोग , छार छन्द : शास्त्रीय  
 विवेचन, परमानन्द सागर में छार छन्द का प्रयोग,  
 चारु छन्द : शास्त्रीय विवेचन , परमानन्द सागर में  
 चारु छन्द का प्रयोग , अवधिया छन्द : शास्त्रीय  
 विवेचन, परमानन्द सागर में अवधिया छन्द का प्रयोग,  
 रीता छन्द : शास्त्रीय विवेचन , परमानन्द सागर में  
 रीता छन्द का प्रयोग , गीतिका छन्द : शास्त्रीय  
 विवेचन , परमानन्द सागर में गीतिका छन्द का प्रयोग,  
 भुसना छन्द : शास्त्रीय विवेचन , परमानन्द सागर में  
 भुसना छन्द का प्रयोग , बीपार्थ छन्द : शास्त्रीय  
 विवेचन तथा परमानन्द सागर में उसका प्रयोग ,  
 रूपाली छन्द : शास्त्रीय विवेचन, परमानन्द सागर  
 में रूपाली छन्द का प्रयोग , लावनी छन्द : शास्त्रीय  
 विवेचन, परमानन्द सागर में लावनी छन्द का प्रयोग,  
 सही छन्द : शास्त्रीय विवेचन, परमानन्द सागर में  
 सही छन्द का प्रयोग , विलास छन्द : शास्त्रीय विवेचन,  
 परमानन्द सागर में विलास छन्द का प्रयोग ।

### पंचम अध्याय

### परमानन्द सागर की भाषा और उसका

### कलात्मक संविधान

परमानन्द सागर की वर्ण- योजना, परमानन्द सागर की

भाषा का कलात्मक स्वरूप, सागर में पात्रानुसूत  
भाषा का स्वरूप , परमानन्द सागर में भावानु-  
गाप्ति भाषा का प्रकृत स्वरूप, परमानन्द सागर  
में सरल एवं प्रवाहमयी भाषा का स्वरूप, परमानन्द  
सागर में वस्तुत्व-कला पूर्ण भाषा का प्रयोग-सौंदर्य,  
परमानन्द सागर की भाषा में मुहावरे, लोकीवित्तियाँ  
और सूक्तियाँ , परमानन्द सागर की भाषा में लक्ष्मी  
बोली का प्रयोग , परमानन्द सागर की भाषा में  
शब्द निर्माण की प्रवृत्ति , परमानन्द सागर में अनु-  
करणात्मक शब्दों का प्रयोग , परमानन्द सागर में  
निश्चित शब्दावली, तत्त्वम , अहं तत्त्वम, तद्भव, देशज,  
विदेशी आदि , विन्यास की दृष्टि से शब्द भेद ,  
परमानन्द सागर में अहं- तत्त्वम शब्दों का प्रयोग ,  
तद्भव शब्दों का प्रयोग , परमानन्द सागर में प्रयुक्त  
ब्रज भाषा के शब्द , परमानन्द सागर में विदेशी  
शब्दों का प्रयोग , परमानन्द सागर में प्रयुक्त अन्य  
उपभाषाओं के शब्दों का प्रयोग , परमानन्द सागर  
में देशज शब्दों का प्रयोग , परमानन्द सागर में प्रयुक्त  
क्रिया पदों के उदाहरण, परमानन्द सागर की भाषा  
में समास शब्द एवं धातुाधिक पदावली , परमानन्द  
सागर की भाषा में शब्दों का निजी प्रयोग ।

### षष्ठः अध्यायः

#### परमानन्द सागर में शब्द-शक्तियों का

#### शीघ्र

शब्द, शब्द शक्तियों का परिचय, भेद, महत्त्व तथा  
विस्तार, परमानन्द सागर में शब्द-शक्तियाँ,  
परमानन्द सागर में शब्द-शक्तियों का स्वरूप,  
परमानन्द सागर में अविधा-शक्ति, परमानन्द  
सागर में लक्षणा शक्ति, परमानन्द सागर में व्यञ्जना  
शक्ति, परमानन्द सागर में कटु एवं व्यङ्ग्यात्मिका  
शक्ति का प्रयोग, वस्तुवैशिष्ट्यार्थी व्यञ्जना तथा  
लक्षणा शक्ति का समन्वित रूप ।

### सप्तमः अध्यायः

#### परमानन्द सागर में रीति, गुण, वृत्ति, वक्रावृत्ति

#### सम्बन्धी वैशिष्ट्य

रीति- वृत्ति का सात्त्विक स्वरूप, भेदादि,  
पात्वात्य काव्यकलास्त्रियों की रीति, (शैली)  
सम्बन्धी सम्पत्ति, गुणों की सात्त्विक प्रकृति :



स्वरूप एवं भेदादि , रीति वृत्ति का शास्त्रीय  
 स्वरूप एवं गुणों के साथ उल्ला सम्बन्ध, परमानन्द  
 सागर में गुण, रीति, वृत्ति सम्बन्धी विन्यास ,  
 परमानन्द सागर में बीज गुण परम्परा वृत्ति ( गीढ़ी रीति )  
 का विन्यास , परमानन्द सागर में माधुर्य गुण उपनामिका  
 वृत्ति ( वैदर्भी रीति ) का विन्यास , परमानन्द सागर में  
 प्रसाद गुण कौमलावृत्ति ( पाँचाली रीति ) का विन्यास,  
 परमानन्द सागर में वक्रोचित सम्बन्धी वैशिष्ट्य ( वक्रोचित  
 का वर्ण ) , परमानन्द सागर में वक्रोचित के उदाहरण  
 चित्र ।

#### अष्टम अध्याय

#### कल्पना : शास्त्रीय विवेचन

परमानन्द सागर में कल्पना विवेचन, प्रकीर्ण शास्त्रीय  
 विवेचन, परमानन्द सागर में प्रकीर्ण - योजना , दोष  
 शास्त्रीय विवेचन, परमानन्द सागर में दोषों की त्व-  
 स्थिति , सौन्दर्य : शास्त्रीय विवेचन, परमानन्द सागर  
 में सौन्दर्य विवेचन, विन्ध शास्त्रीय विवेचन, परमानन्द  
 सागर में विन्ध विधान, परमानन्द सागर में वाक्यात्मिका,  
 परमानन्द सागर में वार्तनिकता ।

परिशिष्ट

ग्रंथानुक्रमणिका

संस्कृत

हिन्दी

कौबो

प्र  
थ  
म ।

। व ङ य ा य

### विषय प्रोक्त

प्रस्तुत विषय की सीमा :

विवेचन की प्रमुख दिशाएँ एवं नवीनता

विविध विषय की उपादेयता

भक्त प्रभार महाकवि परमानन्द दास जी :

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

परमानन्दसागर के लक्ष्यक्षेत्र में

विभिन्न विद्वानों का योगदान

० ० ०

### विषय-प्रवेश

प्रस्तुत प्रबन्ध का विषय है “ परमानन्द सागर का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन ” । हिन्दी साहित्य जगत् में ‘ सूरसागर ’ की भाँति ‘ परमानन्द सागर ’ भी एक विशिष्ट काव्य रचना संग्रह है जिसकी विषय-वस्तु भी सूरसागर की विषयवस्तु से प्रायः साम्य भाव रखती है। क्योंकि सूरदास जीकी भाँति परमानन्द दास जी भी मूलतः अष्टछापीय कृष्ण भक्त कवि थे । यही कारण है कि उनकी समस्त पद रचनाओं में श्रीकृष्ण और राधा विषयक लीलाओं का सुवत कण्ठ से सुमधुर गायन हुआ है। अतः यह निर्विवाद है कि ‘ परमानन्द सागर ’ एक भक्तिपरक एवं महत्वपूर्ण काव्य रचना संग्रह है। जिसमें प्रमुख रूप से श्रीकृष्ण के किशोर जीवन की अनुपम फाँकियाँ, राधा, गोप , गोपियों की संयोगावस्था के चित्रों का बाहुल्य दर्शनीय है। इस प्रकार के चित्रों के अतिरिक्त नन्द, यशोदा, गोपी प्रेम महिमा अभिषेक , नाम-माहात्म्य, मागवत और प्रेम भक्ति की महवा , ब्रज माहात्म्य, विनती , गोवर्धन लीला , मुरली के पद , माखन लीला आदि अनेकों प्रकार के ऐसे प्रसंग मिलते हैं जिनके केन्द्र बिन्दु राधा श्रीकृष्ण हैं।

‘ परमानन्द सागर ’ की विषय वस्तु के संक्षिप्त परिचय प्रस्तुतीकरण के पश्चात् हम अपने प्रबन्ध की विषय वस्तु उसकी रूप रेखा , विवेचन की प्रमुख दिशाएँ एवं नवीनता आदि के विषय में वर्णन करेंगे ।

जैसा कि प्रारम्भ में ही उक्त किया जा चुका है कि प्रस्तुत प्रबन्ध का विषय “ परमानन्द सागर का काव्य-

शास्त्रीय अनुशीलन " है। काव्यशास्त्रीय अनुशीलन से हमारा अभि-  
प्राय प्रसृतः कवि के साम्प्रदायिक विश्वासाँ तथा जीवन-बुध सम्बन्धी  
सभी विवादों से दूर रहकर परमानन्ददास जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व  
तथा " परमानन्द सागर " की भाव-योजना का स्वरूप विभिन्न रसों  
का परिपाक उत्कार, भाषा, शब्द, रीति, बुद्धि, कल्पना, बिम्ब,  
प्रतीक, दीप्ति, वाच्यतात्मिकता एवं दार्शनिकता आदि महत्वपूर्ण  
साहित्यिकों का अवलोकन करना है।

प्रस्तुत प्रबन्ध की सीमा : विवेचन की प्रमुख दिशाएँ एवं नवीनता

" परमानन्द सागर " के शास्त्रीय  
अनुशीलन के अन्तर्गत हमारे विवेचन की प्रमुख दिशा, सम्बन्धित काव्य-  
तत्त्वों के शास्त्रीय अध्ययन, भेद, विवेचन तथा उनके विषय में ध्याकरणाँ  
एवं भिन्न भिन्न वाक्यार्थों के पक्षों की ओर भी रही है। तत्पश्चात् परमानन्द  
सागर में उन काव्य-तत्त्वों की अवस्थिति किस प्रकार की रही है? आदि  
साहित्यिक पक्षों का विवेचन करना है। इसके साथ-साथ उन चिह्नित  
काव्य-तत्त्वों की सामेक्षाता में महाकाव्य के शाश्वत लक्षणों की  
कड़ी पर " परमानन्दसागर " महाकाव्य के विस्तृत साहित्यिक मूल्यांकन  
से रहा है। इसी सन्दर्भ में उनके विभाव एवं भाव-पक्ष की मार्मिकता का  
उद्घाटन करते हुए भाषा सम्बन्धी वैशिष्ट्य की भी व्यञ्जित करने का  
प्रयत्न किया गया है। अर्थात् साहित्यिक वाक्यन की अतिरिक्त व्यापक  
कान्ति के लिए हमने भारतीय साहित्यशास्त्र के समीक्षाशास्त्र की कड़ी की  
का भी समीक्षण उपयोग किया है। साथ ही उसे संतुलन एवं स्थिरता प्रदान

हमने है निरयम तब महाकवि की भी तत्त्वमन्त्री विशिष्ट मान्यताओं की भी एकल प्रज्ञान किया गया है। इस संदर्भ में यह कह देना बलिशगीहित न होगा कि हमने अपने प्रस्तुत अध्ययन में इस महाकवि की सुखी काव्य-दृष्टि की ही उद्घाटन करने का प्रयास किया है।

संक्षेप में प्रस्तुत प्रबन्ध की सीमा विवेक की प्रसन्न दिशा से हमारा साक्ष्य है महाकाव्य की उत्तम विषय-वस्तु के आधार पर प्रवृत्ति भारतीय एवं पारम्पर्य काव्य साहित्य के नियम-मापदण्ड दोनों ही कक्षाओं पर काव्य के चरित्र तत्त्वों का उद्घाटन करना है।

#### विवेक विषय की उपायिका

भक्त कवि होने के कारण परमानन्द शार की का प्रसन्न उद्देश्य कविता करना नहीं था। उन्होंने श्री श्रीनाथ जी के भक्त जीवन के रूप में अपना पुरा काव्य उनके चरणों में समर्पित किया था।

भक्ति की इस तन्मयता में भावों की विनीता एवं साकार भावना की संगीतकला के परिप्रेक्ष्य में पगवत्सेवा का परिपाक हुआ। लगभग सन् १५५२ से सन् १६४२ तक का यह समय ऐसे विशाल भाव स्तब्धों का सर्वन कर गया जिस हिन्दी साहित्य के नभिले हुए की एक सखी घटना भी कहा जाय जो बलिशगीहित न होगी। क्योंकि कि न तो उसके पूर्व ही और न उसके पश्चात् ही इस प्रकार की सु-

सहित काव्य धारा के दर्शन होते हैं। कवने का तात्पर्य यह है कि धुर के वहिर्मुख प्रदर्शप के रूप उभियों के कवने उत्कृष्ट काव्य के साहित्यिक व्यक्तता की ओर निरूपण प्राप्त: उदासीन की है है, कष्टकारी काव्य कि परमानन्दता की काव्यात्मक व्यक्त की पूर्ण साहित्यिक व्यक्त साहित्यिक प्रमिष्ट्यक्ति की कभी तक अपरिष्कृत तथा काव्यप्रस्त की हुई है। इस स्थिति में विशुद्ध काव्यात्मक पद्धति के आधार पर " परमानन्द सागर " का साहित्यिक व्यक्तता करना निरान्य आवश्यक है।

सारशितः कपले प्रसृत प्रबन्ध है। इस कवली  
आवश्यकता की पूर्ति हेतु 'परमानन्द सागर' के फलदायकत्व की चिर-  
न्तनता एवं कवि की प्रसूत प्राणायाम, सुखीति कथाओं, महान् उद्देश्य,  
महत् गरिम लीतारं, व्यापक कर्तृत्व, सत्काम, धीन्वयानुभूति, रस  
कौशल्यादि के चिरन्तन सत्यों की ही विशेष रूप से उद्घाटन करने का प्रयास  
किया पायेगा।

वादा है कि भक्त प्रसाद भक्तकवि परमानन्द दास जी के महाकाव्य ' परमावी कथा ' के छान्दोप कृत्रोक्त के हेतु प्रसूत अष्टश्लोक्यायी प्रबन्ध का द्वारा यह प्रकाश परमादन्द दास जी के साहित्य के सर्वज्ञ के निकट हमें विज्ञान न होने केना ।

## भक्त प्रवर महाकवि परमानन्द दास जी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

### व्यक्तित्व

प्रसिद्ध ग्रन्थ के व्यक्तित्व के दो पक्ष होते हैं : (१) आन्तरिक पक्ष (२) बाह्य पक्ष । आन्तरिक पक्ष में उसके गुण, स्वभाव, रुचि, प्रतिभा आदि समस्त मानसिक क्रिया कलाओं का अध्ययन किया जाता है। बाह्य पक्ष के अन्तर्गत उसकी शारीरिक बनावट रूप, रंग, वाक्पार, लभ्यार्थ तथा स्वाध्याय आदि सम्बन्धी अन्य आवश्यक तथ्यों का अध्ययन किया जाता है।

महाकवि परमानन्द दास जी का व्यक्तित्व दोनों ही प्रकार से धीरे था । आन्तरिक पक्ष के विषय में आवश्यक तथा निम्न प्रकार है :

### व्यक्तित्व का आन्तरिक पक्ष

महाकवि परमानन्द दास जी बरहल-सम्प्रदाय के ज्ञात हस्तक्षेप कीर्तनकारी में से एक मान्य एवं प्रमुख कीर्तनकार थे । परम्परा-कार्य जी ने हूदास, परमानन्ददास, कृष्ण दास और कृष्णदास को स्वर्ण ही कीर्तित किया था । उन्मत्त गौविन्दस्वामी, जीत स्वामी, परतुंग दास और नन्ददास को चाचार्य जी के पुत्र गौस्वामी विट्ठल नाथ जी ने कीर्तित किया था । आः ये सभी भक्त कविमन्त्रानु को अन्तर्गि होलाजी के परिचित होने के कारण मन्त्रानु के अन्तर्गि जात पदार्थ कहें जाते थे ।



एक बाठ कीर्तनकारी में से गोस्वामी विट्ठल नाथ जी ने सूरदास जी परमानन्ददास जी की धासात् "सोसावागर" की उपाधि से विभूषित किया था। बालसत्य और शृंगार के मुख्य गेय कर्तों के बीच में उनके समान अन्य कोई कवि नहीं था। कवि में अपनी व्यक्तित्व के विषय में किंचित् मात्र भी आत्म चर्चा नहीं की है। अतः उनके गुण समान के विषय में जानकारी करना सत्य कार्य नहीं है।

उनके साध्य का अत्यन्त गहन अध्ययन करने पर ही उनकी आत्म स्थिति के विषय में कतिपय तथ्य उभरसुप्त होते हैं। इस प्रकार कवि के समस्त जीवन-पृष्ठ से अलग होने के लिए हमें ही प्रकार की सामग्री का सहारा लेना पड़ता है।

(१) अन्तःसाध्य - अन्तःसाध्य के अन्तर्गत कवि की अपनी जगह है जो कि उनकी आत्म स्थिति एवं आन्तरिक व्यक्तित्व की परिभाषक है।

(२) बाह्य-साध्य - बाह्य साध्य है अन्तर्गत कवि के विषय में साम्प्रदायिक साहित्य ज्ञान अन्तर्गत 'वार्ता साहित्य' एवं विभिन्न भाषाओं द्वारा की गयी चर्चा आदि तथ्य सम्मिलित हैं।

अन्तःसाध्य के अन्तर्गत 'परमानन्द सागर' जैसा 'परमानन्द दास जी की कवि' कवि के व्यक्तित्व के प्रमाण है, जिनकी सम्प्रदाय के अन्य मन्त कर्तों ने लिपिबद्ध किया था। इस प्रकार लिपिबद्ध कर स्रष्टा की 'परमानन्द सागर' की संज्ञा दी गयी स्वयं कवि

ने तफ्ती हलनाओं को सिफियद नहीं किया । रही " परमानन्द सागर " के लालार पर कवि अमरिताच के कवित्तु प्रमुख लक्षण यह प्रसार है :

(२) कवि का प्रारम्भिक जीवन एक कृष्ण  
मय के रूप में प्रारम्भ होता है।

(२) कवि महाश्वर वत्सनाचार्य जी से बीता  
लेकर उनके ज्ञान प्रभावित हुए कि वे आचार्य की समझान् रूप में ही पाने  
संगे ।

(३) कवि को माता जिता , माई बन्यु  
ह मोह नहींया ।

(੬) ਸ਼ਬਦ ਪੁਨਿ ਹੈ ਤਨਹਿ ਬਹੁਤ ਪ੍ਰੇਮ ਜਾ ।

श्री वल्लभ स्नान कान करि पायी ।

ਬਰਧੀ ਯਾਤ ਸੀਤਿ ਰਾਜਿ ਲਿਖੀ ਹੈ ਧਿਯੁ ਓਹ ਯਾਤ ਮਨਮੋ ।

पुःसंग संग सब पुरि विधि है जहान सोत नवाजी ।

पुस्तक-संख्या: ५१ अंगुल, ३११ ग्राम, विभाग १२

सुप सुपि कान कौली कौली ।

जब न होतें अपनी जानी हैं किता कब नही रही ।

बन्धु बहीदर जीउ न कस्त है मदन भी-बाल कस्त है जैसे ॥ २

१- परमानन्द धामर पद सं० ८५२

7- 11 40 246

ब्रह्म बलि बौत सवन के सहित ।

जो कौत भलो हुरी रुहि लोस, नन्द नन्दन रस लहिला ।

(१) कनि की प्रभुति वीरुणा की बात,  
पौगण्ड तपा किसीर लोलाकी के गायन में बलि रही है।

(६) उनकी मधिर का आदर्श " गीरी गाय " था ।

बात लोला का पद

श्रीरुत सान्ध कनक ब्राम्हन ।

निन प्रविबिन्ध मिलीकि कितकि धावत फल की परावत ।

० ० ०

परमानन्द प्रभु की वह लोला निरुत धुनति हिमि हलकावन ॥३॥

किसीर लोला का पद

धिया ही न बरसौ गाय ।

खरी ग्याल धिरावत कीपि हलत भरे पाय ॥

० ०

परमानन्द बात की जीवन ग्यालन पर कहुमतिनु रिताय ॥४॥

किसीर लोला का पद

हुँम पयन में फेरु नार ।

१- परमानन्द जगद पद ०० ०२५

२- " " ५६

३- " " २६४

४- " " ३२८

नव हुलसिन वृषभमान नन्दिनी हुलसे श्री ब्रजराज कुमार ॥

०

०

दीने हरि दास परमानन्द प्रेम भक्ति खना के लार ॥ १

गोपी प्रेम की ध्वजा ।

जि गोपास किजी पद कपी उर धरि स्याम भुजा ॥

०

०

छोई कूलोन दास परमानन्द जो हरि तन्मुख धार ॥ २

(१) बाह्य साक्ष्य के अन्तर्गत कवि के व्यक्तित्व सम्बन्धी आवश्यक तथ्य निम्नलिखित प्रमुख सम्प्रदाय की सम्प्रदायिक ग्रन्थों से उपलब्ध हैं :

- १- श्रीरासो वृष्णवन की बार्ता
- २- भाव प्रभात
- ३- संस्कृत बार्ता मणिमाला
- ४- ब्रह्मसामुद्र
- ५- वल्लभ दिग्विजय
- ६- ब्रह्म चरित्र
- ७- प्राकट्य विद्वान्त
- ८- श्री गोकुल नाग जो कृत स्फुट मन्त्रामृत
- ९- श्री नागेश जो कृत श्रीरासो प्रीत
- १०- वन्द्य साम्प्रदायिक भक्त के वृष्णदास आदि की उक्तिर्वा

१- परमवन्द्यनामक पद पृ० ३१८

२- .. ८२२

### धार्मिक ग्रन्थ

- (१) भक्तमाल, नामादास जी कृत
- (२) भक्तनामावली - ध्रुवदास
- (३) नागर सङ्कल्प - नागरीदास
- (४) पद संग्रह माला - नागरी दास
- (५) व्यास वाणी - व्यास हरिराय जी
- (६) भक्तनामावली - भगवत रसिक

### वाङ्मय पुस्तकें

- (१) बीज रिपोर्ट ( काशी नागरी प्रचारिणी सभा )
- (२) शिवसिंह सरोज ( शिवसिंह सैंगर )
- (३) माहर्षि कर्णाविकृत ( लिटरेचर बाफ हिन्दुस्तान  
सर बाबू श्रियंसन )
- (४) मिमन्तु विनीत ( मिमन्तु )
- (५) हिन्दी साहित्य का इतिहास ( प्रो० रामचन्द्र शुक्ल )
- (६) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास  
( डा० रामकुमार वर्मा )
- (७) हिन्दी साहित्य ( डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी )

### अष्टशायीय ग्रन्थ

- (१) अष्टशाय ( डा० धीरेन्द्र वर्मा )
- (२) अष्ट शयन की काली ( श्री दामोदरदास परीत )
- (३) अष्टशाय की रत्न सङ्ग्रहाय ( डा० दीन दयाल  
शुक्ल )

(४) वष्टशाप परिचय ( श्री माहादास परीस एवं प्रसूदयाल  
पीतल )

(५) वष्टशाप का सांस्कृतिक मूल्यांकन ( माया रानी टंडन )

(६) ब्रजभाषा के कृष्ण नवित साहित्य में अभिव्यक्ति  
शिल्प ( डा० सावित्री सिन्हा )

उपरोक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त " वत्सभोज्य  
सुधा " तथा पौदार अभिनन्दन ग्रन्थ एवं सत्संगादि पत्र पत्रिकाएँ भी  
हैं जिनमें परमानन्ददास जी को चर्चा हुई है।

उपरोक्त ग्रन्थों के आधार पर परमानन्द  
दास जी के जीवन एवं वाह्य व्यक्तित्व सम्बन्धी कतिपय प्रमुख प्रामाणिक  
तथ्य निम्नलिखित हैं :

व्यक्तित्व का वाह्य पक्ष

परमानन्द दास जी का वाह्य व्यक्तित्व  
अत्यन्त सुन्दर और सम्पन्न था । उनका उच्च मस्तक विमल नेत्र तथा  
उच्च नासिका कद लौटा था । वाक्पत्य प्रवर्तनी होने के कारण गरीर  
हृष्ट सुष्ट तथा आकर्षक था ।

निष्कर्षतः उनका व्यक्तित्व अत्यन्त  
भावुक, मन्वीर, उत्पन्नित एवं त्यागमय था । भगवद्भक्ति में वाजीवन  
तन्मया, सर्वकार के विरुद्ध ब्रह्मणि में वास्था धारणा में प्रता , सत्संग  
में प्रेम वादि उनके व्यक्तित्व के अनेक विशिष्ट गुण थे ।

व्यक्तित्व के प्रस्तुत प्रकरण में कवि के जीवन वृत्त से सम्बन्धित आवश्यक तथ्यों का उद्घाटन करना भी समीचीन प्रतीत होता है। उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर संक्षिप्त में कवि का जीवन-वृत्त निम्न प्रकार है :

वर्णानन्ददास जी संवत् १२५० के लगभग कन्नौज के एक कान्य कृषक ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। उन्होंने स्वयं अपनी जाति का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। उनके जन्म के अवसर पर उनके पिता की वार्त्तिक ज्ञान होने के कारण नाम वर्णानन्द प्राप्त हुआ था। कतः उनका नाम 'परमानन्द' रखा गया था। बचपन से ही कवि आध्यात्मिक प्रवृत्ति के थे। पिता परित्यक्तबाली विद्याधारा के होने के कारण दोनों के स्वभावों में पर्याप्त अन्तर था। एक बार वे मकर फल के अवसर पर प्रयाग गये, जहाँ वे उनका महाशुभ वत्समाचार्य से साक्षात्कार हुआ तभी से वे उनके शिष्य बन गये तथा गृह वापस न आकर सीधे ब्रज वास के लिए प्रस्थान कर दिया। अपनी जानार्थ के साथ रहकर वे नगवान् को कीर्तन सेवा में लक्ष्मीन होकर आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने लगे।

संवत् १६४१ में कृष्ण जन्माष्टमी के दूसरे दिन नवमी की 'पञ्चिकावाँ' के महोत्सव के उपरान्त इस महान् आत्मा ने अपनी भौतिक शरीर का विसर्जन कर दिया।

### कवि : कृतित्व

परमानन्द दास जी कृष्ण भक्ति कवि थे ,  
उनमें नैसर्गिक काव्य प्रतिभा थी । दीप्ता सेतु ही वे भगवत् विषयक  
पद बनाकर गायन किया करते थे । इस प्रकार भगवान् के गुणगान की  
प्रवृत्ति उनमें प्रारम्भ से ही विद्यमान थी । मङ्गलप्रभु वल्लभाचार्य जी की  
शरण में जाते के पश्चात् उन्होंने भागवत के वल्लभ स्कन्ध की सीता की  
विरचित पदों में निबद्ध करके कीर्तन गायन प्रारम्भ किया था । उनके वधि-  
काश का चुबौधियाँ पर बाधा रहित है। उनके निम्नलिखित ग्रन्थ हैं, परन्तु  
‘ परमानन्दसागर ’ के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थ प्रामाणिकता की कमीटी  
पर खरे नहीं उतरते हैं :

- १- दानसीता
- २- उदवसीता
- ३- धूमचरित्र
- ४- संस्कृत रत्नमाला
- ५- वधि सीता
- ६- परमानन्ददास की पद
- ७- परमानन्द सागर

उपरोक्त सभी ग्रन्थों में अंतिम दो ग्रंथ ‘ परमा-  
नन्ददास जी की पद ’ और ‘ परमानन्द सागर ’ ही उपलब्ध एवं मान्य  
ग्रन्थ हैं। अन्य पाँच ग्रंथ अनुपलब्ध एवं विवादास्पद हैं। ‘ परमानन्द सागर ’  
की स्वयं परमानन्ददास जी द्वारा दिया हुआ नाम नहीं है, बल्कि उनके  
भक्तों द्वारा उनके पदों के लिए दिया हुआ नाम है। इसकी प्रमाणित पाँच



प्रतियाँ भीनाथद्वारा के तिलकाक्ष महाराज जी के निजी पुस्तकालय में तथा दो प्रतियाँ सम्प्रदाय के विद्वान् श्री द्वाराका दास परीस जी के पास, विद्या विभाग, कांकिरीली में सुरक्षित हैं। विद्या विभाग कांकिरीली की एक प्रति में सर्वाधिक पद हैं। उसकी पद संख्या ११२१ है। शेष प्रतियाँ एक दूसरे की प्रतिलिपि ही जान पड़ती हैं। प्राचीनतम प्रति का संवत् १७५४ मिला है।

वीर्य काल तक कवि का काव्य मौखिक कीर्तन परम्परा की सीमा में ही बाध रह्यो। तीस रिपोर्टें ब्रह्मा इतिहास ग्रंथों में कवि के जिन अन्य ग्रंथों का उल्लेख है उनका गूढ़लिकान्ध्यायि सभी लेखकों ने किया है, वास्तव में कवि द्वारा लिखित नहीं है। दतिया राज पुस्तकालय जादि में भी कवि का कोई अन्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

‘परमानन्द सागर’ में कवि ने मुख्यतः दशम स्कन्ध की कृष्ण सीता का ही गायन किया है, उसमें भी कवि दशम स्कन्ध के पूर्वार्ध तक ही सीमित रहा है। लगभग ६५ विषयों पर कवि के ११०० से ऊपर पद कहे जाते हैं। इस प्रकार परमानन्दसागर की १२ प्रतियाँ देखने में तथा तीन प्रतियाँ सुनने में जाती हैं। द्वाराका दास जी परीस के अधिकार में की प्रति है उसमें ८०० से ऊपर पद हैं। संवत् १७५४ स्पष्ट रूप से दिया हुआ है। सभी हस्तलिखित प्रतियाँ के कव्यमय मन से सब निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :

(१) सभी प्रतियाँ प्रतिलिपियाँ हैं। कवि का कोई स्वहस्त लिखित ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, क्योंकि कवि का लक्ष्य तो अपनी काव्यमय वाणी से कीर्तन के आधार पर कृष्ण भक्ति की जगमगी सीमा तक पहुँचने था। भक्तवत्सलता के कारण कवि की मसि पात्र सब

तेलनी स्पर्श के लिए अवकाश भी न था और न आवश्यकता ही सम्भली ।

(२) प्रायः सभी प्रतियोगी पद पदों का क्रमिक रूप से विकास हुआ है।

(३) कवि का ध्यान प्रमुखतः वराम स्कन्ध पर ही केन्द्रित रहा है।

(४) पदों के विषय कृष्ण का बाल स्वरूप पीगण्ड एवं किशोर लीला, गोपी भाव, विरह भाव, युगल लीला आदि ही थे ।

(५) कवि का अपना "सागर" पुर के सागर की भाँति स्कन्धात्मक पद्धति पर उपलब्ध नहीं है।

(६) भगवान् कृष्ण की समयी भाषात्मक लीलाओं एवं दीनता विनय के अतिरिक्त अन्य विषयों पर उसने पद रचना नहीं की ।

(७) परमानन्दसागर के अतिरिक्त अन्य रचनाएँ संदिग्ध एवं अप्राप्य हैं।

परमानन्दसागर जी के पदों का क्रम तीन प्रकार से मिलता है :

(१) वर्णाश्रित क्रम

(२) नित्य लीला क्रम

(३) भागवत के प्रयोगानुसृत पद एवं प्रकीर्ण

विनय आदि के पद ।

जैसा कि ऊपर विवेचन किया जा चुका है कि कवि के काव्य के प्रमुख विषय उनकी हृष्टदेव श्रीकृष्ण का बाल, पीगण्ड वीर किशोर सीता गान था। अतः इन्हीं तीन सीतावाँ के पदों का समावेश उसके काव्य में हुआ है। कवि का अधिकांश साहित्य तो काल के काल गाल में समाविष्ट हो गया था। कवि ने दूर की माँति गोवर्धन नाथ जी के मन्दिर में कीर्तन सेवा के रूप में ७० वीर ७२ वर्षों में सदा-वधि पदों की रचना की होगी। यह केवल कल्पना का ही विषय रह गया है, परन्तु अब तो पद संख्या लगभग १४००, १५०० तक ही कही जाती है।

### “परमानन्द सागर” के व्ययस्य में विभिन्न विद्वानों का योगदान

जैसा कि पूर्व प्रकरण में व्यक्त कर चुके हैं कि “परमानन्दसागर” के व्ययस्य की वीर बहुत कम विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ है। परमानन्दसागर के व्ययस्य में जिन व्ययस्यवाँ का प्रमुख रूप से योगदान रहा है, निम्न प्रकार है :

### श्री दाशरिकादास परीस

परीस जी ने परमानन्द सागर का व्ययस्य “सागर धर्यो”, मयत का भागवतीय रूप, सागर में भागवती सीता (बाल सीता, कुमार सीता, पीगण्ड सीता, किशोर सीता) सागर के दो विभाग तथा उसमें सेवा का रूप आदि शीर्षकों के अन्तर्गत किया है। इस प्रकार के व्ययस्य में परीस जी की व्ययस्य-दृष्टि प्राचीन वार्तावाँ के आधार पर ही केन्द्रित रही है, उनकी मौलिक उद्भावनावाँ का प्रायः

भाव ही रहा है। परमानन्द सागर के पद उदाहरण सुनि प्रस्तुत करी हुए आपने इसकी सुरसागर के समकक्ष एक विशिष्ट कृति बताया है। अन्तर केवल उसके विस्तार में ही निश्चित किया है। परीस जी ने बाल, कुमार, पांगण्ड तथा किशोर लीलाओं के पदों का पाठकों के समक्ष केवल प्रस्तुतीकरण मात्र ही किया है। उनके सन्दर्भ में साहित्यिक दृष्टिकोण नहीं बताया है। आपने परमानन्द दास जी के प्रायः सभी पदों में बाल लीला की श्रृंखला को स्वीकार किया है। आपने 'सागर' के दो विभाग (वर्णाश्रित्य, नित्यलीला रूप) निश्चित किये हैं तथा 'सागर' की कई लीलाओं की भागवत में प्रकट रूप से न होने की बात कही है- जैसे दान लीला, संहिता आदि।

परीस जी ने 'सागर' के पदों भागवत के दशम स्कन्ध तथा अन्य शास्त्र, पुराणों और लोक भाषणों का समावेश स्वीकार किया है।

#### डा० दीन दयालु गुप्त

गुप्त जी ने अपनी शोध-ग्रन्थ 'वष्टाव कीर वल्लभ सम्प्रदाय' के अन्तर्गत परमानन्ददास जी का जीवन वृत्त तथा उनकी रचनाओं का भी विवेक प्रस्तुत किया है। 'सागर' के व्ययस्य के अन्तर्गत आपने 'परमानन्द दास जी के काव्य का विवेक' नामक शीर्षक में काव्य के विषय, भाव व्यंजना, बाल भाव, चित्रण, गीतोलन, हुंकार प्रेम, प्रेमानुभूति, वनिताञ्जा, प्रकृति चित्रण, वियोग में प्राकृतिक व्यापार आदि विषयों पर उपलब्ध रूप से प्रकाश डाला है।

इसके अतिरिक्त ' परमानन्द दास के काव्य में ' क्या कौशल ' नामक शीर्षक में वर्णन, पौराणिक उल्लेख, भाषा-शैली, शब्दों का प्रयोग कतिपय कन्द तथा मुहावरों के बारे में अध्ययन किया है।

गुप्त जी ने परमानन्द दास जी के काव्य के विषय में निम्न प्रकार से विचार प्रस्तुत किये हैं :

परमानन्ददास जी का काव्य प्रबन्धात्मक नहीं है। वह कृष्ण चरित्र से सम्बन्ध रखता है। निम्न निम्न प्रसंगों में विभाजित एक सुवक्ता काव्य है। कवि ने अपने काव्य का विषय कृष्ण जी की प्रेम पूर्ण रसमयी ब्रज लीलाओं को ही बताया है, कृष्ण चरित्र के रास-वध आदि प्रसंगों को छोड़ दिया है। परमानन्द दास जी के काव्य में प्रेम-व्यंजना सत्य जीर्णान्दर्य की परम सीमा तक पहुँच कर काव्यानन्द का वबाध शीत प्रवाहित करती है। उन्होंने भाव- शीन्दर्य तथा रस प्रवाहिनियों काव्य शक्ति के सुन्दरकारी रूप को सराहना की है। भाषात्मक वस्तुति के विषय परमानन्द दास जी को ' सुर ' के समान बताया है। वात- भाव चित्रण में भी वह सुर के समान है। ' परमानन्ददास ने वात भाव और वात्सल्य में सने मातृ हृदय के प्रेम परे मातृ उनके हृदय की भावनाओं आदि के सजीव चित्र वर्णित किये हैं।

संदीप में गुप्त जीने परमानन्द दास जी की काव्यगत विशेषताओं उनके काव्य की विषय वस्तु आदि के विषय में काफी गहन अध्ययन किया है।

### डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल

शुक्ल जी ने अपनी सौध ग्रन्थ कविवर '

परमानन्द दास और उनका साहित्य ' के वृत्तगत निम्नलिखित शीर्षकों में अपना व्ययक्त विवेचन प्रस्तुत किया है : कवि का जीवन-वृत्त, परमानन्द दास जी रचनार, हुदागत दर्शन और परमानन्ददास जी, परमानन्द दास जी की मजिह, भगवत्सोला, परमानन्द धागर में कृष्ण, राधा, गोपियाँ और रास , काव्य- पदा, कीर्तनकार परमानन्ददास जी , परमानन्ददास जी ब्रज- संस्कृति , परमानन्ददास जी की भाषा, कतिपय क्रियाफर्माँ के उदाहरण, कवि की बहुकृता, अष्टशप में परमानन्द दास जी का स्थान, हिन्दी साहित्य की ' परमानन्द दास जी की देन ' ।

उपर्युक्त सभी शीर्षकों में शुक्ल जी ने

परमानन्द दास के जीवन वृत्त से तथा उनके साहित्य के विषय में उपलब्ध ग्रन्थों तथा वार्ता साहित्य के आधार पर कई पाठित्यपूर्ण ढंग से अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, परन्तु इन शीर्षकों में से ' काव्य पदा ' तथा ' परमानन्ददास जी की भाषा ' के वृत्तगत जी संदिग्ध विवेचन किया है, वही साहित्यिक व्ययक्त की दृष्टि से अत्यन्त माहत्वपूर्ण है, शुक्ल जी के अनुसार कवि ने काव्य पदा के वृत्तगत फर्माँ के भाव- पदा और कला पदा दोनों का वर्णन किया है। भाव- पदा के वृत्तगत कवि की मृत्युः झुगार रस का ही कवि निश्चित किया है। कवि दृष्टि भगवान् कृष्ण की बाल, किशोर सब पौण्ड्र सीला की और ही अधिक केन्द्रित रही है। वात्सल्य रस की भी सुन्दर व्ययक्त हुई है जिसके वर्णन में कवि सुर की भाँति पंडित हैं। झुगार रस के संयोग और वियोग दोनों पदाँ की सुन्दर

व्यंजना हुं हैं। इसके वतिरिक्त उनके काव्य में घोर, रीद्र, व्युत्पन्न, शक्ति  
आदि रसों के भी उदाहरण मिल जाते हैं। कला-पदा के वन्तर्गत तुलना  
जो ने वर्णन, इन्द्र, भाषा सी-छय का भी उदाहरण दिया है। वर्ण-  
कारों के वन्तर्गत शब्दार्थकार और व्यर्थकार दोनों ही प्रकार के वर्णकारों  
के उदाहरण मिल जाते हैं। शब्दार्थकार के वन्तर्गत अनुप्रास, धीप्सा, यक्ष,  
स्तिप्सादि के उदाहरण हैं। व्यर्थकार के वन्तर्गत उपमा, उदाहरण,  
प्रतीप, रूप, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, वतिरिक्त आदि के उदाहरण  
पाये जाते हैं।

शुभल जी ने परमानन्द सागर के छन्दों के  
सन्दर्भ में भी व्यवयन प्रस्तुत किया है। उनके काव्य में कृष्ण, विष्णु, पर-  
शुर, सिंह, धार, तटिक, चवपैया, रीता, चाँपाई, दोहा, लावनी,  
वादि छन्द मिलते हैं। उन्होंने छन्दों में पात्राओं की विपदा गति वीर  
संगीतात्मकता का भी विशेष ध्यान रखा है, यति धन की चिन्ता नहीं  
की है। कहीं कहीं उन्होंने उर्दू फारसी छन्द शैली को भी अपनाया है।

परमानन्द सागर की भाषा के विषय में शुक्ल जी ने निम्न लिखित तथ्यों का उद्घाटन किया है :

(१) उनकी भाषा में ब्रज भाषा का चिह्नित रूप मिलता है।

(१) उनकी भाषा वैभवशाली, सुदृढ़, सुष्ट, प्राज्ञित और संस्कृत मय है।

(२) कवि ने तत्सम, तद्भव एवं देशज शब्दों केवतिरिक्त जर्सी, फाखी वादि भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है।

निष्कर्ष स्वरूप हम कह सकते हैं कि परमानन्द सागर के अध्ययन के जिस क्षेत्र में शुक्ल जी ने पाण्डित्यपूर्ण ढंग से अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, वह प्रशंसनीय है। परन्तु उनके अध्ययन का यह क्षेत्र सीमित ही माना जायगा, क्योंकि किसी कवि के काव्य के केवल रस, बन्द, कर्तकार वीर भाषा का अध्ययन कर लेने से ही हम उस काव्य का पूर्णरूपेण अनुशीलन एवं मूल्यांकन नहीं कर सकते। परन्तु फिर भी शुक्ल जीने बहुत सोचा तक 'सागर' के कवि का सही ढंग से मूल्यांकन करने में भ्रम साध्य यत्न किया है। निःसन्देह उनका यह साहित्यिक धर्म हिन्दी साहित्य-कात् को एक वप्रतिम देन है।

उपर्युक्त कव्यज्ञानार्थी के वतिरिक्त परमानन्द दास जी के काव्य का पीढ़ा बहुत अध्ययन वष्टकापीय कवियों के साथ अन्य विद्वानों ने भी किया है, उनमें से प्रमुख ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार इस प्रकार हैं : वष्टकाप परिचय- प्रो. दयाल पीतल । वष्टकाप का सांस्कृतिक मूल्यांकन - मायारानी टंडन , ब्रज भाषा के कृष्ण भक्ति साहित्य में अभिव्यक्ता सिल्प- डा० सावित्री सिन्हा आदि ।

उपर्युक्त कृतियों में परमानन्ददास जी का जीवन परिचय तथा उनके काव्य का संक्षिप्त विवेचन मात्र ही मिलता है। उनके संक्षिप्त विवेचनों में भी कोई नवीन मौलिक उद्भावनाओं के दर्शन नहीं होते हैं। उनके वर्णन की विषय-वस्तु, डा० दीन दयाल गुप्त तथा डा० गीषर्धन नाथ शुक्ल जी के वर्णन की विषय वस्तु से ही साम्य भाव रखती है। इसके वतिरिक्त सित हरिवंश जी के शिष्य व्यास जी ने भी परमानन्ददास जी के कतिपय प्रसु पदों की प्रशंसा मात्र ही की है।



इस प्रकार यह सन्दर्भ में अन्य जितने भी ग्रंथ एवं ग्रन्थकार प्रवर्तित हैं उनके विवेक में परमानन्द दास जी की चर्चा मात्र ही उपलब्ध होती है। 'सागर' का विस्तृत एवं परिनिष्ठित साहित्यिक अनुशीलन समग्र रूप में किसी ने नहीं किया है। जो कि साहित्य की अभिवृद्धि की दृष्टि से परमावश्यक है।

द्वि

ती

य

। अध्याय

### परमानन्द सागर में भाव संस्थापन

भाव : शास्त्रीय विवेक , परमानन्द सागर की भाव संस्थापन पद्धति , भारतीय व्याख्याओं द्वारा गृहीत स-विद्वान्ता तथा स- निष्पत्ति , परमानन्द सागर में विभिन्न सों का परिपाक , शृंगार स एक ऐद्वान्तिक विवेक , परमानन्द सागर में शृंगार स वर्णन, शान्त स एक ऐद्वान्तिक विवेक, परमानन्द सागर में शान्त स वर्णन, वात्सल्य स एक ऐद्वान्तिक विवेक, परमानन्द सागर में वात्सल्य स-वर्णन, वदभुत स एक ऐद्वान्तिक विवेक, परमानन्द सागर में वदभुत स , कलुष स : एक ऐद्वान्तिक विवेक, परमानन्द सागर में कलुष स वर्णन, रौद्र स एक ऐद्वान्तिक विवेक, परमानन्द सागर में रौद्र स वर्णन, वीर स एक ऐद्वान्तिक विवेक, परमानन्द सागर में वीर स वर्णन, वीर स एक ऐद्वान्तिक विवेक, परमानन्द सागर में वीर स वर्णन का प्रयोग ।

### परमानन्द सागर में भाव- संस्थापन

“ परमानन्दसागर ” की भाव संस्थापन पद्धति के निरूपण से पूर्व “ भाव ” का शास्त्रीय विश्लेषण एवं विवेचन परमावश्यक है।

#### “ भाव ” : शास्त्रीय विवेचन

भारतीय भाषायाँ ने सदृश्यों की चित्तवृत्तियों में अन्त रूप से परिब्याप्त रहने वाले संस्कार को ही भाव रूप में स्वीकार किया है। उनके मन्तव्यानुसार यह मानवीय संस्कार ही अनुकूल परिस्थितियों में प्रकट होकर वाणी , रचना और अनुभूति के द्वारा भाष्यार्थों को भावना कराते हैं। इसीलिए इनको “ भाव ” कहते हैं।

भावों को मनोविषय भी कहते हैं। भाव मन में उत्पन्न होने वाले ऐसे विकार नहीं हैं जो कभी उत्पन्न हों और कभी न हों । उनका स्थायित्व ब्रह्मा अस्तित्व एवम् ही रहता है। वे मानसिक जीवन के रंग स्वरूप होकर उसमें सबंदा व्याप्त रहते हैं। मन में उदीप्त कोई भी ऐसी तरंग नहीं है जिसमें कि भावों का समावेश न हो । संसार में हम जो कुछ ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसे भावों ही के द्वारा ग्रहण करते हैं। हमारा यह विचार “ यह हमारी विषय है ” एक भाव है और इसी भाव के कारण “ हम ” और “ तुम ” का भेद माना जाता है। भावों में सबसे बड़ी एक विशेषता यह होती है कि मनुष्य स्वयं तो भावों का अनुभव करता है, परन्तु कोई बाह्यमी उन्हीं भावों के कुछ औरों का अनुभव करना चाहे तो सर्वथा

असंभव है। 'भाव' का शाब्दिक अर्थ विचार भी है। 'भाव' प्रत्येक व्यक्ति की अन्तरात्मा का एक विशेष धर्म है। अतः शब्दों की सहायता से इस बात का वर्णन करता असंभव है कि वास्तव में भाव क्या है ? मनुष्य उनका केवल अनुभव ही कर सकता है परन्तु उनके वास्तविक स्वरूप का वर्णन नहीं कर सकता ।

भाव तीन प्रकार के होते हैं :

१- इन्द्रियजन्य भाव

२- प्रज्ञात्मक भाव

३- गुणात्मक भाव

इन्द्रियजन्य भावों के अन्तर्गत वह सभी भाव गिने जाते हैं जो ज्ञानेन्द्रियों से उत्पन्न होते हैं।

प्रज्ञात्मक भावों की श्रेणी में भविष्य की चिन्ता व्यक्त करते हुए संचारों भाव उत्पन्न होते हैं।

गुणात्मक भावों की शृंखला में विभावों को रखा जाता है, दो कि दो प्रकार के होते हैं, स्थायी भाव, विभाव । विभाव भी दो प्रकार के होते हैं (क) आतमिक विभाव (ख) उद्दीप्त विभाव । स्थायी भावों की संस्था नहीं मानी गयी है- रति, हास, शोक, उत्साह, क्रोध, भय, जुगुप्सा , विस्मय और निर्वेद । बहुत से निर्वेद को नहीं मानते हैं।

उपरोक्त भावों से प्रभावित होकर ही कवि भाव-जगत् में पहुँचकर अपनी काव्यमय वाणी से इस स्नात होकर काव्य को जन्म देता है।

### परमानन्द सागर की भाव संस्थापन पद्धति

परमानन्ददास जी के भावुक हृदय से सभी प्रकार के भावों के उद्गारों का उद्घाटन हुआ है। उनके जो कुछ पद ऐसे हैं जिनमें कि उक्त तीनों प्रकार के भावों के समन्वित रूप का प्रस्फुटन अत्यन्त ही मनो-हारी ढंग से हुआ है। उनकी भाव संस्थापन पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है उनका मानव प्रकृति सम्बन्धी सूक्ष्म निरीक्षण और गाम्भीर्यपूर्ण विवेक और वर्ण्य विषय का तद्वय चित्रण एवं मनोबुद्धि भावों का क्रमिक विकास। वे जो भी भाव व्यक्त करना चाहते हैं चाहे वह भक्ति-भावना के आवेश में हो अथवा हृंगार-भावना के सौन्दर्य से बालीकृत हो, सभी को अपनी विशिष्ट प्रज्ञा से चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया है। कवि अपने भावोत्कर्ष विधान की इस विशिष्ट प्रक्रिया के द्वारा वर्ण्य विषय की वास्तविकता से कहीं भी पराङ्मुख नहीं हुआ है। वस्तुतः वर्ण्य विषय के प्रारंभ से ही ऐसा आभास होने लगता है कि किसी वस्तु, रूप-वैभव, विशिष्ट परिवेश अथवा मनोदशा की अभिव्यक्ति करने वाला बहुत भाव आरोंपर विकसित होता जा रहा है। परमानन्ददास जी की भाव-संस्थापन-पद्धति की हृदयंगम करने के लिए 'सागर' से कुछ दृष्टान्त भी प्रस्तुत करना आवश्यक है :

प्राट भये हरि सो गोकुल मैं ।

नाचत गोपी गोप परस्पर वानन्द प्रेम भरे हैं मन मैं ॥

गृह गृह से गोपी सब निकसों कंचन पार धरे हाथ मैं ।

'परमानन्ददास' की ठाकूर प्राट नन्द जलोदा के घर मैं ॥ १

### भाव- विश्लेषण

उपर्युक्त पद में कवि पाठकों की मनोभूमि में श्रीकृष्ण के जन्म होने के समय की एक मनोहर कान्ति का चित्र प्रस्तुत करना चाहता है। श्रीकृष्ण जन्म की इस पावनमयी बेला में गोकुल के गोप गोपिकाओं के हृदय में जो अतिशय आनन्द, अतुराग के भावों के उद्गारों का उत्पाटन हो रहा है, उन्होंने भावों के उद्गारों को कवि पाठकों के मानस- पटल पर अव्यक्त कर देना चाहता है। पद की प्रथम पंक्ति ही अपने बाद की पंक्तियों में निहित संदेश को सूक्त है। गोकुल में श्रीकृष्ण भगवान् प्रगट हो गये हैं। यह स्वाभाविक ही है कि शिशु के जन्म अवसर पर नृत्य एवं गान आदि के क्रिया कलाप प्रस्तुत हों। प्रस्तुत पद की द्वितीय पंक्ति में उन्होंने क्रिया- कलापों को उद्घाटित किया है। श्रीकृष्ण के जन्म का सुख समाचार सुनते ही पुलकायमान होकर अत्यन्त प्रसन्नता के भाव में मग्न होकर गोप गोपियाँ अपने अपने गृहों में स्वर्णिम धातों को अपने अपने हाथों पर सजाकर नृत्य- कला का प्रदर्शन करते हुए यशोदा के घर तक पहुँचते हैं।

प्रस्तुत पद में कवि ने श्रीकृष्ण- जन्म के समय का एक आकर्षक एवं मनोहारी चित्र उपस्थित किया है। कवि पाठकों के समक्ष उस समय के प्रेम और आनन्दोत्सव के भाव प्रदर्शन का एक सफल चित्र प्रस्तुत कर सका है। प्रस्तुत पद में स्वाभाविक एवं क्रमबद्धता भी परिलक्षित होती है। कवि अपने भाव प्रकाशन में पूर्णरूपेण सफल है।

परमानन्ददास जी भावों का तद्बोध एवं मनोतुल्य चित्रण करने में भी दक्ष हैं। प्रस्तुत पद से इन दोनों बातों की प्राप्ति की जा सकती है। जन्म अवसर का तद्बोध चित्रण कवि ने गोप- गोपिकाओं की

नृत्य-कला द्वारा किया है। साथ ही मनोनुकूल चित्रण की सफलता कवि की इस सन्दर्भ में मिल जाती है कि कवि अपने अनुकूल भी चित्रण कर सका है। जैसाकि वह इस प्रसन्नता के अवसर पर अपेक्षा करता था और नृत्य-गान स्त्री स्वभाव के भी अनुकूल ही होता है। अभिप्राय यह है कि कवि के इस पद में अवसरानुकूलता की मनोनुकूलता एवं स्वाभाविकता के परिप्रेष्य में निहित भावों का क्रमिक विकास भी सम्मिलित है।

‘सागर’ के भावुक कवि की भाषामिव्यक्ति का चित्रण एवं उनकी भाव - संस्थापन - पद्धति एक दूसरे पद द्वारा द्रष्टव्य है :

“जा दिन कन्हैया मोठी मैया कहि बोलिगी ।

तादिन बति वानन्द गिनौरी माई रुनक भुनक ब्रज गति  
मैं होलेगी ।

प्रात ही तिरु माय हुसिये की धाई बंधन बहरवा के होलेगी ।

‘परमानन्द’ प्रभु नवल हुंमर मेरी ग्वालिन के रंग बन मैं  
फिलीलेगी ॥ १

भाव- विश्लेषण

प्रस्तुत पद में कवि ने मातृ स्नेह- भाव का चित्रण करके अपने कोमल हृदय की कोमलकान्तमयी भावनाओं का परिचय दिया है। कवि के हृदयगत भावों में कितनी कोमलताएं एवं भीताप हैं। पद की पहली पंक्ति से ही मातृ हृदय स्ने की मृदुल एवं वफ़ा वच्चा होने लगती है। माता

१- परमानन्द सागर - डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल पृ० पर संस्था के

के हृदय में पुनः के प्रति अतुलनीय प्रेम एवं पुनः से बूट बभिलाणा उनके प्रस्तुत पद को प्रथम पंक्ति से सुलभित होने लगती है। पद की प्रथम पंक्ति के भाव में ही कितनी स्वाभाविकता एवं सहज भाव का दिग्दर्शन है जो कि भावुक कवि हृदय के सरस भावों का सुन्दर प्रतीक है। पद की प्रथम पंक्ति में माता क्योदा अपने पुनः श्रीकृष्ण के बोलने के बारे में भावी कल्पना करती हुई मेया कहल-वाने को बभिलाणा व्यक्त करती है और वह उस दिन की प्रतीक्षा भी कर रही है। पद की द्वितीय पंक्ति में हमें मातृ हृदय में सगाहल बानन्द के भावों से भी परिचित कराती है, जिस समय श्रीकृष्ण कृष्ण बलने फिरने योग्य हो जायेंगे उस समय वह प्रज की वीफिकावों में रुनक भुनक करती हुए अपने नन्हें नन्हें पैरों से हौलेंगे, प्रातःकाल ही गाय दुहने को बहड़े को लौलेंगे, कृष्ण फिर कृष्ण और बड़े हो जायेंगे तो बन में गोप गौफिकावों के साथ बाल डोहा करेंगे ।

इस प्रकार पद रचना में एक पंक्ति का दूसरी पंक्ति से कितना सह-सम्बन्ध कवि ने स्थापित किया है उतना ही सह-सम्बन्ध उनके भावों में भी परिलक्षित होता है। कवि के पद की विशेषता क्लेश प्रकार से सिद्ध होती है। पद में कवि ने अपनी सरल भाषा प्रयोग की है कि साधारण पाठक भी उसे धृदरूपम कर सकता है। साथ ही उसमें निहित भाव-श्रवणता भी स्वी प्रकार की है। कवि मातृ हृदय का तो कृष्ण पारलो है उसने जो भी भाव व्यक्त करता चाहता है उसे चरम बिन्दु पर पहुँचा दिया है। एक भीसी माँ के हृदय की उच्छ्वसित भावी कल्पनावों को कवि जिस उदारता से लेकर चला है वह उपाय है और वह जो कात्पनिक चित्र सीचता है, उसमें उसे पूर्ण सफलता मिली है। प्रस्तुत पद में क्रमबद्धता, स्वाभाविकता



सरलता, सहजता एवं कल्पना की भाव भूमि में हमें स्वीकृतानुभूति के भी दर्शन हो जाते हैं।

कवि के पद की यदि हृन्निद्रियमन्य, प्रज्ञात्मक एवं गुणात्मक भावों की कसौटी से परख की जाय तो भी पद सरा उतरता है। कवि ने अपनी ज्ञानेन्द्रियों से जिस प्रकार से ज्ञान की कल्पना की है उसका वह यक्षोदा, कृष्ण, गाय, बछड़े, गोफिकावों के वाधाएँ से कर सका है। जो कि उसके हृन्निद्रियमन्य भावों की कोटि क्रम के विनयान्तर्गत है। प्रज्ञात्मक भावों की कोटि में संवारी भावों की व्यवस्था होती है। प्रस्तुत पद में मातृ हृदय में जीतसुख एवं उत्कंठा के भावों का संवरण हुआ है जो कि प्रज्ञात्मक भावों के प्रतीक हैं। गुणात्मक भावों के अन्तर्गत स्थायी भाव, विभाव (वात-म्बन - उद्दीप्त) वापि भावों की व्यवस्था की गयी है जो विभाव भावों की याग्यता करने में सहायक होते हैं। उन्हें वातम्बन कहते हैं। प्रस्तुत पद में भोक्त्रुणा वातम्बन है वह समस्त भाव, विभावों के केन्द्र बिन्दु हैं। माता यक्षोदा के हृदय में वातसत्य भाव का भाव निहित है।

“ सागर ” की भाव संस्थापन पद्धति को हम शृंगार रस के संयोग पदा के निम्नोक्त उदाहरण की प्रतिष्ठाया में भी देख सकते हैं :

“ वति रति स्याम सुन्दर सौं बाढ़ी ।  
 दैति सरूप गोपाल तास की रही ठणी सी ठाढ़ी ॥  
 घर नहिं जाइ पय नहिं रंगति चलनि बलनि गति थाकी ॥  
 हरि ज्यों हरि को मगु जोषति काम मुगुधमति ताकी ।  
 नैनहि नैन मिले मन बहम्भ्यो यह नागरि वह नागर ।

“ परमानन्द ” बीच ही का मैं बात खु नई उजागर ।। ” १

### भाव- विश्लेषण

उपर्युक्त पद में कवि ने अपनी मनोगत भावों की इस प्रकार निश्चित किया है कि वह स्व पाठक जनों के समक्ष राधा और कृष्ण के प्रेमालाप का एक सजीव सा चित्र उपस्थित कर देते हैं। प्रस्तुत पद में कवि की भाव- संस्थापन पद्धति इतनी कठूठी है कि पद की प्रथम पंक्ति ही पूरे पद के भाव के भेद को उजागर कर देती है। पद में भाव विकास इतना स्वाभाविक है कि राधा श्रीकृष्ण के मनोहारी स्वरूप को एक फलक देकर ही राधा ठगो सी स्तम्भित हो जाती है। उसे इतनी चेतना नहीं रहती कि उसे घर भी पहुँचना है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि इतनी कृष्णमय हो जाती है कि उसमें ऊपर उधर चलने फिरने की शक्ति भी नहीं रहती, बलहीन होगयी है। दोनों एक दूसरे की बन में देखते हैं। के बन में ही रति- भाव उग्र हो जाता है और दोनों के पारस्परिक मधुर मिलन का रहस्य भी खुल जाता है।

उपर्युक्त पद में कवि जिस भाव की प्रतिस्थापना करना चाहता है वह राधा के रति भाव की उग्रता का भाव है जिसका उत्तरोत्तर विकास पद में दर्शनीय है। कवि इस भाव चित्र को दोनों के नयना- निराम के कवसर से ही संजीकर संयोग के चरम बिन्दु तक पहुँचाने में समर्थ है। पद-क्रम में भावों के क्रमिक विकास का सौन्दर्य स्वाभाविकता की भाव भूमि में ही दृष्टिगत होता है। पद संरचना में संयोग तक की स्थिति तक पहुँचने में कवि की जिन भाव- परिणियों को पार करना पड़ा है उनमें यथार्थभाव चित्रण के दर्शन होते हैं। इस प्रकार कवि की भाव संस्थापन पद्धति उनके शृंगार

रस के संयोग पदा में भी बड़े ही अनुपम ढंग से व्यक्त हुई है।

पद की शास्त्रीय कड़ीटी पर परस्पर से उसमें गुणात्मक भाव के सभी वेग प्रत्येकों का चित्रण हुआ है। पद में स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण ( बालम्बन ) हैं , उनके नेत्रों के मिलने से तथा उनके रूप-सौन्दर्य के दर्शनों से राधा ( बाप्रय ) के रति भाव की जाग्रति हुई है। श्रीकृष्ण की सौन्दर्य छटा ने राधा के रति भाव की जो उत्पत्ति की है वह ( रूप-सौन्दर्य ) ही ' उद्दीप्त विभाव ' है । पद में स्थायी भाव ' रति भाव ' को अभिव्यक्ति परिलक्षित है। बालम्बन और बाप्रय दोनों की बेचटारें एक दूसरे की उद्दीप्त करती हैं।

उपसृत उदाहरण में कवि के व्यर्थ भाव- चित्रण का उत्तरीतर विकास क्रम शृंगार रस के संयोग पदा के पद के आधार पर प्रस्तुत किया था । अब हम कवि के स्वी रस में उनके वियोग पदा के पद में इन्हीं भाव- चित्रों का निदर्शन करेंगे और यह देखने का प्रयास करेंगे कि वस्तु प्रकार के पदों की भाव संस्थापन पद्धति में कवि अपनी भाव निरूपण में कहीं तक सफल हो सका है :

“ ब्रज के बिहरी लोग विचारे ।

बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े बति दुबल तन हारे ।

मात जसोदा फे निहात निरक्त शक्ति संवारे ।

जो कीउ कान्ह कान्ह कहि बोलत बैलियत बल्ल फारे । ।

वह मसुरा काजर की रेखा जो निरुधे सौ फारे ।

‘ परमानन्द स्वामी ’ विनु ऐसे कैसे नंदा विनु तारे ।।

### भाव- विश्लेषण

प्रस्तुत पद में संयोग पदा के उदाहरण की भाँति ही कवि की भाव- संस्थापन पद्धति में अत्यन्त उच्च कौटि की भाव- व्यञ्जना दृष्टिगत होती है। पद की प्रथम पंक्ति ही सम्पूर्ण पद का रहस्योद्घाटन करती है। श्रीकृष्ण के वियोग में मथुरा के सभी लोग व्यथित हैं, उनके चले जाने से ब्रज वासी अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं और वह अब ऐसी दशा में लड़े के लड़े रह गये हैं जैसे कि कोई उनका सर्वस्व ही झीन ले गया हो। उनका शरीर खराब हो गया है कि उनके कृष्णों का धन्य नहीं होता। पद की उपरोक्त दो पंक्तियों में ही कवि ने पाठकों के समक्ष ब्रजवासियों की मनो- दशा और शारीरिक दशा का एक सजीव चित्र सा लट्ठा कर दिया है उनके इस चित्र में भाव- चित्रण की स्वाभाविकता दर्शनीय है। पद की तृतीय और चतुर्थ पंक्ति में कवि ने विशेष तौर से विरह व्यथित माता यशोदा की मनो- दशा का चित्र खींचा है। माता यशोदा श्रीकृष्ण के वातागमन के सुबह और शाम दोनों समय उनके पैरों की ही निरस्ती रहती है। मानो कि उसका लाइला पुन ( कृष्ण ) वा ही रहा है, खना ही नहीं जब वह किसी के मुख से निःसृत कृष्ण शब्द सुनती है तभी उसकी बाँसों से कण्ठधारा प्रवाहित होने लगती है। कवि ने इन दोनों पंक्तियों में यशोदा के हृदय की भावना की पाठकों के समक्ष ऐसा प्रस्तुत किया है कि भावुक पाठकों के हृदय में भी वही भाव संचरित होने लगते हैं उनके हृदय में यशोदा के भावों का सजीव चित्रण करने में कवि की अतृप्त सफलता मिली है। कवि ने जिस भावों का चित्रण करना चाहा है उन भावों की एक वाग्धारा सी बहने लगती है। पद की अंतिम पंक्तियों में कवि ने मथुरा प्रवासित नर नारियों की दशा का चित्रण बिना चन्द्रमा के तारों की दशा के समान किया है।

उपर्युक्त पद में मातृक कवि की संयोग के पद की भांति ही वियोग पद की भाव-संस्थापन पद्धति में भी उतनी ही सफलता मिलती है। कवि की भावग्राही शक्ति इतनी सूक्ष्म एवं सुदृढ़ है कि वह अपनी इस अतीव शक्ति से अपने मनोगत भावों को कहीं माता यशोदा के माध्यम कहीं गोप गोपियों तथा कृष्ण के माध्यम से व्यक्त कर खा राज्य की दैनिक जीवन लीलाओं से सम्बन्धित पदों की संरचना की है। 'सागर' में कितने ही ऐसे पद हैं जिनमें कवि ने हृदयग्राही भावों को निरूपित किया है। जिनके पठन-पाठन से पाठक पूर्णरूपेण तन्मय हो जाता है। प्रेम के मौलिक तत्त्व एवं उनका शक्ति विकास जिस स्वाभाविक परिवेश में हुआ है। उससे कवि की भाव संस्थापन पद्धति में उसकी सूक्ष्म दृष्टि कौशल के दर्शन होते हैं।

### निष्कर्ष

कवि की उन्मत्तगामिनी मातृकता की भाव-जगत् के प्राणिज में जो सफलता प्राप्त हुई है उससे भी कहीं अधिक सफलता कवि की स्वरचित पदों में निहित है- परिपक्व में हुई है। कवि की यह रस व्यंजना उसके पदों में इतनी स्वाभाविक रूप में हो सकी है कि कहीं भी उसमें कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते। रस-व्यंजना के लिए कवि को कौई प्रयत्न नहीं करना पड़ा। और न कवि का रसाभिप्रेक्षित करने का कौई उद्देश्य ही था। कवि अपने पद रचना एवं गायन में इतना प्रवीण है कि उसके पदों को रसानुभूति से पाठक स्वयं उस तन्मयता की अवस्था तक पहुँच जाते हैं। कवि के काव्य की वात्सा का वास्तविक स्वयं जितना रस की परम सात्विक आनन्दमयी भाव-भूमि में देखने को मिलता है उतना वर्तकार, रीति, कथोक्ति आदि के समकार पूर्ण प्राणिज में नहीं मिलता है।

### भारतीय वाचार्यो द्वारा गृहीत रस- सिद्धान्त तथा रस- निष्पत्ति

रस सिद्धान्त एवं रस निष्पत्ति के विवेचन से पूर्व रस के प्रसुत वर्गों का संक्षिप्त विवेचन आवश्यक है।

#### रस के वर्ग

रस-निष्पत्ति के सम्बन्ध में भारत मुनि का सुप्रख्यात सिद्धान्त-कथन ही अधिक प्रचलित रहा है :

“ विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रस निष्पत्तिः ”

इस सिद्धान्त-कथन के अनुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। परन्तु भारत मुनि के इस कथन से यह स्पष्ट सिद्ध नहीं होता है कि उक्त तीनों तत्त्वों के पारस्परिक संयोग से रस निष्पत्ति होती है। क्योंकि इन तीनों तत्त्वों का किसी अन्य तत्त्व के संयोग करने से रसाभिव्यक्ति का जन्म होता है। परन्तु भारत मुनि के इस प्रसंग की व्याख्या इस बात की सिद्ध करती है कि स्थायी भाव ही उक्त तीनों तत्त्वों के संयोग से इस रूप तक पहुँचने में समर्थ हो जाते हैं। “ नाना भावोपहिताः स्थापिताः ” इस प्रकार भारत मुनि इस कथन से तथ्य पर पहुँचते हैं कि सहृदयों के स्थायीभावों की जब विभाव, अनुभाव और संघारी भाव का संयोग प्राप्त हो जाता है तो रसाभिव्यक्ति हो जाती है। काव्यशास्त्र के वन्तर्गत इन चारों की ही रस के वर्ग रूप में स्वीकार किया गया है जो निम्न प्रकार से व्यवस्थित हैं।

### स्थायीभाव

वन्तःकरण के वन्दर जो मनोविकार वासना रूप में रहते हैं तथा जिनका वन्तः कीर्ति भी अविरुद्ध एवं विरुद्ध भाव दम्पन नहीं कर सकते स्थायी भाव कहे जाते हैं। यह स्थायीभाव ही इस के लिए मूल आधार प्रस्तुत करने में सहायक होते हैं। यही इस रूप का ऋणन्द होते हैं।

अविरुद्धा विरुद्धा वा ये तिरौधातुपक्षमाः ।

वात्सादाहृण्णन्दौ सौ भावः स्थायीति संस्तः ॥ १

वाचार्यों ने स्थायी भावों की संख्या नौ निश्चित की है- रति, हास, शोक, उत्साह, क्रोध, मय, जुगुप्सा, विरमय और निर्वेद । कतिपय वाचार्य निर्वेद को स्थायी भाव नहीं मानते । इनके मतानुसार स्थायी भावों की कुल संख्या आठ ही है। जो कि क्रमशः निम्नलिखित रूपों में अभिव्यक्त होते हैं : शृंगार, हास्य, करुण, वीर, रौद्र, मयानक, बीभत्स, वदभुत और शान्त । इनके अतिरिक्त वाचार्यों ने वात्सल्य स्थायी भाव के निष्पन्न वत्सल इस का अस्तित्व भी स्वीकार किया है।

इसों का स्थायी भावों के साथ अभिन्न साहचर्य कथवा सह-सम्बन्ध होता है। अभिनवगुप्त और उनके मतानुसरियों के अनुसार यह स्थायी भाव सृष्टियों के अस्तित्व में सदैव ही फिट्टी में निश्चित गंध के समूह विद्यमान रहते हैं।

### विभाव

भारतीय काव्यशास्त्र में विभाव का शाब्दिक अर्थ कारण है। इस के प्रधान निष्पादक तो स्थायी भाव ही होते हैं, परन्तु

उनको उस अवस्था तक पहुँचाने का कार्य विभावों द्वारा ही पूर्ण होता है। भारतीय वाचार्यों के अनुसार- 'रत्यासुद्बोधकालीके विभावाः काव्यनाट्ययोः' विभाव हृदयस्थित रति, उत्साह, शोक आदि भावों का उद्बोधन करते हैं। विभाव ही स्थायी भावों का विभावन करके उन्हें आस्वाद योग्य बनाने का कार्य करते हैं। विभाव ही भावों को उद्दीप्त कर उस अवस्था तक पहुँचाते हैं। अतः यह सांख्यिक के मूल कारण होते हैं। विभाव दो प्रकार के होते हैं :

१- आलम्बन विभाव

२- उद्दीप्त विभाव

(१) आलम्बन विभाव

काव्य अथवा नाट्य रीति में कवि या नाटककार जिस पात्रों के आलम्बन ( माध्यम ) से सामाजिक के हृदय स्थित स्थायी भावों को जाग्रत कर उस रूप में परिणित ( अभिव्यक्त ) करते हैं, उन्हें आलम्बन विभाव कहते हैं। संस्कृत के वाचार्यों के मतानुसार 'वाल्गम्यनायिकादिस्तमात्मन्य रसोद्गमात्'। अर्थात् रूंगार रस में नायक- नायिका आदि आलम्बन विभाव होते हैं। आलम्बन विभाव के दो भेद होते हैं :

(१) विषय (२) वासय। विषय को 'आलम्बन' भी कहा जाता है। वह पात्र जिसके प्रति किसी के भाव जाग्रत होते हैं उसे आलम्बन कहते हैं। और जिस पात्र में किसी अन्य के प्रति भावों का जाग्रत होना वासय कहलाता है।

१- साहित्यदर्पण ३२

२- .. ३. २६



## (२) उद्दीप्त विभाव

वाचार्थे विश्वनाथ के अनुसार उद्दीप्त विभावार्थे स्ममुद्दीपयन्ति ये<sup>१</sup>। अर्थात् वे विभाव जो स्म का उद्दीप्त करते हैं, उन्हें उद्दीप्त विभाव कहते हैं। तात्पर्य यह है कि रत्यादि स्थायिभावों को उद्दीप्त करके उनका आस्वादन करते और उन्हें स्म अवस्था तक पहुँचाने में सहयोगी होते हैं। काव्यशास्त्रियों ने उद्दीप्त विभाव को भी दो श्रेणियों में विभक्त किया है :

### (१) बालम्बनगत बाह्य चैष्टारं

#### (२) बाह्यकातावरण

बालम्बन की वह बाह्य चैष्टारं जिनसे बाह्य के रति आदि स्थायी भावों को जगाकर उद्दीप्त करती है, उन्हें 'उद्दीप्त विभाव' कहते हैं।

बाह्य कातावरण के अन्तर्गत प्राकृतिक दृश्य आदि का विवरण होता है, स्वर्ण प्राकृतिक दृश्य बाह्य के स्थायी भावों के उद्दीप्त के कारण होते हैं। अतः उन्हें उद्दीप्त विभाव कहते हैं।

## (३) अनुभाव

वाचार्थे द्वारा अनुभाव का शाब्दिक अर्थ स्म प्रकार है :

‘अनुभावयन्ति इति अनुभावः’

अर्थात् वह उत्पन्न भाव जिनसे रत्यादि स्थायी भावों का अनुभव होता है।

क्तः यह स्पष्ट है कि वाक्य की बाह्य चेष्टाएँ जो रत्यादि भावों की प्रकाशित करती हैं, अनुभाव कहलाती हैं। वान्तरि भावों का बाह्य आकृति पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार भावों में बाह्य लक्षण दृष्टिगत होते हैं। इन लक्षणों को अनुभाव कहते हैं। संक्षिप्त में हम कह सकते हैं कि भाव कारण और अनुभाव कार्य है। लोक में जो कार्य हैं, काव्य में वही अनुभाव हैं।

वाचार्थों ने अनुभाव के चार रूप निश्चित किये हैं :

१- वागिक

२- वाक्कि

३- वाहार्य और

४- सात्त्विक

जब वान्तरि अनुभूतियों के मुख्य वागिक लक्षणों की जन्म देते हैं उन्हें वागिक ( वाक्कि ) अनुभाव कहते हैं।

वाचार्थों ने वाग्ध्यापार की ही वाक्कि अनुभाव की संज्ञा दी है। वाहार्य का अर्थ है वेष बदलकर भाव प्रदर्शन करना। पात्र राज सज्जा से अलंकृत होकर वेष बदलकर अभिनय वादि करते हैं। इसका सम्बन्ध अभिनय से है। क्तः इसकी अभिनय का ही एक ही स्वीकार करना चाहिए, अनुभावों में नहीं। कतिपय विद्वान् वाहार्य को ही अनुभाव का रूप देते हैं। समग्र रूप से यह बात मान्य नहीं है।

सत्त्व शब्द से सात्त्विक शब्द का निर्माण हुआ है। तथा सत्त्व के योग से जिन वाक्कि चेष्टाओं का जन्म होता है वे सात्त्विक अनुभाव कहलाती हैं। सात्त्विक अनुभावों की संख्या बाठ निश्चित की गयी

है - स्तम्भ , स्वेद , रौमांच, स्वरुंग, वैपुय, वैवर्ण्य, क्लृ वीर प्रत्ये ।

उक्त कुभावों के लक्षण इस प्रकार हैं :

#### १- स्तम्भ-

जीवन प्रक्रिया के अस्तित्व में ही जब कर्मन्द्रियों की समस्त गतिविधियाँ स्थिर हो जाती हैं उसे स्तम्भ कहते हैं।

#### २- स्वेद

बिना श्रम किये हुए पसीना निकलना स्वेद कहलाता है।

#### ३- रौमांच

हर्ष, मय, क्रोध आदि के कारण शारीरिक रोम खड़े होने को रौमांच कहते हैं।

#### ४- स्वरुंग

शारीरिक रोग के अभाव में ध्वनि परिवर्तन को स्वरुंग कहते हैं।

#### ५- वैपुय

हर्ष, क्रोध तथा मय की अक्रियता के कारण अंग प्रत्येग का सहजा कंपन वैपुय कहलाता है।

#### ६- वैवर्ण्य

हर्ष, क्रोध, मय के कारण शारीरिक वेशा का वास्तविक रूप ( रंग ) नहीं रहता, उसे वैवर्ण्य कहते हैं।

७- क्तु

हर्षातिरेक , भय वषटा क्रोध , लौक की स्थिति में वहाँ से कतधारा प्रवाहित होना क्तु कहलाता है।

८- प्रत्यय

स्वयं को भूल जाने को क्यात् चेष्टा शून्य हो जाने को प्रत्यय कहते हैं।

स्तम्भ और प्रत्यय दोनों की स्थिति में अन्तर यह है कि स्तम्भ की स्थिति में आप्रय को चेष्टा न कर उठने का ज्ञान बना रहता है वीर प्रत्यय की स्थिति में उसे इस प्रकार का ज्ञान नहीं रहता है। परन्तु दोनों की स्थितियों में आप्रय चेष्टाशून्य ही रहता है।

(४) संचारी भाव

संचारी शब्द का शाब्दिक अर्थ साथ- साथ चलने तथा संवरणशीलता से है। संचारी भाव स्यायी भावों को पुष्ट करके उस व्यवस्था से चलते हैं वीर यदि ही समय संवरण करके जलतरंगवत् आविर्भूत एवं तिरोभूत होते रहते हैं। इस प्रकार आप्रय और आत्मन्त्र के मन के अस्थिर मनोविकार जो उन्मग्न और निर्मग्न होते रहते हैं, संचारी भाव कहलाते हैं।

मानव मन विकारों का अक्षय मण्डार है, अतः संचारी भावों की संख्या अन्त ही सकती है, परन्तु काव्यशास्त्रियों ने सुविधानुसार उनकी संख्या ३३ निश्चित की है- निर्वेद, ग्लानि, लंका, क्लृप्ता, मद, श्रम, बालस्य, दीनता, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीडा

वापत्य, धर्म, आवेग, क्लृप्ता, गर्व, विषाद, वीर्यबुध, निद्रा, वपस्मार, स्वप्न, विबोध, क्षमण, क्लृप्ति, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, चास और वितर्क ।

संचारी भाव प्रत्येक स्थायी भावों के साथ विशेष रूप से उनके क्लृप्ति सहयोगी के रूप में संचरण करते हैं। अतः उन्हें व्यभिचारी भाव भी कहते हैं। स्थायी भावों के इस निश्चित होते हैं, परन्तु संचारी भावों के विषय में यह आवश्यक नहीं है कि इनके भी स्थायी भाव निश्चित हों। यहाँ यह भी उल्लेख करना आवश्यक है कि एक ही संचारी भाव कई स्थायीभावों का सहयोगी बन जाता है।

### रस- निष्पत्ति

रस-निष्पत्ति के संदर्भ में आचार्यों के भिन्न भिन्न मतों से परिचित होना भी आवश्यक है। यह तो सर्वमान्य सिद्ध है कि विभाव, अनुभाव, संचारी भाव तथा स्थायीभाव वह सामग्री है जिसके द्वारा रस का ज्ञान होता है। रस के मूल आधार तो स्थायीभाव होते हैं और विभाव, अनुभाव तथा संचारीभाव स्थायी भावों को इस अवस्था तक पहुँचाने में सहायक होते हैं। परन्तु यहाँ यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि रस परिपाक की प्रक्रिया क्या है और इस सामग्री से उसका क्या सम्बन्ध है ? परम मुनि के अनुसार -

\* विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसः निष्पत्तिः । \*

परममुनि के इस सूत्र की व्याख्या जेक जानार्थ ने प्रस्तुत की है जिसमें वे भट्ट लोत्तट, श्री लंक, भट्ट नायक और अभिनव

गुप्त ही विशेष प्रशंसनीय रहे हैं। इन वाचार्यों ने इस मूल की व्याख्या के साथ ही साथ उस के मूल भीयता और उस वास्वाद प्राप्ति की विधि व क्रम की समस्या को हल करने का भी प्रयास किया है। यहाँ यह कहना भी आवश्यक है कि इस कथन में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव का जो स्वल्प भारत को मान्य रहा है, उसी के अनुसरण करने की प्रवृत्ति वागामी वाचार्यों की रही है, परन्तु संयोग और निष्पत्ति दो ही शब्द ऐसे हैं जिन पर विवादास्पद व्याख्याएँ निम्न प्रकार से वर्णित हैं।

#### १- भट्ट लोल्लट : उत्पत्तिवाद

भट्ट लोल्लट भारत मूल के प्रथम व्याख्याता हैं। इस अभिनवगुप्त की टीका ( अभिनवभारती ) में भट्ट लोल्लट की धारणाएँ निम्न प्रकार से उद्धृत की गयी हैं।

स्थायी भावों की प्राप्त उपचितावस्था या परिपक्वावस्था की 'रस' नाम से अभिहित होती है। स्थायीभाव सदैव ही अपरिपक्वावस्था में विद्यमान रहते हैं, परन्तु इनकी विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव का संयोग प्राप्त ही जाने पर इनकी रस रूप में परिणति हो जाती है।

भट्ट लोल्लट ने अपना उत्पत्तिवाद बताया । उन्होंने निष्पत्ति से भारत का अभिप्राय उत्पत्ति और संयोग से सम्बन्ध होना निश्चित किया है और विभाव कारण तथा रस उनका कार्य है। रस की उत्पत्ति नाक नायिका वादि पार्श्व में होती है जिसका अनुकरण नट उनकी वैशुष्ण्या, वाणी की क्रिया कलाप वादि से अनुकरण करता है जिसके

फलस्वरूप उनमें भी इस की प्रतीति होने लगती है। प्रेक्षक या पाठकगण उसके चमत्कार से आनन्दित होते हैं। वास्तविकता यह है कि उनके हृदय में इस का अस्तित्व नहीं होता ।

इस प्रकार काव्यप्रकाशकार मम्मट ने मूल पात्र राम वादि नायकों में प्रयुक्त रूप से इस की स्थिति स्वीकार की है और नट में गौण स्थान रूप से इस प्रतीति स्वीकार की है। मम्मट ने नरत भुज में प्रयुक्त 'संयोग' और सोल्टट के 'उपचित' ( परिपक्व ) शब्दों के आधार पर सोल्टट के सिद्धान्त के प्रथम कक्ष की व्याख्या की है। उन्होंने विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों का स्थायी भावों के साथ संयोग सम्बन्ध निम्न प्रकार से किया है।

मम्मट ने आतम्भन, उद्दीप्त विभावों का स्थायी-भावों के साथ जनक-जन्य सम्बन्ध माना है और जहाँ तक अनुभाव और स्थायीभावों का सम्बन्ध है वह गम्य-गमक सम्बन्ध है । इसी प्रकार व्यभिचारी भाव और स्थायी भावों के सम्बन्ध का प्रश्न है। वह पौञ्जक-पौष्य-सम्बन्ध निश्चित है। कतः मम्मट की व्याख्या इस बात की पीछे है कि 'स्थायीभाव' विभावादि के द्वारा जन्य, गम्यादि के सम्बन्धों से पुष्ट होकर 'इस' रूप में दृष्टिगत होते हैं।

मम्मट सोल्टट के सिद्धान्त में सङ्मुख्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु उनके सिद्धान्त से इस निश्चय पर अवश्य पहुँच सकते हैं कि इस का मूल मौखता ही सङ्मुख्य है और सङ्मुख्य, नट के क्रिया कलापों के माध्यम से उसी इस की प्राप्ति कर पाता है जो कि वास्तव में नायक नायिका की प्राप्ति था ।

भट्ट लोल्लट के इस सिद्धान्त पर आगामी आचार्यों ने जोर आदीप किये हैं, परन्तु वह सभी आदीप सर्वमान्य नहीं है। हमारे विचार से भी लोल्लट का सिद्धान्त इतना कठिण नहीं है, किन्तु कि आचार्य शंकर ने सिद्ध किया है कि वही बावरी आचार्यों को लोल्लट का सिद्धान्त प्रत्यक्ष के रूप में पथ प्रदर्शन कराय करता है।

### आचार्य शंकर : अनुमितिवाद

श्री शंकर भारत भूष के द्वितीय व्याख्याता हैं, जिन्होंने भट्ट लोल्लट के उत्पत्तिवाद से अस्तुष्ट होकर न्याय के आधार पर अपने अनुमितिवाद का प्रादुर्भाव किया। उन्होंने भारत भूष के निष्पत्ति का अर्थ 'अनुमिति' निश्चित किया और विवाद को अनुमापक तथा रस को अनुमाप्य के रूप में स्वीकार किया है। शंकर ने अनुमापक और अनुमाप्य को गमक और गम्य भी कहा है। वस्तुतः शंकर ने अपने सिद्धान्त में किसी विशेष नवीन तथ्य का निरूपण नहीं किया है अपितु उनके सिद्धान्त को आधार शिष्टा लोल्लट के ही सिद्धान्त भूष नट की मान्यता रूप से स्वीकृति पर ही अवलम्बित है। दोनों के सिद्धान्तों में बहुत ही सूक्ष्म भेद इस प्रकार दृष्टिगोचर होता है, लोल्लट के मतानुसार सामाजिक नट पर मूल नायकादि का 'आदीप' कर लेता है, जबकि शंकरके मतानुसार वह (सामाजिक) केवल 'अनुमान' ही कर लेता है। शंकर के इस 'अनुमान' शब्द का अर्थ इस प्रकार है- नायक में स्थायी भाव का अस्तित्व तो सर्वत्र ही विद्यमान रहता है। विभाव, अनुभाव को सहायता से वह अभिनय कौशल का प्रदर्शन करता है। इस प्रकार सामाजिक नट के अभिनय प्रदर्शन से उसमें नायक (राजादि) के स्थायी भावों की विद्यमानता का अनुमान (अनुमिति) कर लेता है,



तथा नट के सम्बन्धित सभी विभाव, अनुभाव व्यभिचारी आदि में स्वाभाविकता की प्रतीति होने लगती है। यद्यपि उसमें इस का वास्तविक नहीं रहता, वास्तविकता यह है कि प्रेक्षक उस कृत्रिम अभिनेता नट को ही नायक समझ लेता है और इस सुखद प्रमात्मक अनुभूति में नायक के भावों का अनुमान हो जाता है। इस अनुमान से प्रेक्षक जब इस भाव को समझने में अपने को सक्षम समझने लगता है तब वह उस भाव के प्रभाव की अनुभूति से नमस्कृत हो जाता है। उस स्थिति में पहुँचकर उसे एक प्रकार के कलात्मिक आनन्द की प्राप्ति होती है। यही आनन्द स्वाद इस है। इस तथ्य को चित्र-तुरंग के उदाहरण से और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। जैसे चित्र के घोंदों को देखकर लोग घोंदा ही कहते हैं उसी प्रकार प्रेक्षक अभिनेता को ही नायक के रूप में समझने लगता है, और नायक ही मनोवृत्तियों का उसमें आरोप स्वीकार कर स्वयं को स्वाभाविक की स्थिति में ले जाता है।

शैलु के इस अनुमिति के विरुद्ध भी जानार्थी ने बहुत से आक्षेप किये हैं। इनमें प्रमुख कुछ आक्षेप निम्नलिखित हैं :

(१) प्रत्यक्ष ज्ञान से जो समस्कारपूर्ण आनन्द की प्राप्ति होना जितना संभव है, उतना अनुमान से नहीं हो सकता ।

(२) उत्पत्तिवाद के विषय में जो समस्याएँ बायीं थी उनका लक्ष्य कोई निराकरण नहीं हो सका । दोनों ही के अन्तर्गत इस का वास्तविक प्रेक्षक में नहीं माना जाता । शैलु के विरोधियों को सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि दुष्यन्त और शकुन्तला आदि ने रत्यादि सम्बन्धों का प्रदर्शन जब नट-नटी प्रदर्शित करते हैं तो सामाजिक यह अनुमान लगाता है कि नट-नटी के समान ही उनके भी सम्बन्ध हो सकते हैं। सामाजिक के स्वाभाविक पर

शैक्षक सिद्धान्त सही नहीं सिद्ध होता ।

परन्तु शैक्षक का सिद्धान्त भाषी वाचार्य के लिए मार्ग प्रशस्त करने में सहयोगी अवश्य है।

भट्ट नायक : भुक्तिवाद

भट्ट नायक इस की अवस्थिति की प्रेक्षा के मृदय में मानने के पक्ष में हैं, उनका मत है कि स्थायी भाव से इस स्थिति तक पहुँचने की प्रक्रिया में तीन शक्तियों का सहयोग रहता है। अभिधा, भावकत्व और भीक्षकत्व । काव्य के सामान्य और वार्त्तिकार्थिक अर्थों का ज्ञान अभिधा के अन्तर्गत होता है। भावकत्व के द्वारा विभाव- अनुभाव आदि व्यक्तित्व सम्बन्ध से युक्त हो जाते हैं और वह विशिष्टता से दूर सामान्यता : जन-साधारण के अनुभव के योग्य बनकर उनका साधारणीकरण हो जाता है। इस प्रकार प्रेक्षा दुष्यन्त की स्त्री शकुन्तला की केवल स्त्री मात्र ही सम्मत्ता है और दुष्यन्त के प्रति भी एक राजा का ज्ञान न होकर एक पुरुषमात्र का ही अनुभव करने लगता है, उसे साधारण पुरुष सम्मत्ता की अनुभूति की स्थिति में पहुँच जाता है। उससे सम्बन्धित उसके व्यक्तित्व आदि की सभी विशेषताएँ उससे दूर हो जाती हैं और स्थायी भाव ही साधारणीकृत रूप में उपयोग करने योग्य हो जाते हैं। संयोग का अर्थ सम्यक् से लिया है जिसे साधारण रूप से योग्य अर्थात् भावित होना भी कहते हैं। इसी प्रकार जो क्रिया साधारणीकृत स्थायीभाव का इस रूप में उपयोग कराती है उसी को वाचार्य ने भीक्षकत्व को संज्ञा दी है। यही भोग निष्पत्ति के नाम से जाना जाता है। यह भोग शैक्षिक अथवा भौतिक जगत् से परे की वस्तु है। जिसके द्वारा रजस् और तमस् गुणों से निवृत्ति पाकर सत्य गुण की अभिवृद्धि होती

है जो कि ज्ञानन्द को प्रतीयमान करता है। यही ज्ञानन्द उस रूप है। इसी रूप का भोग करने के प्राणी कुछ दण्डों के लिए इस लीकिकता से निर्मुक्त होकर सार्वभौमिकता के सैतन्य जगत् के परिवेश में पहुँच जाता है और वह ज्ञानन्द ब्रह्मानन्द सहीदर की स्थिति में आ जाता है। ब्रह्मानन्द साक्षात्क विषयों से विरक्त होने की स्थिति में होता है जो कि नित्य है और काव्या-नन्द विषयों से उद्भूत होकर ब्रह्म काल तक ही अपना अस्तित्व रखता है।

अभिनवगुप्त : अभिव्यक्तिवाद

भट्ट नायक के सिद्धान्त पर आचार्योंने ने यह आलोच किया कि काव्य की तीन शक्तियों को स्वीकार करने हेतु उनके सिद्धान्त की प्रामाणिकता किसी तथ्य पर आधारित नहीं है। उन्होंने भावकत्व और भाजकत्व यह दो नयी क्रियाएँ निश्चित की हैं, परन्तु अभिनवगुप्ताचार्य ने इन दोनों क्रियाओं के स्थान पर व्यञ्जना और ध्वनि को निश्चित किया है। भावकत्व तो भावों का व्यपन विशिष्ट गुण है, इसी-लिए भरत मुनि ने इस संदर्भ में इस प्रकार लिखा है :

‘काव्याद्यर्थान् भावयतीति भावाः’

अर्थात् जो काव्यार्थों को भावना का विषय बनावे वही भाव कहलाते हैं। अभिनवगुप्त ने यहाँ काव्यार्थ का अर्थ उस काव्य में निहित ज्ञानन्द से माना है। स्थायी भाव संचारियों से पुष्ट होकर ही वात्सायनयुक्त काव्यार्थ के अस्तित्व के कारण होता है। अतः वही (काव्यार्थ) इस का भावक होता है, क्योंकि इस व्यञ्जना उसी के कारण होती है। वात्सायन ही इस भोग की वस्तु है और इस में भोग का भाव पूर्वतः विद्यमान होता है।

### वात्स्वापत्वादस :

वर्थात् जो वात्स्वाद सर्व भोग के योग्य है, वही स है। इस प्रकार भोजकत्व की कोई पुष्प शक्ति स्वीकार करना आवश्यक नहीं है क्योंकि वह तो ज्वनि सम्पन्न है। इस प्रकार संयोग से वभिप्राय ज्वनित अथवा व्यक्तित तथा निष्पत्ति का त्वं आनन्द रूप में प्रकाशित होता है।

परन्तु प्रश्न यह उत्पन्न है कि साभिष्यक्ति की प्रक्रिया क्या है, यह किस प्रकार होती है। मनुष्य परिस्थिति से प्रभावित होकर कुछ अनुभव करता है। यह अनुभव उसके हृदय-स्थित वासना रूप भावों का अनुभव नहीं होने पाता क्योंकि वात्मा पर ज्ञात का आवरण वाच्छादित रहने के कारण प्राप्त नहीं होते पाते। परन्तु यह ज्ञान का आवरण अभिनय के माध्यम से विभावानुभाव के प्रदर्शन द्वारा दूर हो जाने पर अभि-व्यक्त हो जाते हैं। इस प्रकार वात्मानन्द के प्रकाश के परिवेश में जब उनका अनुभव होने लगता है तभी वह स की संज्ञा में आजाते हैं। इसको इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि प्रेक्षक के विभावानुभाव के प्रदर्शन पूर्व संस्कारों को उन्मूलित करे हुए उसकी चितवृत्ति को आनन्दमय कर देते हैं। इसी को वात्स्वाद कहते हैं। स की प्रतीति स्थायीभाव और चैतन्य के संयोग से ही होती है, परन्तु सानुभूति, वासना रूप हृदय में संस्कारों के फलित विष-मान रहने की स्थिति में ही होती है। इस प्रकार के हृदय वाले व्यक्ति को ही सद्बुद्ध व्यक्ति कहते हैं। मनुष्य की सद्बुद्धता तीन बातों पर निर्भर करती है - सांसारिक अनुभव, पूर्वजन्म के संस्कार और अभ्यास। स्थायीभाव की जो जो स के रूप में आनन्दानुभूति होती है वह वात्मानन्द के प्रकाश में ही संभव होती है, जो कि कर्तविक होती है। प्रेक्षक के व्यक्तिगत सम्बन्धों से भी उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। इसीलिए उसे आनन्दसहोदर कहा

जाता है।

अभिनवगुप्त ने 'स्थायीभाव' शब्द का अर्थ स्पष्ट किया है। उनका मत है कि शृंगारादि रसों का कोई निजी स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है बल्कि हृदय के अन्तर्गत वासनारूप से स्थायीभाव ही 'साधारणीकृत' विभाव अनुभावों के माध्यम से उद्बुद्ध अथवा व्यक्त होकर उस अवस्था में अभिभूत अथवा अभिव्यक्त होते हैं। भारत भूष के पुष्प प्रथम व्याख्याता भट्ट लीलट ने भी इसी तथ्य को निम्न शब्दों में व्यक्त किया है :

स्थायिविभावानुभावादिभिस्त्वपि रसः ।

स्थायी(भावः) त्वनुपपत्तिः । १

अभिनवगुप्त रस के आनन्द की विषयजन्य मानते हैं, परन्तु विषय के आनन्द से उसका कोई सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते, इसीलिए उनका मत है कि रस प्रणामन्द सहीदर है। रसास्वादन की प्रक्रिया में मनुष्य अपने को मूल जाता है। इस स्थिति में वह स्वयं को व्यक्ति विशेष न समझकर मनुष्य मात्र के रूप में उसका अनुभव करने लगता है।

अभिनवगुप्त ने रस को क्लौकिक माना है, परन्तु प्रश्न यह उठता है कि विभावानुभाव क्लौकिक वस्तुओं से क्लौकिक रस का

उद्बोधन (उदय) कैसे होता है ? इस सन्दर्भ में आचार्यों का कथन है कि जैसे किसी मिश्रित कर्पूरादि के संयोग से बने वाले पान शर्बत के रस का स्वाद उक्त सभी वस्तुओं के पूष् - पूष् स्वाद से भिन्न अथवा विलक्षण होता है, उसी प्रकार इन क्लौकिक पदार्थों से क्लौकिक रस का प्रादु-

भाव होता है।

अभिनवगुप्ताचार्य के इस उपर्युक्त सिद्धान्त की उसकी परवर्ती नाट्यशास्त्रकारों धर्मजय आदि ने स्वीकार किया है, धर्मजय का मत केवल इस बात में भिन्नता अवश्य रहता है कि धर्मजय नट में भी आनन्द की अवस्थिति स्वीकार करते हैं जो कि अभिनवगुप्त की स्वीकार नहीं है।

इस प्रकार के शास्त्रकार इस की व्याख्या निम्न प्रकार से करते हैं :

“ स्थायी भाव, जब विभाव क्लृप्ताव और संचारी भावों के योग से आस्वादन योग्य हो जाता है तब सहृदय प्रेक्षक के हृदय में इस के रूप में उसका आस्वादन होने लगता है।

उपर्युक्त इस निष्पत्ति का जो सिद्धान्त है वह हमें भी स्वीकार्य है, क्योंकि सहृदय के अन्तर्गत रत्यादि स्थायी भाव वासना रूप में उसके पूर्वतः संस्कारों के परिणामस्वरूप जन्म जात निहित होते हैं, और वह वही क्लृप्ताव स्थिति ( विभाव, क्लृप्ताव ) के प्राप्त हो जाने पर कथवा संयोग हो जाने पर इस रूप में परिणित हो जाते हैं।

अभिनवगुप्त ने इस- निष्पत्ति से अभिप्राय इस- निष्पत्ति से लिया है जो कि हमें भी मान्य है। धर्मजय, विश्वनाथ और जगन्नाथ आदि परवर्ती शास्त्रकारों ने भी इस पर अपनी सहमति प्रकट की है।

इस- निष्पत्ति के प्रसंग में काव्यशास्त्रियों के भिन्न भिन्न मतों का संक्षिप्त विवेचन करने के उपरान्त इसी विषय से सम्बन्धित ‘ साधारणिकरण के सिद्धान्त ’ का विवेचन करना भी

अपिदिता है। वाक्य के इस तत्त्व पर भी काव्यशास्त्रियों के भिन्न भिन्न मत प्रचलित हैं जो निम्न प्रकार हैं :

### साधारणीकरण

इस- निष्पत्ति के सन्दर्भ में ही 'साधारणीकरण' शब्द का विशेष महत्त्व है। भरत सूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगादसनिष्पत्तिः' के चारों व्याख्याकारों (वाचार्य भट्ट सौत्तट, शंकर, भट्टनायक और अभिनवगुप्त) में से सर्वप्रथम वाचार्य भट्टनायक ने 'साधारणीकरण' शब्द का प्रयोग कर उसके वास्तविक स्वरूप से परिचित होने का प्रयास किया था और इसी तत्त्व के आधार पर इस- निष्पत्ति की व्याख्या की। भट्ट सौत्तट और शंकर ने भरत सूत्र की व्याख्या करने में यह आपत्ति उठाई थी कि नायक- नायिका कथा कवि द्वारा मान्य पात्रों के भावों के द्वारा हृदय पाठक या श्रोता किस प्रकार स्वास्वाद प्राप्त कर सकते हैं। भट्ट नायक ने इसी समस्या के समाधान के फलस्वरूप 'साधारणीकरण' सिद्धान्त की स्थापना की। उनके विचारानुसार दर्शक अपनी अभिधा शक्ति द्वारा नाट्य भाषा के वाच्यार्थ का बोध करते हैं और इसके पश्चात् भावकत्व शक्ति द्वारा हृदय के वास्तविक भावों की जाग्रति होती है। भावों की जाग्रति के पश्चात् दुसरी और पात्रों, घटनाओं तथा वस्तुओं का साधारणीकरण ही जाता है। इस प्रकार भावकत्व व्यापार द्वारा ही विभाव, अनुभाव और संचारी भावों का साधारणीकरण हो जाता है। इस प्रक्रिया के समय दर्शक अपने समस्त अज्ञान तथा अपने विशेष स्वरूप को भूलकर सामान्य लोक हृदय में तन्मय हो जाते हैं और मंच पर प्रदर्शित पात्र- नायक नायिका आदि भी सामान्य रूप में भासित होने लगते हैं। भट्ट नायक ने दोनों कार्य व्यापारों का एक साथ ही उल्लेख किया है।

प्रथम में दर्शकों या सामाजिकों की निज की मोह निवारणता तथा दूसरी ओर नाटक के रंग मंच पर प्रदर्शित पात्रादिकों का व्यक्तत्व की विवर्जित कर सामान्य रूप में प्रतीय होना । इस प्रकार दोनों कार्य व्यापारों का सामूहिक रूप या नाम ही साधारणीकरण है। भट्टनायक साधारणीकरण के सिद्धान्त की ही स्वास्वादन का सिद्धान्त मानते हैं। आचार्य अभिनवगुप्त ने भी इसी सिद्धान्त का व्यावत् प्रतिपादन किया है और दोनों ही आचार्य इस तथ्य से सहमत हैं कि विभाव, अनुभाव तथा संनारी भाव आदि साधारणीकरण ही जाते हैं।

भट्ट नायक के कथन की व्याख्या अभिनवगुप्त ने अपने शब्दों में व्यक्त करते हुए कहा है कि साधारणीकरण की प्रक्रिया में कवि कथवा नाट्यकार जिस पात्र कथवा नायक नायिकाओं को निश्चित करते हैं वे एक व्यक्ति विशेष के रूप में न होकर सामान्य प्राणिमान बन जाते हैं और वह सार्वदेशिक तथा सार्वकालिक बन जाते हैं। किसी देश, काल की सीमा में बाध नहीं रहते । तात्पर्य यह है कि जो भाव नायक-नायिका के हृदय में वैयक्तिक सम्बन्धों के कारण होते हैं , वे दर्शकों या सहृदय पाठकों में साधारणीकृत हो जाते हैं तथा उनमें उनमें स्वत्व, परत्व की भावना नहीं रह पाती है। इस तथ्य की ' अभिज्ञान शाकुन्तलम् ' नाटक के उदाहरण द्वारा मली भाँति समझ सकते हैं :

दुष्यन्त का शकुन्तला के प्रति जो शुद्ध सात्त्विक रति भाव है, वही सहृदय पाठक के हृदय में भी उसी रूप में स्थान कर लेता है। इसका अभिप्राय यह है कि प्रत्येक सहृदय पाठक को शकुन्तला एक साधारण स्त्री पात्र भासित होगी और दुष्यन्त भी एक साधारण पुरुष भाव प्रतीय होगा । इन दोनों आचार्यों ( भट्ट नायक , अभिनवगुप्त ) ने अपने



साधारणीकरण के विषय में सहृदय के विषय में विशेष बल दिया है।

अभिनवगुप्त के पश्चात् धर्मजय ने "साधारणीकरण" तत्त्व पर अपने विचार प्रस्तुत किये। उन्होंने रसास्वाद तक पहुँचने के लिए दो सीपानों की उद्घोषणा की। जो इस प्रकार हैं :

(ब) काव्यगत रामादि पात्र धीरोदात्त आदि नायकों की अवस्था के परिचायक होते हैं : "धीरोदात्तापवाधानां रामादिप्रतिपादकः" अभिप्राय यह है कि काव्यगत नायक (अनुकार्य) चाहे किसी प्रकार के गुण दोषों वाला हो क्यों न हो, काव्य-नाटक में उसका चित्रण कवि की परिकल्पना शक्ति के अनुसार धीरोदात्त आदि नायक के रूप में ही होगा। (घ) द्वितीय सीपान में उन्होंने काव्यगत पात्र के विशेष व्यक्तित्व के आधार पर अपना मत निश्चित किया है- काव्यगत पात्र अपने विशेष व्यक्तित्व की- रामत्व सीतात्व आदि की- शीतलर सामान्य मानव मान बन जाते हैं, इस स्थिति से ये सहृदय की रसास्वाद तक पहुँचाते हैं।

उनके उक्त कथन का सारांश यह है कि काव्य-पटल के समय पाठक अथवा नाटक दर्शन के समय प्रेक्षक का नायक के प्रति पूर्व संस्कार अन्य विशेष भाव का लोप ही जाता है। उस समय उनके समक्ष वह ऐतिहासिक व्यक्ति विशेष के स्थान पर केवल कवि द्वारा निर्मित पात्र के रूप में ही प्रतीत होता है। इस प्रकार यह निश्चय है कि धर्मजय की व्याख्या भट्टनायक और अभिनवगुप्त के सिद्धान्त-मिति पर ही आधारित है, परन्तु उनकी व्याख्या में 'कवि तत्त्व' के उत्प्रेत का विशेष महत्व है।

धर्मजय के उपरान्त आचार्य विश्वनाथ ने भी इस दिशा में अपनी व्याख्या प्रस्तुत की। उन्होंने अभिनवगुप्त के मत का प्रति-

पादन करते हुए स्थायीभाव, विभावादि सभी का साधारणीकरण स्वीकार किया है। सर्वप्रथम उन्होंने 'साधारणीकरण' की आवश्यकता के विषय में विचार प्रस्तुत किये उनका कथन है कि काव्य नाटक में वर्णित कथा प्रदर्शित राम आदि पात्रों के रति भाव सामाजिक के रति आदि भावों का उद्बोधन करते हैं, परन्तु यह प्रक्रिया किस प्रकार होती है, इस सम्बन्ध में उनका कथन इस प्रकार है :

‘ व्यापारी स्ति विभावादेः नाम्ना साधारणीकृतिः  
तत्प्रभाषिण । ’

अर्थात् विभाव, अनुभाव और संवारी भाव के व्यापार का नाम साधारणीकरण है, उसके भाव है । विभावादि का व्यापार शब्द से अभिप्राय यहाँ उस समस्त घटनाच्छ के समस्त क्रिया-कलापों के समन्वित रूप से है। उनके कथनानुसार साधारणीकरण का व्यापार में समस्त घटना छ विशिष्ट व्यक्तित्व से रहित हो जाता है, जो स्थिति में रामादि पात्र तथा सहृदय दोनों में तादात्म्य ( ओद ) स्थापित हो जाता है। दोनों के रति आदि भावों में साम्यत्व हो जाता है। उदाहरणार्थ- तब कि ज्ञ जीवन में समुद्र का उत्लंघन संभव नहीं है, परन्तु काव्य- नाट्यादि में साधारणीकरण से प्रभावित होकर हनुमान जैसे महान् व्यक्तित्व के साथ सहृदय का तादात्म्य हो जाता है और समुद्रोत्लंघन का उत्साह भी उसके लिए संभव हो जाता है, अर्थात् सहृदय भी उन्हीं भावों की प्रतीति में पहुँच जाता जिनकी कि राम, हनुमान आदि की थी । इस प्रकार विश्वनाथ के अनुसार कवि की भावना-शब्द कल्पना ही सहृदय ( सामाजिक ) की सहृदयता का उद्बोधन होता है, और सहृदय काव्य के साथ तादात्म्य की अनुभूति में समान भाव की अनुभूति के परिवेश में पहुँच जाता है। यही स्थिति रसास्वाद की भूमिका है।

विश्वनाथ के उपरान्त उस गंगाधर के रचयिता  
 वैदितराज जगन्नाथ ने भी साधारणीकरण के विषय में अपना मत उद्धृत  
 किया । उनका मत भट्टनायक के मत से केवल दो बातों में भिन्नता रखता  
 है- सर्वप्रथम पै० जगन्नाथ व्यञ्जा- व्यापार को स्वीकार करते हैं किन्तु  
 भट्टनायक उसे नहीं मानते । दूसरी भिन्नता यह है कि पै० जगन्नाथ 'दोष'  
 बर्थात् वात्मा की अज्ञानावच्छिन्नता को मानते हैं जबकि भट्टनायक उसे भी  
 स्वीकार नहीं करते । उनका मत है कि काव्य अथवा नाटक में कवि तथा नट  
 द्वारा ही हम प्रस्तुत विभावादि से परिचित होते हैं, तत्पश्चात् व्यञ्जा  
 व्यापार से इस बात की अनुभूति होती है कि दुष्यन्त शकुन्तला के प्रति  
 अनुरक्त हैं। परिणामस्वरूप हमारी सहृदयता दुष्यन्त के प्रति चित्त में बार  
 बार एक अनुसंधान की भावना उत्पन्न करती है। यह भावना एक ऐसा दोष  
 है जिससे अभिभूत होकर हमारी वात्मा उस कार्त्तविक दुष्यन्त वादि से  
 आच्छादित हो जाती है और उस स्थिति में हम अपने को दुष्यन्त ही समझने  
 लगते हैं। इसी दोष के कारण हम शकुन्तला की प्रेम्िका समझना भी स्वा-  
 भाविक हो जाता है।

इसी दोष विशेष से सामाजिक के हृदय में  
 आत्ममन ( शकुन्तला ) के प्रति उसी प्रकार का भाव जाग्रत हो जाता है,  
 जैसा कि वासय (दुष्यन्त का ) । इस प्रकार पै० जगन्नाथ ने साधारणीकरण  
 के विषय में किसी विशेष तथ्य का उद्घाटन न करते हुए केवल पुराने तर्कों  
 पर ही अपनी दार्शनिकता का आवरण चढ़ा दिया है।

उपर्युक्त वाचार्यों की व्याख्याओं से हम इस  
 निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वाचार्य भट्ट नायक से लेकर अभिनवगुप्त तथा

१० जन्माय तक 'साधारणीकरण' की व्याख्या का स्वरूप प्रायः एक समान ही रहा, उसके वास्तविक स्वरूप में किसी ने भी कोई नवीनतम मोड़ नहीं दिया। संक्षिप्त में इन सभी के विचारों का समन्वित रूप इस प्रकार रहा -

साधारणीकरण व्यापार वह स्थिति है जिसमें कि सहृदय अपने पूर्ववत् मोह जादि मीमांसा से मुक्त हो जाता है। साधारणीकरण सात्त्विक की पूर्ण स्थिति को कहते हैं और यह सात्त्विक तक पहुँचाने के लिए भावनूति तैयार करता है। इन वाचार्यों के मतानुसार साधारणीकरण विभाव, संवारी भाव जादि के सामूहिक कार्य- व्यापार पर आधारित समस्त घटना एक का ही होता है। परन्तु हिन्दी के वाधुनिक बालीवूडों का भी इस वीर ध्यान आकर्षित हुआ है। हमें डा० श्यामसुन्दर दास, वाचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डा० नगेन्द्र के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इस विषय में इन वाचार्यों ने अपनी नवीन मान्यताएँ सब मौलिक व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं।

हिन्दी के वाधुनिक विद्वानों में डा० श्यामसुन्दर दास ने साधारणीकरण की व्याख्या का स्पष्टीकरण किया है। उनका कथन है कि साधारणीकरण भावक या पाठक का होता है। उन्होंने साधारणीकरण की अवस्था को योग की 'मधुमती भूमिका' के समान निश्चित किया है, जिसमें कि पाठक तर्क-वितर्क से रहित होकर आनन्दानुभूति में लीन हो जाता है। मधुमती भूमिका के विषय में उनके शब्द इस प्रकार हैं, "मधुमती भूमिका चित्त की वह विशेष अवस्था है जिसमें वितर्क की सत्ता नहीं रह जाती----- दृशेयशब्दों में वस्तु का सम्बन्ध और वस्तु के सम्बन्धी ज्ञानों के नेदों का अनुभव करना ही वितर्क है।"

डा० श्यामसुन्दर दास जी उपर्युक्त मत में भी यह आपत्ति है कि 'योग की मधुमती भूमिका तो साधनात्मक होती है और उसका सम्बन्ध पारलौकिक होता है, जबकि काव्यानन्द ब्रह्मानन्द सहोदर होते हुए भी इसी लोक से सम्बन्धित होता है। इस प्रकार साधारणीकरण की मधुमती भूमिका के समान सिद्ध करना संभव नहीं हो सकता, अतः यह मत मान्य नहीं हो सका ।'

डा० श्यामसुन्दर दास के पश्चात् बाबाय्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने सुप्रसिद्ध लेख 'साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद' में इस विषय के अन्तर्गत अपनी नवोन मान्यताएँ प्रस्तुत करने का स्तुत्य प्रयास किया है। उन्होंने इस प्राचीनतम सिद्धान्त की व्याख्या 'लोकधर्म सिद्धान्त' के आधार पर की है।

शुक्ल जी की मान्यता है कि साधारणीकरण सम्झना न होकर केवल बालम्बन का होना ही संभव है, क्योंकि काव्य- रचना और सात्त्वावन दोनों प्रक्रियाओं में बालम्बन का ही प्रमुख स्थान होता है। वे बालम्बन के बर्ण की भाव के विषय के रूप में स्वीकार करते हैं। उसके साधारणीकरण की प्रक्रिया में सर्वप्रथम वह भाव का विषय बनता है, उसके पश्चात् समस्त सहृदय- समाज के भाव का विषय बनता है।

शुक्ल जी के साधारणीकरण का अभिप्राय मूलतः उस व्यक्तित्व के गुणों से है जिसका कि उस व्यक्तित्व में समावेश रहता है परन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि व्यक्तित्व का कोई अस्तित्व ही न रहता हो । सहृदय समाज उस व्यक्तित्व के भाव का विषय बन जाता है। उदाहरणार्थ- सीता केवल कामिनी मात्र ही न रहकर अपनी शील, सौंदर्य

आदि सामान्य गुणों के कारण जन सामान्य के प्रणय का केन्द्र बन जाती है। इस प्रकार साधारणीकरण बालम्बन-धर्म का ही होता है, दूसरे शब्दों में उसके सामान्य गुणों का होता है, जिनके परिणामस्वरूप पहले तो सीता राम की प्रिय है उसके पश्चात् उन्हीं गुणों के कारण वह सहृदय-समाज की भी प्रिय हो जाती है। इस प्रकार सहृदय सीता के प्रति अनुरक्त हो जाता है और वह इस भेद को भूल जाता है कि सीता राम के प्रेम की बालम्बन है या उसके स्वयं के प्रेम की। इस स्थिति में पहुँचकर सहृदय का चित्त व्यक्ति-केन्द्रता से मुक्त हो जाता है। यह तथ्य भट्टनाथ और अभिनवगुप्त की सिद्धान्तों में कहीं भी स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं है।

उक्त कथनों को तथ्य में रखते हुए सारांशित : कहा जा सकता है कि शुक्ल जी ने साधारणीकरण-सिद्धान्त की सततापूर्ण कृदयोग्य करने एवं प्रस्तुतीकरण करने के लिए उसे दो प्रमाणों में विभक्त किया है (अ) सहृदय का वाक्य के साथ तादात्म्य होता है। (ब) बालम्बन या बालम्बनत्व धर्म का साधारणीकरण होता है, और इन दोनों व्यापारों की शारीरिक शब्दों में "साधारणीकरण" की संज्ञा दी है।

उपर्युक्त वर्णित सभी आचार्यों के सिद्धान्तों के सूक्ष्म विश्लेषण से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि साधारणीकरण का विषय व्यापार बालम्बन से प्रारम्भ तथा प्रेरित होकर अन्तर्तीगत्वा उसी से संचालित होता है परन्तु उसकी रचना में तीनों (वाक्य, कवि तथा सामाजिक) का योगदान नितान्त आवश्यक है। यदि काव्य रचना के अन्तर्गत कलाकार का स्थान प्रमुख माना जाय तो हमें कवि की अनुभूति का साधारणीकरण स्वीकार करना होगा। यदि काव्य में विभाजन व्यापार अथवा बालम्बन को प्रमुख माना जाय तो हमें शुक्ल जी के मत से सहमत होना चाहिए। यदि काव्य में सभी तत्वों को समान रूप से महत्व प्रदान किया जाय

तो भट्ट नाथ और अविनवगुप्त के मत से सम्मत होना पड़ेगा । इस प्रकार तीनों ही मतों में एक ही वस्तु विशेष को भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से देखने की प्रवृत्ति मिलती है। इसी तथ्य पर तीनों ही मत आधारित हैं।

### परमानन्द सागर में विभिन्न रसों का परिपाक

#### शृंगार रस एक सैदान्तिक विवेचन

#### व्युत्पत्ति एवं अर्थ

शृंगार शब्द दो शब्दों के योग से बना है :

“ शृंग ” + “ वार ” = शृंगार । शृंग का अर्थ है “ कामोद्दिग्क ” । “ वार ” शब्द की सृष्टि “ क ” धातु से हुई है जिसका अर्थ गति लब्धता प्राप्ति है। इस प्रकार “ शृंगार ” का पूर्ण अर्थ “ कामोद्दिग्क की प्राप्ति ” होता है। इस प्रकार “ कामोद्दिग्क की प्राप्ति ” में सृष्टि वृत्त का भाव निहित होता है। अतः शृंगार सृष्टि वृत्त का आधारभूत कारण माना गया है।

शृंगार की व्युत्पत्ति “ रति ” स्थायी भाव के समग्र रूप से पुष्ट एवं चमत्कृत हो जाने के पश्चात् ही संभव होती है। इस प्रसंग में “ रति ” शब्द के अर्थ पर भी विचार करना समीचीन होगा । काव्य मर्मज्ञों ने “ रति ” का शाब्दिक अर्थ प्रीति, प्रेम, अनुराग से लिया है जो कि विसार के सभी मनुष्य मात्र में बीज रूप में सदैव अफा लतित्व रहता है। परिस्थिति विशेष के परिवेश में यह भाव उद्दीप्त होकर “ शृंगार रस ” में परिणित हो जाता है।

### शृंगार रस के प्रमुख भेद

काव्याचार्यों ने 'रति' स्थायी भाव पर आधारित इस रस विशेष को दो भागों में विभक्त किया है :

१- संयोग कथवा सम्भोग

२- वियोग कथवा विप्रलम्भ शृंगार

शृंगार रस के संयोग पक्ष में प्रयुक्तः प्रणय-प्रदर्शन से परिब्याप्त सौंदर्य की कटा का प्राचुर्य विषयान् रहता है, परन्तु विप्रलम्भ शृंगार के परिवेश में पूर्व राग, मान, प्रवास, करुणा आदि भेद हैं, विलासिता, चिन्ता, स्मृति, गुण, उद्वेग, प्रताप, उन्माद, क्रोध, जड़ता, पूर्ण और मरण की ग्यारह अवस्थारें तथा काम की बारह अवस्थारें, वासम्भन विभाव में नाक, नायिका, सखी, झूठी आदि का विस्तृत भेद विवेचन आदि शृंगार रस के विलास प्रणिष्ठा में आवद्ध रहते हैं।

आचार्य भरतमुनि, आचार्य रुद्रट, अभिनवगुप्त और विश्वनाथ आदि ने शृंगार रस को सर्वोत्कृष्ट रस माना है, जिसके निम्नलिखित कारण हैं :

(१) शृंगार रस का स्थायीभाव 'रति' सभी रसों के स्थायी भावों की तुलना में आसौत्पादक उठता है, क्योंकि रति जिसका अर्थ प्रेम है वह सर्वत्र काम्य है, इसमें व्यापकता, सुस्पष्टता, स्वाभाविकता, संग्राहकत्व, सुख शक्ति और आत्म त्याग आदि जैसे भाव अन्तर्निहित हैं। वेसे अन्य रसों में द्रष्टव्य नहीं होते।



(२) शृंगार रस के उद्दीप्त विभाव भी परम मेध्य, शौन्दर्य एवं नैसर्गिक सुषमा से जाम्बूझादित कल्पा सुशोभित रहते हैं।

(३) शृंगार रस ही एक मात्र रस है जिसमें सर्वाधिक बलिक सम्पूर्ण स्थायी भावों और संचारी भावों का समावेश संभव है। इसके साथ ही साथ सभी अनुभावों और सात्त्विक भावों की स्थिति की शृंगार रस के दोनों पक्षों- संयोग और वियोग के साथ सम्भव है।

### गीत का रण

(१) शृंगार रस की सर्वाधिक व्यापकता का प्रमाण इसके सम्बद्ध निम्नोक्त काव्य तत्व हैं :

वियोग शृंगार के पाँच भेद - पूर्ण राग, मान, प्रीति, कलुषा और लापसङ्ग ।

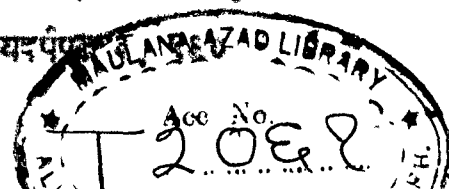
काम की 'नष्टः प्रीति' आदि बाह्य तथा 'वनिताशा' आदि दल व्यवस्थाएँ हैं ।

बालम्बन विभाव के अन्तर्गत नायक- नायिका, सखी, भूती आदि का विस्तृत भेद निरूपण तथा नायक नायिका के भाव, हाव, हेला आदि सत्त्वज अलंकार ।

(२) शृंगार ही एक मात्र रस है जिसमें बालम्बन और वाक्य की चेष्टाएँ, एक दूसरे को उद्दीप्त करती हैं, जबकि अन्य रसों के बालम्बन परस्पर घनिष्ठ स्थिति हैं।

१- प्रतापहरद्वयश्रीसूत्रण - पृ० १६४

साहित्यदर्पण



(३) यही एक ऐसा रस है जिसकी कि समय समय पर वाचार्यों द्वारा स्वीकृत , सौहार्द, भक्ति आदि तथा कविता रसों का भी एक रस की व्यापकता में अन्तर्भाव होता संभव है।

### निष्कर्ष

उपर्युक्त वाचार्यों के मन्तव्यों के आधार पर यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि शृंगार रस की सर्वजन ग्राह्यता, सर्वाधिक कम्पनोक्तता, विशिष्ट वास्तविकता, सर्वजन काम्यता आदि गुणों पर बाधा-रहित होने के कारण तथा परम्परानुसार अन्य रसों के उत्पादन का गुण निहित होने के कारण इसे सर्वोत्कृष्ट रस अथवा 'सुख' की उपाधि से विभूषित किया जा सकता है ।

शृंगार रस ही एक मात्र ऐसा रस है जिसका कि स्थायी भाव 'रति' 'सृष्टि' के प्रत्येक जीव के अन्दर सुप्त है। अन्य किसी भी रस के स्थायी भाव में यह गुण नहीं मिलता । इस कारण इसकी लोचन बिन्दु पर विराजमान कविता का गीत इसके स्थायी भाव 'रति' के कारण ही उभर ही सका है।

वादिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल तथा आधुनिक काल के सभी प्रमुख कवियों की रचनाओं में शृंगार रस की प्रमुख रूप से प्राय-स्फुटता दी है जो कि इसकी सर्वोत्कृष्टता का ही प्रमाण कहा जा सकता है।

### परमानन्द सागर में शृंगार रस वर्णन

परमानन्दसागर के कर्तवर्तक हमें शृंगार रस के दोनों ही प्रमुख पक्षों ( संयोग वीर वियोग ) की अनुपम कृता देखने को मिलती हैं। सागर के भावात्मक- निष्पट पर अवतरित होने वाले शताधिक रस सम्बन्धी प्रयोगों की उदाहरणात्मक प्रस्तुत करके महाकवि परमानन्द दास की रसात्मक प्रतिभा का परिचय देने का प्रयत्न करना हमारे लिए अशक्य सिद्ध होगा, अतः सागर के उन कतिपय विशिष्ट पक्षों के उदाहरणों की प्रतिच्छाया में ही अपने महाकवि की विशिष्ट रसात्मक प्रज्ञा के स्वप्न का परिचय देना समीचीन होगा ।

संयोग पक्ष में कवि ने भगवान् श्रीकृष्ण की राधा के साथ किशोर लीला के अनुपम चित्र संजीये हैं जो कि कवि की स्वा-नुपुति की पराकाष्ठा के चोतक हैं। प्रेम के विविध रूपों तथा अनुपुतियों की मार्मिकता के हृदयस्पर्शी पक्षों के उद्घाटन में कवि की कृति की तन्मयता जितनी दृष्टिगत होती है। उतनी अन्य किसी चीज में नहीं है। यहाँ संयोग पक्ष के सौंदर्यमय, सुस्तान्त एवं मार्मिकतम अभिव्यञ्जना की उल्लसित कृता इस प्रकार द्रष्टव्य है :

संयोग पक्ष का उदाहरण

राधा भाग सौं रस रीति कढ़ी ।  
 शायर करि मैटी नंद नंदन हुन बाज कढ़ी ॥  
 वृन्दावन में श्रीसुत दीऊ जैसे कुंजर श्रीसुत करनी ।  
 परमानन्दस्वामी मन मोहता ताहु कीं मन हरी ॥ १

### रस- विवेचन

प्रस्तुत उदाहरण में रति स्थायी भाव की पृष्ठ-भूमि में पद की द्वितीय व्यक्ति के अनुसार राधा बाधय तथा श्रीकृष्ण बालम्बन है। वृन्दावन की हरित क्षान्ति एवं प्राकृतिक सुगन्ध ही उद्दीप्त विभाव है, जो कि उन दोनों की कृञ्जर सदृश झीड़ा बढ करने में सक्षम है। उन दोनों की कृञ्जर झीड़ा में ही अनुभाव प्रदर्शित होता देख पड़ता है। श्रीकृष्ण के मन के हरण होने में ही संचारी भाव की कृटा द्रष्टव्य होती जान पड़ती है।

इस प्रकार पूर्वानुराग के परिवेश में कवि ने संयोग हृंगार की मार्फि एवं फनीहारी अभिव्यक्ति की है।

मदन गोपाल बलैया लैहीं ।

वृन्दाविपिन तरनितनया सट बलि ब्रज नाथ बालिगन देहीं ।

सधन निर्द्वज सुखद रति बालप नव कसुमिनि की सेज बिछैहीं ।

त्रिगुण समीर पथ जब बीसहुने तब गृह छाँदि कीली रहैं ।

परमानन्द प्रभु चारु बदन की उचित उगार मुदित ह्वै लैहीं ॥१॥

प्रस्तुत पद में श्रीकृष्ण बालम्बन एवं राधा बाधय हैं। पूर्वानुराग की पृष्ठभूमि में राधा वृन्दावन के प्राकृतिक प्राणिन में यमुना का हृन्दर तीर त्रिगुणात्मक समीर एवं उस सधन निर्द्वज निर्जन मध्य पुष्पी की सेज सजाने की जो कल्पना कर रही है। ये सभी काल्पनिक तत्त्व ही उद्दीप्त विभाव का कार्य व्यापार कर रहे हैं। श्रीकृष्ण के साथ बालिगन देना, सेज बिसाना आदि अनुभाव के भावोत्पादक भाव हैं। चारु बदन से मुदित होने में वीत्सुधय संचारी भाव का भाव प्रदर्शित होता दिसाई पड़ता है।

घट भरि बसी चन्द्रावली नारी ।  
 मारग में भ्रष्ट मति मनन्याप मुरारी ॥  
 नयन सौं नयन मति मन रह्यो लुभाय ।  
 मोहन मुरति मन बसी मन धर्यो न जाय ॥  
 तब की प्रीति प्रभु भई फलौ भेंट ।  
 परमानन्द ऐसी पिली ऐसी गूढ़ में भेंट ॥ १

#### १०- विवेचन

उपर्युक्त उदाहरण में चन्द्रावली नारी वाक्य के रूप में तथा श्रीकृष्ण बालम्बन के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। वाक्य एवं बालम्बन गत चैष्टारं ( परस्पर नयनों का मिलन ) ही उद्दीप्त विभाव के पीतक हैं। मन की फुलकायमान एवं वाकर्षण की स्थिति ही लुभाव का प्रमाण है। मोहन की मुक्ताकृति से मुग्ध होकर उसका ( चन्द्रावली नारी ) स्तम्भित रह जाति से स्तम्भित संनारी भाव के पोषण का प्रतीक है। इस प्रकार रति भाव अपनी विभावादिकों से परिपुष्ट होकर संयोग शृंगार रूप को स्थापना में पूर्णरूपेण समर्थ हुआ है।

परमानन्ददास जी के संयोग शृंगार के उपर्युक्त पदों के अध्ययन करने से हम इस निष्कर्ष पर अवश्य पहुँचते हैं कि महाकवि द्वारा रचित इन पदों में हमें कहीं भी इस सिद्धि के लिए प्रयास दृष्टिगत नहीं होता, वरन् उनके संयोग शृंगार के पदों में संयोग शृंगार का संनार स्वाभाविकता की पृष्ठभूमि पर हो हुआ है। इस तथ्य के निरूपण में कवि की रचना में कहीं भी कृत्रिमता एवं अस्वाभाविकता के दर्शन नहीं होते हैं।

इस प्रकार के पदों में किंचित् मात्र भी ऊहात्मकता का समावेश नहीं हो सका है। कवि की विशेषता इस सन्दर्भ में दूसरी विशेषता हमें जब दिखाई देती है कि हमें वही कवि में कहीं भी शास्त्रीय अनुधावन की प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती है। कवि की भावानुभूति नैसर्गिकता के प्राणिज में ही परिलक्षित होती है। कवि के पदों की पैरिधि के प्रत्येक शब्द में पूर्ण भाव प्रकाशन की क्षमता एवं सख्य और स्वाभाविक वातावरण की प्रामाणिकता द्रष्टव्य है-

पदन गोपाल बलैया लैहीं ।

वृन्दाविधि तरनि तनया तर बलि ब्रज नाथ बालिगन  
देहीं ॥

सधन निर्द्वय सुख रति बाल्य नव कुसुमनि की रोज बिछैहीं ।

०

०

परमानन्द प्रभु नारु बदन की उचित उगार मुदित ह्वै  
लैहीं ॥ ९

### १४ विवेचन

उपर्युक्त पद में राधा काव्य एवं श्रीकृष्ण वातम्बन के रूप में वर्णित हुए हैं। यहाँ कवि के पद में उत्सुकता, वसन्तता, घम एवं ड्रीढ़ता आदि संवारी भावों के साथ नायिका की भावानुभूति का निरूपण हुआ है, उसमें कवि पूर्णरूपेण सज्जम ही दिखाई देता है। साथ ही प्राकृतिक सौंदर्य की कृता में उद्दीप्त विभावों की कल्पनोक्तता भी दर्शनीय है। कवि ने मिलन प्रसंग को इस प्रकार नैसर्गिक वाता में ढाला है जिसे पढ़कर पाठक आनन्द विभोर होकर संयोग शृंगार की सरस धारा में राग संवरण करने लगते हैं।

परमानन्दसागर में इस प्रकार के सौन्दर्यात्मक, भावात्मक एवं स्वाभाविक  
मिलन प्रसंगों का निरूपण वनकों संयोग शृंगार के पदों में मिलता है, जो कि  
कवि को संयोग शृंगारिक उत्कृष्ट भावना के परिणामक हैं।

### वियोग पदा

यहाँ हम यह विचार करेंगे कि संयोग शृंगार  
की भाँति विप्रलम्भ शृंगार के विविधन में हमारे कवि की क्या प्रवृत्ति रही  
है। हमारे विचार से अपने मन्तव्य में कवि को कहीं तक सफलता मिली है।  
परमानन्दसागर का अध्ययन करने से उभरती दोनों ही बातों का सहज ही समा-  
धान हमारे समक्ष आ जाता है। परमानन्ददास के इस फलदायक में विप्रलम्भ  
शृंगार के चारों भेदों ( पूर्वराग, मान, करुण एवं प्रवास ) के प्रायः सभी  
उदाहरण देखने को मिल जाते हैं। कतिपय प्रमुख उदाहरण निम्न प्रकार हैं :

रात पपीहा बोलती रही माई ।

नींद नष्ट, चिंता चित्त बाढ़ी, सुरति स्याम की आई ।

०

०

गरजत गगन दामिनी दमकत तामें जोर उड़ाई ।

राग मलार कियौ जब काहु सुरसी मधुर बजाई ।

बिरहिन विकल ' दास परमानन्द ' धरनि घरी सुरभाई ॥१

### रस-विवेचन

परमानन्दसागर के प्रस्तुत पद में राधा अपने  
विरह व्यथा से सती से कह रही है। द्रष्टव्य है कि यहाँ महाकवि ने अपनी

उद्भावना के अन्तर्गत श्रीकृष्ण की कालम्बन तथा राधा की वाङ्मय के रूप में निहित किया है। श्रीकृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम की ही 'रति' की संज्ञा दी जा सकती है जो कि स्थायी भाव के रूप में भी प्रतिपादित है। श्रीकृष्ण के प्रति तथा उनको स्मृति के कारण राधा की जो प्रेमानुभूतियाँ सँ उसी प्रणय जन्य क्रिया कलाप ही अनुभाव- व्यापार के पोषक हैं। स्मृति, चिन्ता, मोह आदि संचारी भाव ही 'रति' स्थायी भाव से सम्बद्ध दिगार्ह देते हैं।

कवि ने प्राकृतिक विभिन्न सौन्दर्यमय उपादानों के साथ केवल वियोगोदीप्त के कार्य की क्षमता का ही परिचय नहीं दिया है, बल्कि पूर्णवत्त भावात्मकता- उदात्तता के छिदान्त का भी एक कृठा परिचय दिया है। पूर्णवत्त भावात्मकता के विरहिणी के हृदय में पपोहा के 'पोउ पोउ' के शब्द का प्रवण होने पर अचानक ही जाग्रत हो जाती है। फिर उसे नौद का न आना, पित्तन की चिन्ता धारा में घटना सतत चिन्तन आदि कवि ने जो भाव व्यक्त किये हैं, वह कवि की वियोग रूंगार फटता के रूपरूपतः साक्षी हैं।

हरि बिन बैरि रैन बढी ।

हम अपराधिन निहुर विधाता काहे साविरि गढी ॥

तन धन जीवन वृथा जात है विरहा जल रही ।

नंद नंदन को रूप विचारत निरु दिन होरि नदी ॥

जिहि गोपाल भेर बस होतै सो विधा न पढ़ी ।

परमानन्द स्वामी न मिले तो घर ते भली पढ़ी ॥१९



### रस विवेचन

प्रस्तुत पद का व्यंग्य कही से हमें ज्ञात होता है कि इस विरह के प्रसंग में राधा का प्रयत्न तथा श्रीकृष्ण वात्सल्य के रूप में उद्घाटित हुए हैं। कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम ही रसि के रूप में वर्णित है जो कि स्थायी भाव का प्रतीक है। राधा के प्राणाधार ( श्रीकृष्ण ) के प्रति राधा के जो प्रसीद्गार हैं वही अनुभाव के यौक्तिक सिद्ध होते हैं। हम अपराधिन में केन्य, जिहि गोपाल धरे बस होते ' में उद्देगात्मक ' घर ते भली मढ़ी में ' नैराश्य संगारी भावों की स्थापना ही लकी है। इस प्रकार कृष्णात्मक वियोग का प्रादुर्भाव मिलता है।

पद में कवि के भाव अत्यन्त स्वाभाविकता के बालावरण में पल्लवित हो रहे हैं, जैसा कि हमें प्रथम पंक्ति के भाव से विदित होता है, अपने प्रिय को स्मृति में समय की वधिकता का आभास होता है। राधा को भी रात्रि खड़ी लम्बी प्रतीत हो रही है और वह उसे शत्रु के समान दिताई देती है। कृष्ण वियोग में वह अपने तन, मन, धन एवं अपनी सुखवस्था को भी व्यर्थ ही समझती है। इस प्रकार की मनोदशा के बालावरण में पाकर वह ( राधा ) फलित तो उद्देगपूर्ण हो जाती है कि क्या करूँ अपने प्रिय ( कृष्ण ) पर मेरा वश नहीं है। तदुपरान्त वह स्वामी से साक्षात्कार न होने पर नैराश्य के परिवेश में पहुँच कर घर से बाहर जाने की परिकल्पना तक पहुँच जाती है।

ब्रज के विरहो लोग विचारे ।

बिन गोपल ठी है ठाढ़े बलि दुबल तन हारे ॥

मात अतोदा के निहात निरस्त सँभ सँवारे ।

जो कोउ कान्ह कान्ह कहि बोलत वैलियन बहुत प्तारे ॥

यह पधुरा काजर की रत्ना जो निकसे सो करे ।

परमानन्द स्वामी बिनु ऐसे कैसे सदा बिनु तारे ॥१२

१८- विवेचन

प्रस्तुत विरह के प्रसंग में कवि ने कृष्ण वियोग में ब्रज के समस्त विरह पीड़ित लोगों का चित्र पाठकों के समक्ष उपस्थित किया है। यहाँ भी कवि ने निराशा, चिन्ता, विषाद आदि की दशाओं से युक्त ब्रजवासियों के कल्याणार्थक वियोग का ही उद्घाटन किया है। अवतरण में वियोगवन्धु पीड़ा अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है। पूर्ण पद में कवि ने घोर नैराश्य का वातावरण उपस्थित कर दिया है। कृष्ण वियोग में माता यतीदा भी सुबह शाम फँस निहाली हैं। कौहें कान्ह कान्ह कहता है, तभी बाली से कुंधारा प्रवाहित होने लगती है। उसकी यह दशा पूर्ण वियोग भावना की उजागर करने में सक्षम है।

प्रस्तुत अवतरण में श्रीकृष्ण वातम्बन तथा ब्रज के लोग वाक्य के प्रतीक ही प्रतीत होते हैं। यतीदा का फँस निहाला, आदि इसी प्रकार की क्रियाएँ ही अनुभाव के रूप में दिखाई देती हैं। माता यतीदा का फँस निहाला, फिर बाली से कुंधा प्रवाहित होना, वाशा से निराशा का वातावरण उत्पन्न कर देता है जिससे नैराश्य का प्रति ग्रहण दृष्टिगत होता दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त चिन्ता, निराशा, कुंधा आदि संवारी भावों की संस्कारणा में कल्याण विप्रलम्भ की ही प्रतीति सिद्ध होती है।

१- परमानन्द सागर पद सं० ५५३ पृ० सं० १८८

बहुरि हरि बाबहुने किहि काम ।  
 रिनु कसन्त बह मर बितीति बह वादर भये स्याम ।  
 तारे गन गनत री माई बीति चारुयी याम ।  
 और काज सब विसरि गये हरि लेत तुम्हारी नाम ॥  
 किनु जागन किनु दारे ठाढ़ी हम सुस्त है धाम ।  
 परमानन्द प्रभु हम विनास्त ऐ वस्थि बह नाम ॥ १

### रस विवेचन

विप्रलम्भ शृंगार रस के शास्त्रीय रंग प्रत्येकी के आधार पर पद का अध्ययन करने से विदित होता है कि रति स्थायी भाव की उपस्थिति में " राधा " बाधय तथा श्रीकृष्ण बालम्बन के रूप में वर्णित हैं। सभी कार्यों में मन न लगाना, तारे गिनने रहना आदि ही मनो-गत भावों से अनुभावों की प्रतीति होती है। स्मृति, संजारी भाव की ही पद में प्रधानता दृष्टिगत होती है। क्योंकि अन्तिम पंक्ति में श्रीकृष्ण के रूप को विचारणा की भाव व्यंजन नायिका के अन्तर्गत प्रदर्शित की गयी है। पद को अन्तिम पंक्ति के अन्तिम शब्द पूर्ण वियोगाभिख्यक्ति का परिचय दे रहे हैं, जिसे कवि की विरह वर्णन शैली की पूर्ण उत्कृष्टता परिलक्षित होती है।

हरि तेरो लीला की सुधि आवै ।  
 कमल नैन मन मोहन मूरति के मन मन चित्त बनावै ॥  
 कबहुँ निविहु तिमिर बालिगन कबहुँ फि ज्यों गावै ।  
 कबहुँ संभ्रम बचासि बचासि कहि संग हिलिमिलि उठि धावै ।  
 कबहुँ नैन मुँदि उर अन्तर मन माला पहिरावै ।  
 मृदु मुसुका नि कँक वलोक नि चाल कबोली पावै ॥

एक बार जाहि किहि कृपा करि सो कैसँ विहरावै ।

परमानन्द प्रभु स्वाम व्यान करि ऐसे विरह गँवावै ॥ १

प्रस्तुत पद में कवि ने विरहिणी के मानस फल में व्यक्ति जिन भाव परिणामों का फौजारी एवं उत्कृष्ट निष्पन्न किया है। वह प्रशंसनीय है। रति स्थायी भाव पर आधारित कवि के इस विप्रसन्न शृंगार की भाविका के परिवेश में हम श्रीकृष्ण वात्सल्य एवं उनकी प्रेमी राधा ही वाच्य विभाव के रूप में परिलक्षित होती हैं। श्रीकृष्ण के गुण, चिन्तन, अनुराग, जिस जाति उदीप्त विभाव दृष्टिगत होते हैं। राधा की कृष्ण के वियोग में जो काल्पनिक गतिविधियाँ एवं क्रिया कलाप जादि ही अनुभाव के रूप में दिखायी देते हैं। स्मृति, चिन्ता, वात्सल्य, भ्रम जादि संचारी भावों का सफलता पूर्ण प्रयोग समस्त पद रचना में विद्यमान है।

निष्कर्ष

परमानन्द सागर के पदों में कवि द्वारा राधा का वियोग वर्णन जो प्रस्तुत किया है, वह 'सुर' की राधा के विरह वर्णन से किंचित् मान भी कम दिखाई नहीं देता ।

यहाँ हम अपने कवि की विरह वर्णन के प्रीति में सुरसागर तक ले जाकर देखते हैं। सुरसागर के एक पद की कतिपय विरहजन्य पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

तखियत काहिंदी बति कारी ।

कहियो जाह पछि हरि सी जु भई विरह सुर जारी ॥

सुरदास जी के पद में स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण के वियोग में यमुना भी स्यामल होगयी है, वह ज्वर रूपा विरह से पीड़ित है।

इसी सन्दर्भ में सुर के पद से साम्य रसों हुए परमानन्दसागर को निम्न पंक्ति द्रष्टव्य है :

बहुरि हरि बागहुने किछि काम ।

रितु बसैत बरु मरु बित्तीत बरु बादर भी स्याम ।

प्रस्तुत पद की पंक्तियाँ से श्रीकृष्ण वियोग में बादल काले रंग के हो गये हैं। यह स्वाभाविक ही है कि प्रिय की स्मृति क्यथा विरहानल के संताप के कारण काला रंग ही जाता है। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि परमानन्ददास जी का विरह वर्णन सुर, से अधिक उच्च कौटि का नहीं है, तो निम्न स्तर का भी नहीं है। कवि को विरह वर्णन पर पूर्ण अधिकार है।

### शान्त रस एक सैदान्तिक विवेचन

प्रत्येक रस का सम्बन्ध मूलतः उसके स्थायी भाव से होता है। शान्त रस का सम्बन्ध 'निर्वेद' कथवा 'शम' से निश्चित किया जाता है। निर्वेद कथवा 'शम' को शान्त रस का स्थायी भाव कथवा संचारी भाव स्वीकार किया जाये इस सन्दर्भ में काचार्य मम्मट ने निर्वेद नामक भाव को शान्त रस का स्थायी भाव, संचारी भाव दोनों रूपों में निश्चित किया है। परन्तु काचार्य मम्मट के उक्त मत के विपक्ष में रामवन्द्र गुणचन्द्र ने शान्त रस के स्थायी भाव 'निर्वेद' कथवा 'शम' दोनों में वन्तर स्थापित करते हुए 'निर्वेद' को शान्त रस का संचारी भाव तथा 'शम' को स्थायी भाव के रूप में स्वीकार किया। उनके मतानुसार :

“ शम कहते हैं निःस्पृहता कथवा क्लेश के  
भाव को निःस्पृहत्व शमः ” ।

काम, क्रोध, लोभ, मान, माया आदि से रहित विषय संलग्नता से विमुक्त, वित्तष्ट चित्तवृत्ति रूप 'शम' नामक स्थायी भाव शान्त रस ( के रूप में अभिव्यक्त ) होता है।

#### शान्त रस की उत्पत्ति

जन्म- मरण से युक्त संसार से, मय तथा वैराग्य से जीव, उजीव ( परमात्मा, प्रकृति ) पाप- पुण्य आदि तत्त्वों तथा मोक्ष

१- हिन्दी नाट्य दर्पण पृ० ३३०

२- 'काम क्रोध लोभ मानमायापनुपराध परान्मुक्ता- विवर्जिता वित्तष्ट  
केतौ रूप शमस्थायी शान्तौ रसौ भवति ॥'

- वही पृ० ३१७

के उपायों के प्रतिपादक शास्त्रों के विपर्यय से शान्त रस की उत्पत्ति होती है।<sup>१</sup>

दह्लिता, व्याधि, अपमान, हंष्या, भ्रम, वाङ्मोह ( फटकार ), ताड़न, दृष्ट वियोग, परविभूति-दर्शन आदि ( सांसारिक ) वस्तुओं के कारण विरसता ( वैराग्य भाव ) तथा तत्त्व ज्ञान निर्वेद कहलाता है।<sup>२</sup>

आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र के निर्वेद, शम के अन्तर के विषय में उपर्युक्त कथनों का तात्पर्य इस प्रकार है। विषय वासनाओं से वास्तविक विरहित ही ' शम ' है, और दह्लिता, पुनः स्मरण, सांसारिक बाधाओं से जो वैराग्य की भावना का जन्म होता है, वह निर्वेद कहलाता है। इस प्रकार वे शम की स्थायी भाव और निर्वेद की संचारी भाव मानते हैं।<sup>३</sup>

शान्त रस को रस रूप में सर्व तत्सम्बन्धी स्थायी भाव ' शम ' जैसा निर्वेद की स्थायी भावों के रूप में इस विषय में संस्कृत के आचार्यों के मतों में सदा स्तरेद रहा है। परन्तु हमारे विचार से शान्त रस को रस रूप में तथा उसके सम्बन्धित ' शम ' की उसका स्थायी भाव के रूप में स्वीकार करना न्याय संगत ही है, क्योंकि फल विज्ञान के अनुसार स्थूल और सूक्ष्म रूप में प्रत्येक पदार्थ में भूत प्रवृत्तियाँ, सामान्य प्रवृत्तियाँ होती हैं। जब इनमें से कुछ वान्तारिक प्रवृत्तियाँ जैसे - दाम, विरोध,

१- हिन्दी नाट्य दर्पण पृ० ३१७

२- .. पृ० ३१७

३- .. पृ० ३३१

करुणा, त्याग, मैत्री, घृणा, मुक्ति ' शम ' , ' निर्वेद ' आदि को वाक्य रूप में प्रस्तुत होने के लिए अनुकूल वातावरण मिल जाता है, तो यह भी रति, हास, सज्जा, आदि की भाँति ही ' रस ' रूप में प्रकट हो जाती है। कलस्वरूप ' शान्त ' रस की प्रतीति होने लगती है। ' शम ' की स्थिति भी अन्य स्थायी भावों से भिन्न नहीं है। ' रति , हास, शोक, आदि स्थायी भावों का ठीक उनकी वास्तविक स्थितियों के अनुरूप ही वर्णन करना एवं अभिनय का रूप देना पूर्णतया संभव नहीं है, और न ही इनकी नितान्त प्रकृति ही संभव है। रति, हास, शोक आदि भाव जब किसी वातम्बन विभाव से सम्बद्ध हो जाने पर ही काव्य में वर्णन योग्य हो जाते हैं। इसी प्रकार ' शम ' अर्थात् निर्वेद भाव भी काव्य जगत् रंगमंच पर अभिनय की विषय वस्तु बन जाते हैं।

सप्तर्षिाचार्यों ने प्रधान रस चारों में ( शृंगार, वीर, शान्त ) इस रस की प्रतिष्ठित किया है। उन्होंने भी शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद अथवा शम ही निश्चित किया है। शृंगार की लालसा, नश्यता, एवं क्षण मंगुलता को भाव लगा ही वातम्बन विभाव के रूप में स्वीकार की जाती है। अतः शान्त रस स्निग्ध पदों में निहित है। समान्य, शमस्तान अथवा तीर्थ दर्श आदि ही उद्दीपन विभावों का कार्य करते हैं। अनु रोमांच, परचाताप एवं ग्लानि अनुभावके रूप में पायेजाते हैं। हर्ष, धृति, मति, स्मरण आदि संचारी भावों का संवरण मिलता है। इसप्रकार उक्त विभावों से प्रभावित एवं परिपुष्ट होकर शान्त रस की अनुभूति होती है।



### परमानन्द सागर में शान्त रस-वर्णन

परमानन्द सागर के कतिपय प्रमुख पदों में वर्णित शान्त रस के उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

फिर फिर पड़िताणी ही राधा ।  
 कित तू कित हरि कित यह बीसर कत प्रेम रस बाधा ॥  
 बहुरि गीपाल भेज कब हरि हैं कब हन हृजन बसिहैं ।  
 यह अड़ता तेरे जिय उपजो चतुर नारि हुनि हंसि हैं ॥  
 रसिक गीपाल सुनत सुन उपजि वागम निगम फुकारे ।  
 'परमानन्द स्वामी' पे वाचत को यह नीति विचारै ॥९

#### रस विवेचन

प्रस्तुत पद में प्रकटित भाव मूलक प्रसंग के सन्दर्भ में हमें सर्वत्र ही शान्तरस की प्रतीति होती है। निर्वेद वक्ष्या 'शम' स्थायी भाव की भाव भूमि में पद की द्वितीय एवं तृतीय पंक्ति से जीवन की जाण भंगुरता (वस्थिरता) का आभास होता है, जिसे हमें आत्ममग्न विभाव का ही परिचय होता है। पद की प्रथम, द्वितीय पंक्तियाँ राधा की समागम की ओर प्रेरित करती हुई प्रतीत होती हैं, जो कि उद्दीप्त विभाव का परिचायक सिद्ध हो सकती हैं। सम्पूर्ण पद की पंक्तियाँ राधा की भविष्य में पश्चाताप करने का संकेत करती विसाई देती हैं, जिसकी हम अनुभाव भाव की भाव कोटि में स्थान देना उचित समझते हैं। पद की सम्पूर्ण रचना स्मृति

पर बाधारहित होने के कारण स्मरण संचारी भाव की प्रतीति होती दिखाई देती है।

हाँडि न पैत कुठे वति वभिमान ।  
मिति रस रीति प्रीति करि हरि सौ सुन्दर हैं भगवान ।  
यह जीवन धन वीस च्यारि को फलट रंग सो पान ।  
बहुरि कहीं यह कबसर मिति है गोप धन्य को ठान ॥  
बार बार हुतिका सिखै करहि कधर रस पान ।  
परमानन्द स्वामी हुत सागर सब गुन रूप निधान ॥ ९

#### रस विवेचन

स्तुति एवं उपदेशमूलक परमानन्द सागर की प्रस्तुत पद रचना 'जग' वर्णात् निर्बन्ध स्थायी भाव पर बाधारहित है। शृंगार रस के आवरण से बाच्छन् पद में भोक्त्र्या के साथ समागम की प्रेरणा देते हुए कवि ने जीवन की अवस्थिति का सुन्दर वर्णन किया है। जिनसे बालम्बन, उद्दीपन विभावों का होना संभव प्रतीत होता है। पद की भाषा प्रेरणाजनक है जिसमें भगवान् कृष्ण से प्रीति एवं उनकी स्मृति की बात कही गयी है। कतः हमें स्मरण संचारी भाव का भी आभास होता है। भोक्त्र्या बालम्बन सगुण स्वरूप की उपासना के कारण बाधरहित पदा में वेष्टारहित मयित का सुन्दर आशीष भी 'परमानन्द सागर' के शान्त रस सम्बन्धी पदों में प्रत्यक्ष रूप से मिलता है। शान्त रस के स्थायी भाव निर्बन्ध वर्णात् 'जग' विषय में उत्प्रेक्षणीय बात यह है कि परमानन्द सागर के इस प्रकार के पदों

में ईश्वरीय अनुग्रह की परिपुष्टि ही की गयी है। 'परमानन्द सागर' की  
 'होहि न देत फुटे वति वमिमान । चिति रह रोति प्रीति करि हरि  
 सो सुन्दर है भगवान ।' ऐसीकैव पद-पंक्तियों में इस उक्त तथ्य की  
 पुष्टि की गयी है।

मानिनी सेही मान न कीजि ।

ये जीवन वसति की फल ज्यों जब गुपाल पागि तब दीजि ।

दिन दिन छि रेनहि सुंदरि, जैसे कला चन्द की झीजि ।

प्रथ पुन, सुकुल फल तैरो, क्यों न रूप नैन भरि पीजि ।

चरण कमल की सपथि कहत हों सेही जीवन दिन दस जीजि ।

'परमानन्द' स्वामी सो मिलैं अपनी जनम सफल करि

लीजि ॥ १

### रस विवेचन

जहाँकार से परित्याग की सुन्दर कल्पना कवि  
 ने एक गीतो के माध्यम से करते हुए श्रीकृष्ण रस मय होने की बात कही  
 है। श्रीकृष्ण और गीतियों के माध्यम से ही सूरदास, परमानन्ददास आदि  
 कवियों ने संसार की क्लृप्ता, नश्वरता के उपदेशात्मक पद रचे हैं, जिनसे  
 मानव मन के वात्स्य ज्ञान का विकास हो सके । इन भक्त कवियों ने परोक्ष  
 रूप में अपनी इन पदों के द्वारा लोगों को एक परम विश्राम का रास्ता  
 दिखाया है। यह योजना ही इन भक्त कवियों के शान्तरस की अपनी योजना  
 है।

उक्त पद में शान्त रस के तीन प्रत्ययों का अवलोकन

हमें सह्य ही ही जाता है। पद की अंतिम पंक्ति से ऊपर की पंक्ति में " "   
 ऐसी जीवन दिन दस जीये है " जीवन की अस्थिरता का बोध होता है,   
 जो कि बालम्बन विभाव है। कृष्ण मिलन से उद्दीप्त विभाव की परिकल्पना   
 करना उभय है। गोपिका के स्मरण करने में स्मरण संचारी भाव का आभास   
 होता है :

नीली मसुरा नगर ।  
 जोति गत सदा संतन हित स्याम सगर ॥  
 जलम परण मुनि मृत दाक मुक्ति जगर ।  
 कोऊ कैसे रही करि नाही बगर ॥  
 उमम मदिम जलम मेद नहि स्फुटि उगर ।  
 परमानन्द स्वामी " महात्म बधिक लगर ॥ १

रस- विवेक

उपर्युक्त पद में तीर्थ दर्शन सेत सगागम ( मसुरा   
 नगरी ) की विशेषता का गान किया है जिससे उद्दीप्त विभावक दृष्टि   
 गत होता है। " शम " स्थायी भाव पर कवि के इस पद में शान्त रस के   
 प्रायः सभी रंग प्रत्येकी का सुन्दर समन्वय मिलता है। संसार की अस्थिरता   
 से बालम्बन विभाव । पद की तृतीय पंक्ति के अंतिम शब्दों से ही कवि के   
 शान्त रस की कल्पना का उद्गार हो जाता है, क्योंकि मसुरा नगरी को   
 वह मुक्ति का घर ( परम विज्ञान ) स्थल कह कर सम्बोधित करता है ।   
 कवि के शान्त रस का सुन्दर स्वरूप हमें उसके अन्तर्गत शब्दों से ही जाता है।

इसी प्रकार है शान्त इस की योजना ही परमानन्द दास के पदों में परि-  
रक्षित हो रही है।

यह पाँगी संकरणस कीर ।

चरन कमल बसुराग निस्तर, भावत है सन्तन की भीर ।

संग देहु तो हरि भक्तन की बाह देहु तो जसुना तीर ॥१

### इस विवेचन

वन्दना और स्तुतियों के बीच कवि ने सन्त  
उपागम पर अधिक बल दिया है। पूर्ण पद भक्ति भाव से वीर प्रीत है।  
भक्ति की इस सुन्दर भाव भूमि के अन्तर्गत हमें इस इस का पूर्ण प्रभाव  
प्रसारण मिलता है। कवि स्वयं वाक्य रूप में है। संत जन वादि वासम्बन  
है, संत उपागम की परिकल्पना जसुना दर्शनादि में उद्दीप्त विभाव का बोध  
होता है। पद में हर्ष, स्मरण के भाव- किन्तु स्वयं कवि से ही स्पष्ट होते  
हैं किसे संवारियों की छटा ही परिलक्षित होती है। कवि की कल्पना  
की पूर्णता में ही पूर्ण ' हम ' की प्रतीति ' हम ' स्थायी भाव की  
भाव भूमि के किन्तु की कल्पना की जा सकती है।

कवि का शान्त इस बालकारिकों के शान्त इस  
से भिन्न ही प्रतीत होती है। कवि के पदों में पूर्ण अनुग्रह, शान्ति निस्तन  
महाप्रभु श्रीकृष्ण की शरणागति, स्तुति, वन्दनाओं का गायन एवं उनके  
दर्शनादि के भाव भोने किन्तु संकीर्ण हैं किन्तु मानव मन की पूर्ण शान्ति  
मिलना संभव होता है। क्योंकि महाप्रभु श्रीकृष्ण ही उनके सर्वस्व हैं, इसी  
प्रकार की पद रचनाओं में कविकी शान्त इस सम्बन्धी वन्दना किन्ती प्रवाहित

होती प्रतीत होती है।

### वात्सल्य रस : एक सैद्धान्तिक विवेचन

वात्सल्य रस को एक स्वतन्त्र रस रूप में स्वीकार करने के विषय में भारतीय काव्यशास्त्री एक मत नहीं रहे हैं। बहुत से वाचार्य जयवा काव्यशास्त्रियों ने इस रस की परिगणना शृंगार रस के अन्तर्गत ही की है, परन्तु वात्सल्य रस के अस्तित्वको एक स्वतन्त्र रस के रूप में स्वीकार करने वालों में वाचार्य विश्वनाथ का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है।

वाचार्य विश्वनाथ ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'साहित्य दर्पण' में अपनी 'स्फुट समस्कारितयावत्सल्यं संचारिणो निष्ठा रक्षा हर्ष गर्वादयो मताः' की अभिव्यक्ति में इस रस को एक स्वतन्त्र रस ही स्वीकार की है। वात्सल्य पूर्ण स्नेह जयवा पुन विषयक रति की ही इस रस का स्थायी भाव निश्चित किया है। पुन एवं पुनो दोनों ही इसके वातम्बन विभाव ही सकते हैं। शैशवकालीन श्रुद्धाओं के अन्तर्गत चेट्टारें जयवा उसके हावभाव आदि उद्दीप्त का कार्य करती हैं। शिशु जयवा बालक की चेट्टारों के प्रभावित होता पिता आश्रय रूप में होते हैं। उन चेट्टारों के प्रभाव के कारण उद्दीप्त भाव यथा- पुकारना, मुस्कराना, हँसाना उसे अकल्पक रति तक को अवस्थारं अनुभाव कहलाती हैं। रक्षा, हर्ष, गर्व आदि संचारी भाव होते हैं। कभीकभी वात्सल्य रस के दो पक्ष भी देखे जाते हैं, संयोग, वियोग। संयोग पक्ष के अन्तर्गत हर्ष का प्राधान्य रहता है तथा वियोग में चिन्ता, क्लृप्ता की प्रधानता दृष्टिगत होती है। परन्तु जहाँ तक ममता के तत्त्व का प्रश्न है तो हम देखें कि यह तत्त्व

दीनों ही पदों में समान रूप में विद्यमान रहता है। कतिपय स्थलों पर जहाँ करुणा तथा चिन्ता का वाधित्व ही जाता है, वहाँ हमें वही रूप में करुणा के आरोप का भाव भी दृष्टिगत होने लगता है।

निष्कर्षतः उपर्युक्त वाचार्यों के कथनों से परिचित होने के पश्चात् निःसंदेह वात्सल्य रूप पूर्णतया एक स्वतन्त्र रूप है। इस रूप की भावभूमि में वही सब तत्त्व निहित हैं जो कि एक स्वतन्त्र रूप के लिए अपेक्षित होते हैं। शृंगार रूप की भाँति ही इस रूप में रूप के प्रत्येक अंग प्रत्येक की स्वाभाविक रूप से भावभाविव्यक्ति निहित रहती है।

#### परमानन्द सागर में वात्सल्य रूप वर्णन

परमानन्द सागर में वात्सल्य रूप के बड़े सरस एवं मनमोहक चित्र संजोये गये हैं। इस प्रकार के चित्रण के उदाहरण हमें कवि के बाह्य लीला एवं मातृ वसिस्ताभा के एवं फलना के पदों के रूप में मिलते हैं। फलना के पद का उदाहरण द्रष्टव्य है :

‘हालरो हलरावै माता ।  
बलि बलि जाऊँ गोण सुख दाता ।  
बलि लोहित कर बरन सरीजे ।  
जे प्रसादिक मनवा लीजे ॥  
जसुमति वफाी पुन्य विचारै ॥  
बार बार सुख कमल निहारै ॥  
वस्ति सुवन पति गरुडा गामी ।  
नन्द सुवन परमानन्द स्वामी ।’ १

### रस- विवेक

परमानन्द सागर का प्रस्तुत पद फलना के पदों से उद्भूत है। कवि ने यहाँ श्रीकृष्ण के शिशुकालीन अवस्था का माता यशोदा द्वारा पालने में झुलाने के समय की एक अनुपम कर्तवी का उद्घाटन किया है। पद रचना में कवि ने श्रीकृष्ण की महिमा गायन के साथ साथ वात्सल्य रस का भी संचार बड़े ही सरस एवं माधुर्य युक्त परिवेश में किया है। पद में वात्सल्य रस के शास्त्रीय कर्ण प्रत्यर्णों का प्रयोग निम्न प्रकार से परिलक्षित होता है।

वात्सल्य रस के स्थायी भाव 'वात्सल्य पूर्ण स्नेह' की भाव भूमि में माता, यशोदा, वाक्य रूप तथा श्रीकृष्ण का शिशु स्वरूप 'बालम्बन' रूप में वर्णित है। श्रीकृष्ण का महिमाययी बालन्वीत्पादक एवं वाक्यार्थ स्वरूप एवं उनके बहणाययी तरीज सदृश लुकीपल नन्हें नन्हें से चरण 'उदीप्त विभाव' के रूप में 'वाक्य' रूप माता यशोदा के हृदयान्तर्गत वात्सल्य भाव की पूर्णतिः उदीप्त कर देते हैं। माता के निहाली में अनुभाव की प्रतीति होती है। इस प्रकार के वातावरण में माता के मुल मण्डल पर हर्षादि भावों का हीना स्वाभाविक ही जाता है जिन्हें हम संचारी भावों के अन्तर्गत स्थान दे सकते हैं। पद रचना में वात्सल्य रस के संयोग पदा का ही चित्रण ही सका है।

‘ तेरी लाल की मोहि लागी बलाय ।

बाल गोपाल झुलवा मेरे बली बगन धाय ।

लाल बू कैलटकन मटकन पीछची तुपुर बाजे पाय ॥

लटकी दे दे ग्वाल नचावत मुदित जशोदा पाय ।



वानन्द मरी नंद ब्रु की रानी बंग बंग निरस्त भाय ।

परमानन्द नन्दन की रती उर लपुटाय ॥ १

### रस विवेचन

परमानन्द सागर ' उपरोक्त पद माता की बमिलाणा के पदों से उद्भूत है। पद की रचना से पूर्णतः स्पष्ट होता है कि माता यशोदा के हृदय में उन्मुखित बमिलाणारं किस प्रकार अपने लाल श्रीकृष्ण की बात श्रीदाजी ( जंगल में कलना, फिरना, बात बिनोदी नृत्य ) आदि की बेलने के लिए उदीप्त हो रही है और यह बमिलाणारं स्वामी उदीप्त हो चुकी है कि उनको पूर्ण करने के लिए बात कृष्ण से वह करने के लिए कहने भीलग जाती है, उधर ग्वाल बात भी उन्हें चुटकियाँ देकर नचवाते हैं। इस प्रकार कवि ने बात केष्टाजी , श्रीदाजी आदि के भाव भीने कि अपने पदों में संजोर हैं। इसके साथ ही साथ हमें उनके इस प्रकार के पदों में वात्सल्य रस के सभी शास्त्रीय लक्षण उपलब्ध हो जाते हैं, जो कि कवि की महाकवि दूर की बराबरी में लाकर खड़ा कर देते हैं ।

वात्सल्य रस के सन्दर्भ में हमें उसके उक्त पद के अन्तर्गत प्रायः सभी वर्गों के दर्शन उपलब्ध हो जाते हैं। पद में वात्सल्यमयी स्नेह स्थायी भाव स्पष्ट है ' बालम्बन ' श्रीकृष्ण बात्रय रूप में माता यशोदा एवं ग्वाल बात वर्णित किये गये हैं। बात केष्टारं ( जंगल में दाँड़कर कलना, चुटकियाँ पर श्रीदामयी नृत्य ) आदि ही उदीप्त विभाव हैं। ग्वाल का चुटकियाँ बजाना , कृष्ण का यशोदा द्वारा गले से लगाना, निरस्ता आदि की अनुभाव की कोटि में रस सकते हैं। श्रीकृष्ण के श्रीदा युक्त नृत्य के दृश्य

से माता का मुक्ति होना अर्थात् इच्छा के भाव ही संवर्ती भाव दृष्टिगत होते हैं। पद वात्सल्य रूप के संयोग पदा का परिणामक है।

कहन लगे पीसन मैया मैया ।  
 बाबा बाबा नन्दराय सौ जीर हलधर सौ मैया मैया ॥  
 इगन मगन मछुदन मोधी सब ब्रज लेत बलैया ।  
 नाचत मोर रहत संग उनके तोतरे बोल सुलैया ॥  
 दुरि लेन किन बाऊ मनीहर मारेगी काहू की मैया ॥  
 मात कलौदा ठाड़ी टेर ले ले नाम कन्हैया ॥  
 सब गोकुल में जानन्द उपज्यो घर घर होत बधैया ॥  
 नंद नंदन को या इवि ऊपर परमानन्द बलैया ॥ १

#### रस विवेचन

उपर्युक्त पद 'सागर' के 'बाल लोला' के पदों से उदाहरण के लिए प्रस्तुत है। पद की पूर्ण रचना में कवि ने बाल कृष्ण की छद्मावाँ, उनकी तौलती बोलो आदि की चिन्तित करते हुए एक मनीहर किन उपस्थित किया है।

बाल लोला पद के इस उदाहरण में हम वात्सल्य रूप का अध्ययन इस प्रकार करते हैं।

संयोग पक्षीय वात्सल्य रूप के प्रणिष्ठा में पद के अन्तर्गत 'वात्सल्य पूर्ण स्नेह' ही स्थायी भाव है। श्रीकृष्ण बालम्बन रूप है तथा यलौदा सक्ति सभी ब्रजवासी बाण्य रूप में चिन्तित प्रतीत होते

हैं। श्रीकृष्ण के तीतले बोल तथा उनके साथ मयूर नृत्यादि ही यहाँ उदीप्त विभाव का कार्य करते विशाई देते हैं। माता द्वारा वर्णित पुत्रा में कृष्ण सम्बोधन की हम अनुभाव के रूप में वर्णित देत पाते हैं। श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं से गोकुल जनों की मुलाकृतियों पर वर्ण के भाव ही लंचारी भाव के रूप में प्रतीत होते हैं।

श्रीरुत कान्त कनक वागन ।

निब प्रतिविम्ब विलोकि कितकि धावत फरत की  
परछावन ।

फरत धावत, प्रमित हीत तब वावत उलटि लाल  
तहँ लावन ।

परमानन्द प्रभु की यह लीला निरस्त क्षमति हँसि  
मुसकावन ॥ १

एक विवेचन

उपर्युक्त बात लीला के पद में कवि ने बात सुलभ वापक्यता की बूठी भंगिमाओं के चित्रण द्वारा अपनी पांडित्य का परिचय दिया है। महाकवि परमानन्द दास जी के इस प्रकार के पद कृष्ण बाल लीला वर्णन के महाकवि गुरदास जी के पदों से किसी प्रकार भी कम महत्वपूर्ण नहीं प्रतीत होते हैं। अन्तर केवल खाना ही है कि 'सुर' की अपेक्षा परमानन्ददास जी ने बात लीला के पद की रचना कम की है। परन्तु जहाँ तक पदों के रचना की विशिष्टता का प्रश्न है वे सुर के पदों के ही समान हैं। उक्त पद सुर के निम्नोक्त पद से अत्यन्त ही अभिन्न है :

१- परमानन्ददास पद ७४

कितकत काम्ह छुट रुवन बावत ।

०

०

०

० ॥

हरि वषी बागिन कहु गावत ।

०

०

कबहु चितै प्रतिबिम्ब सम्म में लौनी सिधे सवावत ।

हरि देखत जसुमति कहु लीला , हरण बानन्द बदावत ।

सूर स्याम के बाल चरित- नित तितही शैल्य भावत ॥

रस विवेचन

वात्सल्य पूर्ण स्नेह के स्थायी भाव पर बाधाहित सम्पूर्ण पद में वात्सल्य रस का सरल प्रवाह दर्शनीय है। इस रस के धारा प्रवाह में ' बालम्बन ' श्रीकृष्ण , बाग्य माता यशोदा के रूप में अवगाहन कर रही हैं। बाल कृष्ण की शैष्टार ( प्रतिबिम्ब फटने के तिर कितकते हर दौड़ना वादि ) उद्दीप्त विभाव है। यशोदा का निरस्मा, बलभाव के रूप में प्रतीत हो रहा है तथा यशोदा के संसते मुसकावे में हर्ष संचारी भाव की छटा दर्शनीय है।

बाल दसा गोपाल की सव काहु भावै ।

बाके भवन में जात है सो ते गौद तिलावै ॥

स्याम सुन्दर मुख निरलि के जलता सचु पावै ।

लाल लाल कहि ग्वालिनी हंसि हंसि बँठ लगावै ॥

लटकी दै दै मुदित हषै कर लाल बजावै ।

परमानन्द प्रभु नाच हो सिधुताई जगावै ॥ १

१- परमानन्द भागर पद ७६ बाल लीला

### रस- विवेचन

प्रस्तुत एक बाल लीलापयी पद में कवि ने बाल कृष्ण की एक बुराई काफ़ी प्रस्तुत की है। जो कि स्वाभाविकता की भाव भूमि में कृष्ण के विकसित हो रही है, गोप- गोपियों तथा यशोदा के भावोन्मत्तता में हमें वात्सल्य रस की उत्पत्ति का वायोजन ही निम्न प्रकार से दृष्टिगत होता है।

“ वात्सल्य स्नेह ” स्थायी भाव ही इसकी आधारशिला के रूप में है। कृष्ण का बालस्वरूप तथा गोप गोपिकाएँ वादि “ वाच्य ” रूप में अभिव्यक्ति हैं। बालक कृष्ण का घर जाना, नृत्य वादि ही यहाँ उद्दीप्त विभाव के रूप में परिलक्षित होता है। गोपियों का रंजना, बालक कृष्ण की गले लगाना वादि क्रियाएँ अनुभाव के रूप हैं। पद में हर्ष संवारी भाव के दर्शन होते हैं तथा वात्सल्य रस के संयोग पदा का वर्णन है।

“ बाल विनोद ही जिय भावत ।

मुख प्रतिबिम्ब फरिषे की हरि हसति छटहवन धावत ।

कमल नैन मालन के कारत करि करि सैन बतावत ।

सबद जोरि बोल्यो जाहत मुख प्रगट बन नहि बसतत ।।

कोटि प्रताप सै की महिमा सिद्धता माहि दुरावत ।

परमानन्द स्वामी मनमोहन बसुमति प्रीति बधावत ।। १

### रस विवेचन

प्रस्तुत पद रचना श्रीकृष्ण के शैशवकालीन जीवन की चेष्टाओं की एक बुराई काफ़ी है, जिसमें कि पूर्व पदों की भाँति ही

शिशु कृष्ण " बालम्बन " तथा माता यशोदा " बाळय " की प्रतीक हैं। शिशु कृष्ण का बिम्ब फटना , घुटनों के बल तत्परता से दौड़ना , नेत्रों के माध्यम से मनीभाव व्यक्त करना, बोलने की चेष्टाएं आदि क्रियाएं उद्दीप्त विभाव की परिचायक हैं। प्रीति, हर्षादि ही संचारी भाव के चेतक हैं।

इस प्रकार " परमानन्द सागर " के अन्तर्गत हमें वात्सल्य रस से वीत प्रीत जैसे कई पद उपलब्ध होते हैं। इन पदों के आधार पर हम कह सकते हैं कि कवि को वात्सल्य रस वर्णन करने में पूर्ण सफलता मिली है।

अद्भुत रस : एक सैद्धान्तिक विवेचन

परमानन्द सागर के अन्तर्गत अद्भुत रस का अध्ययन करने से पूर्व अद्भुत रस से परिचित होना आवश्यक ही जाता है। अद्भुत रस को रस रूप में स्वीकार करने के सन्दर्भ में आचार्यों में कोई विचार वैविध्य नहीं है। अभिप्राय यह है कि सभी आचार्यों ने अद्भुत रस को एक स्वतन्त्र रस रूप में ही स्वीकार किया है। इस रस के बारे में सैद्धान्तिक विवेचन इस प्रकार प्रचलित है।

अद्भुत शब्द का अर्थ आश्चर्य है। स्पष्ट है कि किसी असाधारण घटना विशेष के भवण अथवा दर्शनादि से हृदय में जो विस्मय अथवा आश्चर्य उत्पन्न होता है वही इसका स्थायी भाव होता है। आश्चर्यजनक घटना अथवा कोई पदार्थ ही बालम्बन के रूप में माने जाते हैं और उस घटना एवं पदार्थकी समत्कारिता, आकस्मिकता का वातावरण

उदीपन विभाव के रूप में सम्पन्न जाता है। परिणामस्वरूप रोमांच, स्तंभ, स्वेद एवं प्रसन्नवादिता के भाव, अनुभाव के रूप में होते हैं। इस प्रकार जड़वा आवेग, वितर्क, प्रीति आदि संचारी भाव के रूप में दृष्टिगत होते हैं। अद्भुत रस के वन्तर्गत रस के वाचार्थ व्यंजित निहित आलम्बन भाव के निरूपण पर ही विशेष बल देते हैं।

### परमानन्द सागर में अद्भुत रस

परमानन्दसागर के अध्ययन से विदित होता है कि अद्भुत रस की अभिव्यंजना एवं उसकी चमत्कृति का पूर्ण विकास गोवर्धन तीला के पदों में ही हो सका है। परन्तु कवि के कतिपय गौदीहन, मुक्तिका का मक्षण सम्बन्धी पद भी हमें अद्भुत रस की भाव भूमि तक पहुँचाने में सक्षम प्रतीत होते हैं। परमानन्द सागर की वाच्यजनक अभिव्यक्तियाँ निम्न वंशित पदों में द्रष्टव्य हैं :

“ जब नन्वतात नयन भरि देखे ।

०

०

परमानन्द निरसि लोभा ब्रज वनिता करति छुन लोरि । १

### रस विवेचन

उपर्युक्त पद श्रीकृष्ण के गौदीहन करने के समय से पूर्व का है। श्रीकृष्ण के जलकृत एवं कलात्मिक स्वरूप के चित्र की एक कवि-कार की भाँति इस अनुपम ढंग से प्रस्तुतीकरण किया है जो कि ब्रज वनिताओं के लिए तो विस्मयानुभूति का केन्द्र है ही साथ ही वह पाठकों के मन की

भी अपनी बीर केन्द्रित करने में मो पूर्ण सत्ताप प्रतीत होता है।

उपर्युक्त पद की पंक्तियाँ में हमारे कवि ने श्रीकृष्ण की आलम्बन विभाव तथा कृष्ण स्वल्प की अवस्थिति की उदीपन विभाव के रूप में चित्रित किया है। 'एक टक रही धारा तल की पौखनी घुरति पैस' पंक्ति में 'स्तम्भ' अनुभाव का परिचय मिलता है। रूप सौन्दर्य के इस कला-विकसित के वातावरण में ब्रज वनिताओं में कृष्ण प्रेम का आवरण ही जाता है, कतः यह प्रेम का वातावरण ही संचारी भाव का बीतक प्रतीत होता है।

देखी गोपाल जु की सीता ठाटी ।

घुर प्रतापिक वनराज ह्वै है अनुमति साथ लिर रसु छाटी ।

ये सब ग्वास प्रकट कहत है स्याम मीहर साईं माँटी ।

बदन उधारि भीतर देख्यो त्रिभुवन रूप बेराटी ॥

कैसव के गुन वेद बसाने ऐन सखस मुख छारी छाटी ।

सख्यो न जाय बन्त वन्तरागति बुधि न प्रीति कठिन यह छाटी ॥

अन करम गुन स्याम के बसावत समुक्ति न परे गूढ़ परिपाटी ।

जाके सरन गये मय ताही हो दिधु परमानन्द दाढी ॥१

रस विवेचन

प्रस्तुत पद में श्रीकृष्ण द्वारा मृदिका मल्लिका का चित्र उपस्थित करते हुए अद्भुत रस की वसिष्ठवित दर्शनीय है। जिसमें स्यामी भाव पर अवलम्बित श्रीकृष्ण आलम्बन विभाव के रूप में प्रदर्शित किये गये हैं। बाल कृष्ण द्वारा मिट्टी लाया जाना, बीर माता यमोदा द्वारा उन्हें कड़ी



द्वारा प्रताडित करनेका दृश्य तथा उनका विराट् रूप प्रदर्शन ही उद्दीप्त विभाव के रूप में वर्णित है। सुर ब्रह्मादिकों का वाश्चर्य चकित होने से वे रोमांचित हो जाते हैं। उस रोमांच में अनुभाव की प्रतीति होती है। यलोदा का आवेग में बाजाना , आवेग सेचारी भाव का प्रतीक छिद्र होता है।

वदनुत तेरी गति बारि नन्हैया ।

तुम जो तनिक गोवर्धन धार्यो एक ही हाथ लियो कैसे भैया ॥

अमुना बंठि क गह्यो पुनि काली रहे सब लोक दिसौया ।

कैसी कृनावर्त तैं मारे और पूजना ली जहूँया ॥

बच्छ बाल कधासुर लीला तुम ही मर ता ठौर नन्हैया ।

‘ परमानन्द ’ प्रभु बहुतक ऐसी कपनो मरम कह्यो नंद दुहैया ॥११

रस विवेचन

गोवर्धन धारण के इस वाश्चर्यजनक घटनामयी प्रसंग में वदनुत रस का पूर्ण परिपाक हो उठा है। विस्मयपूर्ण स्थायी भाव के परिवेश में यहाँ हमें श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण की यह वाश्चर्यमयी घटना एवं कालीय नाग की घटना के प्रसंग ही इस रूपमें प्रदर्शित किये गये हैं। इन वाकस्मिक एवं वानन्दमयी घटनाओं के मूल में निहित वानन्द कर्मात् प्रसन्नकृत तादि ही अनुभाव में व्यक्त किये हैं। उपर्युक्त प्रसंगों में कृष्ण एवं उनके सखाओं के मध्य कौतूहल पूर्ण वितर्क का घातावरण दृष्टिगत होता है। फलस्वरूप वितर्क सेचारी भावकी भी कल्पना की जा सकती है। फल की प्रथम प्रवृत्ति से वर्ण सेचारी भाव का भी आभाव होता है।

केशी माईं कवरण उपजे मारी ।  
 पर्वत लियो उठाय कै सै सात बरस की बारी ॥  
 सात पीस लिहि छोटक ही याने बाम यानि पर धार्यो ।  
 बलि सुकुमार कृपार नंद कैसे बोझ सवार्यो ॥  
 बरसे मेघ पहा प्रलय के लिनते घोष उबार्यो ।  
 गोधन ग्वाल गोप सब राते सुरपति गरब प्रहार्यो ॥  
 मगत हैत ज्वतार सेत प्रभु फूट होत सुम चार्यो ।  
 परमानन्द प्रभु की बलि जैये जिन गोवर्धन धार्यो ॥ १

### रस विवेचन

उपर्युक्त पद में भी हमें प्रायः वही सभी रस सम्बन्धी तथ्य उपलब्ध होते हैं। पद पूर्णतः वाच्यता वगैरा विस्मय स्थायी भाव पर आधारित है। सात वर्ष की अवस्था के बाद कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत को उठा लेने की वाच्यता उत्पादक घटना वातस्थान के रूप में प्रदर्शित की गयी है। इन्द्र द्वारा भयंकर बर्षा से संरक्षण पाने के कारण ब्रह्मासुरियों द्वारा प्रकुल्लित होने से 'प्रकुल्लता' अनुभाव फूट होता है। पद की सम्पूर्ण रचना के वाच्यजनक प्रसंग में वाणीपान्त कहीं भी शिथिलता के दर्शन नहीं होते हैं। कवि की इस प्रकार की रचनाओं में उसके हृदय की मार्मिकता का परिचय मिलता है। कवि हृदय की इस मार्मिकता पूर्ण शक्ति ने ही इनकी रचनाओं में स्वाभाविक रूप से रस व्यंजना का वायीजन कर दिया है। रस कला कलंकार आदि के वर्णन करने का कविता की वह लक्ष्य प्रतीत नहीं होता है, परन्तु कवि की बहुज्ञता एवं महानता इस तथ्य से परिलक्षित होती है कि उसकी रचना में फिर भी काव्यिक प्रायः सभी शास्त्रीय तत्वों का उद्घाटन ही उका है।

महाकाय गीर्वाण फर्त एक ही हाथ उठाय लिया ।  
 देवराज की गर्व छर्ची हरि अथ दान ग्वाहन की दीयी । ।  
 यह बासक लीला अवतारीकही नन्द ब्रू ग्वाहित बाग ।  
 सेवा करी छैह विचारी कबहु बयार न ताती लागे ॥  
 तोरुयो सबट फूलना पारी तुनावत दानव सैकार्यो ।  
 श्री जमुना जल तिरबिस कीनीं काती नाग बाहर निकार्यो ॥  
 बर्जुन वृन्ध किनक में तोरे बाधुन दाम ऊत्त बंधाये ।  
 परमानन्ददास की ठाकुर जाकीं गरुण मुनि गाये ॥ १

#### रस-विशेष

उपर्युक्त पद में भी कवि ने श्रीकृष्ण के वाचस्पत्यजनक कृत्यों का भाव भीना निम्न उपस्थित किया है। यद्यपि पद के वर्णन में कवि ने कोई विशेष बात नहीं कही है, परन्तु एक ही बात को कितने ही ढंग से अपनी उसी रस व्यञ्जना के अन्तर्गत व्यक्त करता मला वा रहा है जो कि प्रहसनीय हीकही जायेगी ।

पद रचना में स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण ने गीर्वाण फर्त की एक ही हाथ से सुगमतापूर्वक उठा लिया है। आतंक धारी तुनावत, फूलना आदि का वध करके ब्रजवासियों को मय मुक्त कर दिया । इस प्रकार की वाचस्पत्यमयी घटनाओं का जायोजन उद्दीपन विभाव का ही परिचायक है। आतंकवादियों से कूटकारा मिल जाने के कारण प्राणिमान कसा जल समुदाय में प्रसन्नता की लहर दौड़ जाना एक स्वाभाविक बात है। इस प्रकार हमें प्रसन्नता ही यहाँ अनुभाव के रूप में दृष्टिगत होती है। समस्त पद में अद्भुत रस की पूर्ण चमत्कृति की ही कटा दिखाई देती है।

मति गिरि । गिरि गोपाल के करते ।  
 बरे मैया ग्वाल लकड़िया टेकीं बपे बपे कर के बतते ॥  
 बात पीस भूतलधार बरल्यी बूँद न परो एक जलधारी ।  
 गोपी ग्वाल नन्द सुरासे बरसि बरसि हारयी बम्बर ते ॥  
 कन्तरिन्द जल बर्यो सिहर पर नन्द नन्दन की कोप बनल ते ।  
 परमानन्द प्रभु राति तियो ब्रज वनरापति बायी पायन पर ते ॥१॥

### रस-विशेष

प्रस्तुत वाच्यार्थोत्पादक प्रसंग में कवि की कल्पना का सर्वोत्कृष्ट रूप सुलभित हो उठा है। कवि ने श्रीकृष्ण, ब्रजवासी तथा गोवर्धन पर्वत के माध्यम से गोवर्धन धारण करते हुए साथ ही कुछ ग्वाल दूसरों से यह कहते हुए कि 'बरे मैया ग्वाल लकड़िया टेकीं बपे बपे कर के बतते' के वर्णन में सामाजिकों के समक्ष एक सजीव भावों की उपस्थिति कर दी है। इससे कवि की काव्य कृतता का पता चलता है।

फिर रचना में ग्वाल गिरि ( गोवर्धन पर्वत ) की सम्बोधन करते हुए उस समय दिनायी देते हैं जिस समय कि श्रीकृष्ण पर्वत को बपे कर ( हाथ ) पर साथे हुए हैं। यह विस्मयात्मक घटना 'वालम्बन' रूप में प्रकट होती है। घटना की विलक्षणता ही 'उद्बोधन' विभाव रूप में प्रदर्शित हुई है। नन्द नन्दन वर्णन श्रीकृष्ण का शोध हो यहाँ सनारी भाव के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

इस प्रकार की फर रचनाओं से हम निष्कर्षित:

कह सकते हैं कि परमानन्द दास जी की व्यंजना शक्ति अत्यन्त ही प्रभावशाली है। उनकी यह व्यंजना शक्ति अर्जित ज्ञाना कृत्रिम न होकर सहज, स्वाभाविक एवं नैसर्गिक रूप में ही काव्यान्तर्गत प्रकटित होती दिखाई देती है। कवि के काव्य में शृंगार रस के दोनों पक्षों का, ज्ञान्त रस, वात्सल्य रस, वदन्त रस के बड़े ही मनोरम दृश्यों के रूपों में सुन्दर कंठ से गायन मिलता है।

### परमानन्ददास जी संनारी भावों के सौन्दर्य की दृष्टि

#### संनारी भाव एक शास्त्रीय विगिन

संनारी भावों का शास्त्रीय विगिन एक सिद्धान्त तथा एक निष्पत्ति अन्वय के अन्तर्गत एक केवल वर्गों के साथ किया जा चुका है, अतः यहाँ इस विषय की पुनरावृत्ति करना प्रियकर नहीं है। परन्तु फिर भी प्रसंगवत् हम यहाँ उनकी संस्था आदि का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना समीचीन समझते हैं। संनारी भाव स्थायी भावों को पुष्ट करके स्था-  
वस्था तक ले चलते हैं, और जोड़े ही समय संनारण करके अन्त तरंगवत् वा विभूत एवं विरोधित हो जाते हैं। इस प्रकार आत्मन्त और आत्म्य के मन के अन्तर मनोविकार जो उन्मत्त और विमत्त होते रहते हैं संनारी भाव कहलवते हैं।

मानव मन विचारों का उद्गम होता है। अतः उसमें अनेकों प्रकार के संनारी भावों की उत्पत्ति हो जा सकती है। परन्तु अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से आचार्यों ने उनकी संस्था ३३ ही निश्चित की है, जो क्रमशः इस प्रकार है :-

निर्वेद , ग्लानि, शंका, अज्ञा, मद, मम, आत्मन्त,  
दीनता, चिन्ता, मोह, स्पृष्टि, प्रीति, आवेग, अहंता, गर्व, विषाद ,

वीरसुख, निद्रा, वपस्मार, स्वप्न, विविध, क्षमर्ष, क्षमहिता, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, नास वीर वितर्क ।

कहण रस : एक वैद्वान्तिक विवेचन

कहण रस की प्रकृतः एक रस रूप में स्वीकार करने के विषय में विद्वानों में बहुत ही सीक्तान रही है। यहाँ हम भवभूति की धारणा प्रस्तुत करना आवश्यक समझते हैं। कहण रस की प्रकृतः रस मानने के अन्दर्भ में उत्तररामचरित नाटक में लिखित भवभूति का निम्नोक्त कथन इस प्रकार है :

“ एक मात्र रस कहण ही है, जो निमित्त भेद से विभिन्न रूप इस प्रकार धारण करता है जिस प्रकार जल प्रकृतः एक होते हुए भी विभिन्न आवर्तों, लहरों तथा तरंगों का रूप धारण कर लेता है।

‘ कहण ’ रस की व्याकृता, भाव बिम्बा शक्ति एवं उसकी स्थायीभाव कहणा वक्ता वैद्वान्तिक विशिष्टता के कारण ही भवभूति ने ‘ एको रसः कहण एव निमित्तभेदात् ’ की व्यंजना की थी ।

बालार्थ विश्लेषण ने कहण रस के तीन प्रत्यर्णों

१- ‘ एको रसः कहण एव निमित्त भेदाद् भिन्नः

पूष्पं पृथग्विकारोऽपि विद्यते ।

बादलं बुध्बुद्धं गिर्यासु विकारान्मयी ।

यथा सतितमैव तु समग्रम् ॥

- उत्तर रामचरित , तृतीय स्कन्ध श्लोक ४७

का विवेचन करते हुए उसका स्थायी भाव शोक, प्रसन्न तत्त्व इष्ट का नाश और दूसरा तत्त्व वनिष्ट की प्राप्ति निश्चित किया है। वनिष्ट से अभिप्राय पराधीनता, निर्धनता, भूकम्प, कावृष्टि, काल वृष्टि आदि से सम्बन्धित दशा ही होती है। परन्तु यहाँ यह कहना भी है कि विप्रलम्भ शृंगार वही माना जावेगा जहाँ इष्ट का नाश न होता हो, उस स्थिति में विरह ही होता है। इसके साथ साथ नायक नायिका में मिलन की सम्भावना भी बनी रहती है।<sup>१</sup>

इस प्रकार जो इस की स्थायी भावशोक होता है जो इष्ट के वहित सर्व विनाश की संभावना से प्रस्तुत होकर इस रूप में परिवर्तित हो जाता है। दीन हीन दशा युक्त व्यक्ति तथा कोई वस्तु बालम्बन के रूप में होती है। इसी प्रिय वस्तु कथवा व्यक्ति के गुण, स्नेह, चिन्तन, उसके वस्त्र, आभूषण, निज दर्शन, तथा उसकी दीन हीन दशा का भवण आदि सभी क्रियाएँ उद्दीप्त विभाव का कार्य करती हैं। रुदन उच्छ्वास, निवर्ण, विलाप एवं शोक निन्द्या आदि अनुभाव की श्रेणी में आते हैं। तदनुसार निर्वेद, स्मृति, विषाद, मरण, व्याधि, रसानि आदि उंचारी भाव होते हैं।

परमानन्दसागर में कहण इस वर्णन

“परमानन्द सागर” के अन्तर्गत इस विवेचन की कोई द्वितीयोक्ति एवं पूर्व नियोजित योजना इस रूप में दिनाई नहीं देता है,

१- इष्टनाशवनिष्टाशेः कहणात्प्यौ रसौ भवेत् ।

- साहित्यदर्पण ३, २२२

२- विप्रलम्भे रतिः स्थायी पुनः संयोगहेतुकः ॥

- साहित्यदर्पण ३, २२६

क्योंकि पदों की रचना का उद्देश्य कवि द्वारा लीला गायन ही था । यही कारण है कि कवि के पदों में इस योजना का कोई व्यवस्थित रूप न होकर अल्पवद्ध रूप से रसों का विवेचन उपलब्ध होता है। जहाँ तक रसों का प्रश्न है कवि की इस रचना में प्रायः सभी रसों का न्यूनाधिक रूप में सुन्दर परि-  
पाक हुआ है, परन्तु प्रसुप्तः कवि का ध्यान शृंगार रस पर ही केन्द्रित रहा है।

यही कारण है कि सागर के कतिपय स्थलों के वृत्तान्त ही हमें कुरुण रस के दर्शन होते हैं। परमानन्द सागर के वृत्तान्त कुरुण रस का पूर्ण विकास हमें 'मयुरागमन प्रसंग' के पदों में देखने को मिलता है। इन पदों में कवि ने यशोदा, प्रोक्कृष्ण के माध्यम से इस प्रकार के भाव भी निवेदन किये हैं । जिनसे मातृ यशोदा के स्नेहमयी हृदय की पार्थिवता का फल चलता है। उसी प्रकार की एक पार्थिव द्रवित्ववित्त के विन का संविधान कवि के शब्दों में इस प्रकार से हुआ है :

गोपाले मधुवन जिन से जाउ ।

पीछे प्रतीति कंस की नाहीं सोम वंश की राउ ॥

तुम कूरु की के बेटा कति कृतीन मति धीर ।

बैठत एसा एकल राजन की मानस ही पर दीर ॥

बहिन देवकी मरुषेव सुजा उनको दोनो चाउ ।

यासक एते निगदु में राते काराग्रह में बाउ ॥

कहत यशोदा हुन सुकलकुलु हरि मेरे प्राण आधार ।

परमानन्द पास की जीवनि लीहि जाऊ रहि बार ॥ १



### रस विवेचन

उपर्युक्त प्रसंग में कवि ने यशोदा की 'वाच्य' रूप में और श्रीकृष्ण को वातमय रूप में उपस्थित किया है। वनिष्ट प्राप्ति के रूप में यशोदा के हृदय में उद्बुद्ध होने वाला पुनवत् स्नेह तथा कंस द्वारा कृष्ण के वनिष्ट होने की वार्त्ता ही 'शोक' स्थायी भाव है। पद की अन्तिम पंक्ति से दूसरी पंक्ति के अन्तिम शब्द 'हरि' और 'प्राण' आधार 'से' यशोदा के हृदय में कृष्ण के प्रतिस्नेह, गुण, चिन्तन आदि के भावों की प्रतीति होती है जो कि उदीप्त विभाव के परिचायक हैं। श्रीकृष्ण के जीवन रक्षा के कारण पाता यशोदा के हृदयगत विदनात्मक भावों की कल्पना की जा सकती है जिसे अनुभाव की प्रतीति संभव है। कंस के कृत्याचारों से भय पीत होकर कृष्ण के जीवनरक्षा की मातृ हृदय की चिन्तित होना भी स्वाभाविक होता है। अतः चिन्ता ईश्वरी भाव ही प्रतीत होता है। इस प्रकार उक्त पद में सम्पूर्ण रस सामग्री से परिपुष्ट होकर 'करुण' रस का ही परिपाक दृष्टिगत होता है। सम्पूर्ण 'परमानन्द सागर' के अध्ययन से हम निष्कर्ष स्वल्प यह कह सकते हैं कि करुण रस की जैसी मार्फिक अभिव्यक्ति हमें 'मथुरागम्य प्रसंग' के अन्तर्गत उपलब्ध होती है उस प्रकार को अन्य रसनाओं में नहीं मिलती।

देखी माँह कान्ह बटाऊ से रहे जात ।

तब को प्रीति अब को रुसाई फिर पाछे झुझत नहीं बात ।

एध बाबू भये बल कैंसी से देखी बिपल धुजा फहरात ।

दीऊ बोर चले बलि वातुर कहाँ भसहिनि वासु की रात ॥

मधुवन बाबू महा पीतल रस सब कीऊ गावत हैं गीत ।

परमानन्द प्रभु चलै हैं दिसावत वधो जल पुनीत ॥ ९

### रस विवेचन

प्रस्तुत प्रसंग में कवि ने श्रीकृष्ण के मयुरागमन के लिए रथ में आरुढ़ होने के समय का मनोहर चित्र उपस्थित किया है। उसी समय एक गोपी का मार्मिक एवं संवेदनात्मक चित्र भी हमारे समक्ष आ जाता है जिसके हृदय में अपने दृष्ट के वरित होने की वारंवार उत्पन्न होने लगती है। संपूर्ण पद में चतुर्थ पंक्ति को 'क रुण' रस का रहस्योद्घाटन करने में सक्षम दिखाई देती है। परन्तु पद की प्रथम पंक्ति के शब्दों से ही क रुण रस द्वारा प्रभावित होने लगती है जबकि गोपी अपने क रुण कंठ से कहती दिखाई देती है 'देखी मार्ग कान्ह बटाऊ से रहे बात।' स्पष्ट है कि गोपी 'वाच्य' रूप तथा श्रीकृष्ण की बटाऊ रूप की स्थिति बालम्बन रूप में वर्णित है। श्रीकृष्ण की बटाऊ जैसी घन पुष्पा ही उदीमा विभाव के रूप में प्रतीत होती है। पद की चतुर्थ पंक्ति 'दीऊ नीर चले बति आतुर कहाँ बसहिं बासु की रात' से वाच्य के हृदय में दृष्ट (कृष्ण) के वरित की वारंवार उत्पन्न करती हुई प्रतीत होती है जिससे 'लोक' के भावका अनुभव होता है, यही 'शोक' का भाव स्थायी भाव कहा जा सकता है। गोपी हृदय में उस बात की चिन्ता है कि कहाँ उसके लक्ष्य का रात में कोई वरित न हो जाय। तब: 'चिन्ता' संनारी भाव संभव है। पद की प्रथम पंक्ति पद के उपर्युक्त वर्णन भाव को श्रीकृष्ण के मयुरन पहुँचने पर पहलमंल में परिणत कर देती है। उपक्रम पर चिन्तास से प्रेम नीर विजय भावों की व्यञ्जा का बोध होता है, परन्तु पद की प्रथम चार पंक्तियों में पूर्ण रूपेण क रुण रस की व्यञ्जा होती हुई अवश्य प्रतीत होती है।

### रीढ़ रस : एक वैदिकान्तिक विवेचन

नाट्यशास्त्र के प्रणीता भरतमुनि ने 'रीढ़ रस' को प्रमुखः प्रथम चार रसों में स्थान दिया है। उन्होंने रसों की उत्पत्ति के विषय में तथा उनका स्थान निश्चित करते हुए इस प्रकार लिखा है। सर्वप्रथम रङ्गार, रीढ़, वीर वीर वीभत्स इन चार रसों की उत्पत्ति हुई। इसके पश्चात् रङ्गार से हास्य रीढ़ से करुणा, वीर से वदुत्त वीर वीभत्स से भयानक रस पैदा हुए। इनके बागि शान्त रस तथा वात्सल्य रस भी स्वीकार कर रसों की संख्या चार से नौ ब्यवा दस तक पहुँच गयी। रसों की संख्या उनकी स्थिति उनके पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में विस्तृत रूप से विवेचन किया है। यहाँ हम जब अपने अभीष्ट रीढ़ रस के परिपोषक भाव तत्त्वों से परिचित होना चाहेंगे।

मानव- मन जैक भावों का एक विशाल कोश है। इस कोश के अन्तर्गत जैक भाव घुंघुप्तावस्था की अवस्थिति में विद्यमान रहते हैं जो कि अनुकूल वातावरण पाकर रस रूप में प्रस्फुरित हो जाते हैं। इस प्रकार रति, उत्साह, स्नेह आदि मनीभावों की भाँति क्रोध का भाव भी मन की केंद्रीय स्थिति में विद्यमान रहता है परन्तु ऐसा कि हमने अभी ऊपर की ध्वनि में व्यक्त किया है कि इस स्थिति में वह मनीभाव अपने अनुकूल वातावरण में ही संभव होता है। अतः रीढ़ रस के बारे में भी यही बात देखने को मिलती है। इसका प्रत्यक्षीकरण हमें उस समय होता है जब हमें किसी प्रतिद्वन्द्वी ब्यक्ता प्रतिपक्षी, दुराचारी ब्यक्ता बफकारी व्यक्ति की दुष्कृत्याओं से सामना करना पड़ता है। विशेषतः उस दुष्ट व्यक्ति का क्रोध ही इसका मूलधार होता है। वीर क्रोध ही स्थायी भाव के रूप में रीढ़ रस की अनुपत्ति कराता है। इस प्रकार तब इसका बालम्बन रूप में

होता है। उसके अपमानशुक्ल वाक्य ही उद्दीप्त का काम करते हैं, पृष्ठटियों की प्रकृता , कूर , दृश्य, स्वतामि नेत्र कुभाव के प्रतीक होते हैं। गर्व , अपमान , उग्रता, चपलता , मद एवं क्रुधा आदि संघाती भाव होते दिखायी देते हैं। रौद्र तथा वीर दोनों रसों के संघाती भावों प्रायः समान होते हैं, परन्तु इन दोनों रसों के स्थायी भावों ( शोध, उत्साह ) के कारण प्रकृता का ज्ञान ही जाता है।

### परमानन्दसागर में रौद्र रस वर्णन

परमानन्दसागर में बहुत कम स्थल ऐसे हैं जहाँ रौद्र रस का वर्णन मिलता है। रौद्र रस का एक पद निम्न प्रकार द्रष्टव्य है :

काहे की मारग में बध वेदत ।  
 नंदराह की माती साथी आवत कुर लपेटत ॥  
 कस्त गुवाल सब सला नंद के गल गरक्त भुष ठीकत ।  
 कंस वंस की परिकित करि है कान महीसे रोकत ॥  
 नाखिन सुनी ? पूतना मारी तुनावत बध कैसी ।  
 परमानन्ददास की ठाकुर ये कीपाल पीसी ॥ १

### रस विवेचन

प्रस्तुत पद में वीरकृष्ण के मधुराश्रित का परिचय मिलता है। वीरकृष्ण को वाञ्छितवन्धु भाव मणिमाली का नन्द के सभी साथी गण वर्णन करते प्रतीत होते हैं। कवि ने कृष्ण की नंद का बलिष्ठ एवं मस्त

हाथों से उपमा दी है जो कि पद पस्त होकर ज़ुरी को रीदता हुआ चला जा रहा है।

इस प्रकार श्रीकृष्ण का ज़ुरी का संहार करते समय के क्रोध से रीढ़ उस के स्थायी भाव क्रोध की प्रतीति होती है। कंस उचित उसके वंस के सभी दुष्ट जन बालम्बन विभाव है तथा इसके 'बाध्य' प्रतीक एक मान श्रीकृष्ण ही हैं। कंस के दैत्यमयी कृत्य सब उसकी समस्त अमानवीय गतिविधियाँ उद्घोष के रूप में दृष्टिगत होती हैं। दुष्टों के पक्ष के समय श्रीकृष्ण की भाषा मणिमार ( गरजना , बाधित जन्य मुखाकृति, भुषावों को ठोकना ) बादि अनुभाव के रूप में कहे जा सकते हैं। पद में 'बाधत कुर लपेटत ' शब्दावली कार्य की तात्परता का प्रतीक होती हुई प्रतीत होती है जिसे उग्रता, चपलता, गर्व बादि संनारी भावों की प्रतीति होती है।

वीर रस : एक वैदिक विवेक

वाचार्थों ने वीर रस का स्थान प्रधान रसियों में निश्चित किया है। मानसिक वृत्तियों में इसका सम्बन्ध मुख्यता से है। मानवीय मन में कठोर वीर साहसपूर्ण कार्यों के करने के लिए जो सहज वीर्यवय ( उत्साह ) दिखाई देता है, वही वीर रस का स्थायी भाव माना जाता है। उत्साहपूर्ण कार्यों में मानव का ऐश्वर्य , यह साहसिक कार्य वीर सभी लड़ा हुआ प्रति पक्षी बादि ही इस रस के बालम्बन विभाव के रूप में होते हैं। प्रतिपक्षी को युद्ध प्रेरक उत्साह युद्ध मेरी एवं तत्सम्बन्धी प्रदर्शन बादि उद्घोष का कार्य करते हैं। वीरों की रचितम वाचा, बाधितजन्य

रोमांच, बान्दोहन एवं प्रकार बादि अनुभाव के रूप में देखे जाते हैं। इसके साथ मति, गर्व, धृति, उग्रतादि संज्ञाही भाव होते हैं।

विश्वनाथ ने रौद्र तथा वीर रस की विभिन्नता पर अपनी विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि रौद्र रस का वर्ण रक्त है तो वीर का ह्वे, रौद्र का देवता रुद्र है तो वीर का महेन्द्र । किन्तु वर्ण तथा देवताओं के बारे में उनकी यह विचारधारा कवि शास्त्रीय परम्परागत ही है। इसके अतिरिक्त रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है जो कि स्थिर रहता है, सुदोत्साह की वीर व्यंजना नहीं होता है।

वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। रस रस में क्रोध उत्पन्न होकर सुदोत्साह की वीर व्यंजना ही जाता है, स्थिर नहीं रहता । उत्साह प्रधान तथा क्रोध गौण रूप में होता है। क्रोध तो क्षम संज्ञाही भाव के रूप में रहता है तथा क्रोध की 'वर्ण' संज्ञाही भाव की संज्ञा भी दी जा सकती है।

रौद्र रस के स्थायी भाव 'क्रोध' वीर वीर रस के संज्ञाही भाव 'क्रोध' में भेद होता है। रौद्र रस के अन्तर्गत क्रोध पाशविक रूप में वीर वीर रस में क्रोध भावात्मकरूप में दिसाई देता है। पाशविक क्रोध के आवेश में क्रोधी की स्थिति बाध से बाहर ही जाती है, जबकि भावात्मक क्रोध के अन्तर्गत मनुष्य सुदोत्साह प्रसन्न चित्, हित, अहित के ज्ञान के परिचित अवस्था में दितायी देता है।

रौद्र रस में क्रोध अपनी ही निर्बल तथा लीन व्यंजना पर भी जा जाता है परन्तु वीर रस में क्रोध अपनी बराबरी के तथा

वफो के सभित्तगाली पर बाता हुआ दिलाई देता है।

श्रीधर रजोगुण प्रभुत होता है, परन्तु उत्साह सत्त्वगुण प्रभुत होता है। श्रीधर में मनुष्य विवेक रहित और उत्साह में विवेक विद्यमान रहता है। श्रीधर व्यक्ति प्रति क्रियावादी भावना से जीत प्रीत रहता है जबकि वीरता के अवशिष्ट पूर्ण मनुष्य में यह भावना नहीं देखी जाती। श्रीधर मनुष्य अवशिष्ट में जाकर न्याय करने के लिए तत्पर हो जाता है, इसके विपरीत वीर पुरुष न्यायगामी हो रहता है। श्रीधर मनुष्य रजु से मय्यीत भी हो सकता है। परन्तु वीर पुरुष कभी भी मय्यीत नहीं होता। श्रीधर पुरुष में बौद्धिक क्रियावी ( उक्त कृत ) तथा वाक्विक क्रियावी ( डींग मारता ) आदि का प्रदर्शन दिलाई देता है, इन क्रियावी का वीर पुरुष में अभाव हो रहता है। श्रीधर मनुष्य का मुल रक्तिमा से तमस्तमा उठता है, मुँह से झगड़ कादि भी निकलने लगते हैं, परन्तु वीर पुरुष का मुल रक्तिमा से जीवस्थी तथा कामापय विवेकपूर्ण प्रतीत होता है।

रौद्र एवं वीर रसों के छे वैषम्यता के साथ ही विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में इनके छे साम्य पर प्रकाश डाला है। दोनों रसों के रजु पक्ष बालम्बन हैं। दोनों रसों में रजुओं की चेष्टाएँ ही उद्दीपन विभाव हैं। अनुभावमी प्रायः एक जैसे ही होते हैं। हस्ती की उठाना रजु की ललकारना, घु विमंग , बाहु रफोटन, तर्जन, गर्जन, मुल तथा नेत्रों का लाल हो जाना आदि अनुभाव समान होते हैं। धृति, मति, गर्व, स्मृति, तर्क, रोमांच, उग्रता, क्षमर्ष, आवेग, चापल्य आदि संनारी भाव दोनों में

१- काम रस श्रीधर रस रजोगुणसमुद्भवः । श्रीमद्भगवद्गीता ३. ३७

२- रौद्र बालम्बनमरिस्तन ॥ सा० प० ३. २२

वीर बालम्बनविभावास्तु विवेकव्यावयीमताः ॥

- सा० दर्पण ३. २३३

समान ही रहते हैं। किन्तु स्थायी भाव दोनों के भिन्न होते हैं।

विश्वनाथ के उपर्युक्त दोनों प्रकार के ( साम्य-  
वैषम्य ) विवेचना से निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि दोनों एक अपनी  
अपनी पुष्क पुष्क स्थिति रहते हैं, क्योंकि एक की स्थिति का मूलधार स्थायी  
भाव होता है जो कि दोनों स्वी के पुष्क ही है। अतः दोनों स्वी का एक  
दूसरे में अन्तर्भाव होने का कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता है।

### परमानन्दसागर में बीर एक वर्णन

‘ परमानन्द सागर ’ के अन्तर्गत बीर एक की  
व्यवस्थिति ‘ गौवर्धन तोता ’, ‘ परमानन्द ’ एवं ‘ गणेश प्रवेश ’ के पदों  
में करने की प्रवृत्ति है। श्रीकृष्ण के वीरता पूर्ण कृत्यों से सम्बन्धित पदों  
के अन्तर्गत ही विशेषतः बीर एक के दर्शन होते हैं। इसी वीरतापूर्ण कार्य  
से सम्बन्धित एक पद ‘ गौवर्धन तोता ’ के पद से उद्धृत है :

नन्द गौवर्धन पूजा बाबा

जाते गौप गुहात गौफिका सुखी खनन की राव ॥

जाकी रुनि रुनि बलिहि बनावत कहा छु छी काज ।

गिरि के बल बंटे लपे घर कोटि छन्द पर गाव ॥

भरो कव्यो मान अब लीजे परसर सकटन साव ।

परमानन्द जानके अपन कृपा करत कित नाव ॥ १

### एक विवेचन

उपर्युक्त पद श्रीकृष्ण के वीरतापूर्ण कृत्य (गौवर्धन



धारण ) द्वारा ब्रज वासिनीयों के लिए एक उत्साहपूर्ण वातावरण का सृजन करता हुआ प्रतीत होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण पद रचना "उत्साह" स्थायी भाव पर आधारित और इस का उद्घाटन करने में पूर्णतया सक्षम है। इसके आन्तरिक प्रकाशों तथा आलम्बन के प्रतीक, श्रीकृष्ण के साहसिक कार्य ( गीर्वाण धारण ) तथा ब्रज वासिनीयों की अतिसय वृष्टि से सुरक्षा कार्य करने से सिद्ध होती है। छन्द का कोष ( वृत्ति वृष्टि ) करने से उद्दीप्त विभाव की कल्पना की जा सकती है। छन्द के असहनीय व्यवहार से ब्रज-वासिनीयों तथा श्रीकृष्ण का आवेशमय होना स्वाभाविक है। अतः यहाँ "आवेश" ही अनुभाव के रूप में दृष्टिगत होता है। "मति" अज्ञात ही संवारी भाव है।

चिरजीवी सात गीर्वाण धारी ।

सात गीर्वाण कल वृद्धि निवारी या डोटा पर वारी ॥

देवराज परतिग्या पैरी गीर्वाण भल लीला अवतारी ॥

नल कुंवर मनिग्रीव उवारी बालक दसा पूजना मारी ।

पैत क्लीष सकल गीर्वाण पद राज करी वृन्दावन चारी ॥

परमानन्ददास की ठाकुर अनुदिन बारति हस्त हमारी ॥१

रस विवेचन

प्रस्तुत पद "परमानन्द सागर" के "छन्दमान मंग" के पदों से उद्धृत "उत्साह", स्थायी भाव पर आधारित और इस का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। श्रीकृष्ण द्वारा सात दिन तक गीर्वाण धारण करके, छन्द का पान मंग करना नल, कुंवर, मनिग्रीव का उद्धार करना तथा बाल्यावस्था में ही पूजना का वध आदि साहसिक कार्य आलम्बन

विभाव के रूप में वर्णित है। छन्द का गर्व तथा वृत्ति वृष्टि ही उदीप्त विभाव के रूप में है। श्रीकृष्ण के प्रतिक्रिया स्वरूपाविलम्ब रूप से आवेश अनुभाव की कल्पना की जा सकती है। पति उग्रतादि संवारी भावों के स्त्रीकों की कल्पना श्रीकृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण की रत्नात्मक छन्द के आधार पर की जा सकती है।

महाकल कीनी है ब्रजनाथ ।

स्त प्रसी उत गोपिनी ही रति स्त गोवर्धन हाथ ॥

उत वात्सल्य पय पान करावत स्त दुग्धी कुन सात ।

उतहि चरत बइरा कपे स्त ग्यात बजावत पात ।

कौण्डी छन्द महाप्रलय की भर लायी दिन सात ।

परमानन्द प्रभु राति लियो ब्रज पैटि छन्द की पात ॥ १

रस-विवेचन

उपर्युक्त पद रचना में कवि ने श्रीकृष्ण के यश, शौर्य, वीर एवं पराक्रमी रूप के मनीषाही चित्रण के साथ साथ प्रणय व्यापार वातावरण की एक अनुपम मन्त्रिणी भी प्रस्तुत की है। इस प्रकार पद रचना में श्रीकृष्ण दो रूपों में देखी में आते हैं एक तो उनका वीर रूप वीर दूसरा उनका शृंगारी रूप है। इन दोनों प्रकार के वर्णनों से पद रचना में दोनों रसों ( वीर + शृंगार रस ) के समन्वित रूप के दर्शन ही आते हैं जिसमें कवि की विशिष्ट काव्य प्रतिभा झलकती है।

१- परमानन्दसागर पृ० ६७ पद २८ छन्दमान मंग पद

यस में निहित वीर रस के विन्यास से स्पष्ट होता है कि इस की प्रथम पंक्ति ही वीर रस का रहस्योद्घाटन करने में सक्षम प्रतीत होती है जो कि श्रीकृष्ण के बान्धवित्व उत्साह की परिचायक है। यह उत्साह ही स्थायी भाव है जिसके आधार पर श्रीकृष्ण हन्द्र के महाप्रलय जनक कोप ( अति वृष्टि ) से अपने एक ही हाथ पर गीवर्धन पर्वत को धारण कर ब्रज जनों को रक्षा करती है। हन्द्र का कोप उदोषा विषाद के अन्तर्गत जाता है। हन्द्र के कोप के कारण श्रीकृष्ण के आविष्टमय होने की कल्पना की जा सकती है। अतः आविष्ट कृपाव की ही परिकल्पना संभव प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त वीरसुख, मति संचारी भावों की प्रतीति होती है।

जीत्यों ही जीत्यों मन्दनन्दन ज्योम दयामि बाजे ।  
 बरसत हृष्टम देवगत गावत रितु वरणा ज्यों गाजे ॥  
 नाचत ग्वाल बजावत मुखी रंग भूमि में राजे ।  
 मत्त पहारि बंस छिर तौर्यों नीतन भुजन छाजे ॥  
 तबहु हम बानन्दमें रही मदन गोपाल निवाजे ।  
 परमानन्द प्रभु गोधन बारत होतत कानन भाजे ॥ १

### रस विवेचन

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने लौकिक वीर अलौकिक उपमानों की उपस्थिति के परिधि में श्रीकृष्ण के वीरतापूर्ण कृत्यों की एक कृपण भावों का विन्दन किया है। श्रीकृष्ण द्वारा महा अतिशयोक्ति भावों के बंध है उनका उत्साह स्पष्टतः संचित होता है, जिसे हम

बीर रस के स्थायी भाव के रूप में मानते हैं। परीक्षा रूप में यहाँ शूर कंस के शूरतापुत्रक कार्यों से ही उद्दीप्त विभाव की कल्पना व्यपन्नित है। श्रीकृष्ण द्वारा कंस का गिर तोड़े जाने से चारों बीर हर्षोल्लास हो जाता है।  
 कतः यहाँ बोझापूर्ण कार्य बालम्बन विभाव के प्रतीक हैं। कंस वध के समय श्रीकृष्ण की आवेशपयी रूप की कल्पना से हमें आवेश अनुभाव की प्रतीति होती है। दुष्ट कंस के वध के पश्चात् हर्ष उत्साह आदि से हम हर्ष, उत्साह आदि संचारी भावों की दृष्टा प्रतीति होती है।

#### परमानन्द सागर में संचारी भावों का प्रयोग

परमानन्द सागर में 'रस विविधन' के अन्तर्गत स्थायी भावों पर बहुत अधिक जोर रस किस प्रकार वास्वाद्य हो जाता है, स्पष्ट कर चुके हैं, साथ ही सागर में बहिराङ्गि उपलब्ध रसों के विषय में विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा चुका है। सागर की इस स्वात्मक प्रक्रिया का परिचय देते हुए हमने कतिपय संचारियों के संस्कारण की बीर की संकेत प्रस्तुत किये हैं। परन्तु 'परमानन्द सागर' में उपलब्ध संचारी भावों की दृष्टा से परिचित होने के सम्बन्ध में केवल संकेत मात्र प्रस्तुतीकरण व्यपन्नित हो प्रतीत होता है। क्योंकि 'सागर' के अन्तर्गत कवि ने कतिपय पदों के अन्तर्गत बाल कृष्ण, माता यशोदा, गीप-गीपियों एवं सम्पूर्ण ब्रजवासियों के वह अनुपम एवं मनीषारी चित्र खींचे हैं जिनसे मानव की विशिष्ट भावात्मक सेवा के अन्तर्गत हमें उनके संचारियों की एक दृष्टा का प्रसारण होता दिखायी पड़ता है। जो कि कवि की सूक्ष्म एवं गहन प्रज्ञात्मक शक्ति का परिचायक हो खिद्य होता है। कवि की इन संचारी

भावों की विशेषता हमें इस तथ्य में दृष्टिगत होती है कि कवि ने अपने भावों की स्पष्ट व्यंजना करने में तत्सम्बन्धित संचारियों के स्वाभाविक परिवेश में किञ्चित् मात्र भी भाव शैथिल्य के दर्शन नहीं होते हैं। कवि की रचनान्तर्गत स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, उद्दीप्त विभाव आदि के साथ इन संचारी भावों का पूर्णरूपेण तादात्म्य दिखाई देता है।

‘परमानन्द सागर’ की विशालता एवं गहनता के अन्तर्गत हम कवि के प्रसृत रूप से व्यंजित होने वाले कतिपय संचारी भावों के उदाहरण भी प्रस्तुत करना उचित सम्झते हैं जो कि संभव हैं। सर्वप्रथम शृंगार रस की सरस जेता में ‘वीत्सुभय’ संचारी भाव की कटा निम्नांकित पद में दर्शनीय है।

#### वीत्सुभय संचारी भाव

राधा पाधो सौं रति बाढ़ो ।

जितवति जहाँ तहाँ नन्दनन्दन सब तौं लियौ मन काढ़ो ॥

एक बीस जुना मज्जन करि निकसि तीर भईं ठाढ़ो ।

सुकवति बार बार कर धिर धरि कही है कँचुकी नाढ़ो ॥

स्याम नवल कनक चँफू तत नागरि मनसिब ठाढ़ो ।

जाहति मिल्यो प्रात प्यारे को परमानन्द गुन बाढ़ो ॥१

निम्नलिखित पद में ‘स्तम्भ’ संचारी भाव

का सौन्दर्य द्रष्टव्य है।

#### स्तम्भ संचारी भाव

कवि ने श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य को देखकर राधा

की सम्मिश्रित दशा का मनीहारी वर्णन स्वामाधिक पृच्छमुनि में किया है।  
क्या-

वति रति स्याम सुन्दर सौ बाढ़ी ।  
देति सख्य गीपास लाल कौ रही छी छी ठाढ़ी ॥  
घर नहिं नाइ पिय नहिं गति पतति वतति गति थाकी ।  
हरि ज्यौ हरि को मनु वीषति काम सुगुधि पति ताकी ॥  
नैनहि नैन मिले मन बहभूयो यह नागरि बह नागर ।  
परमानन्द बीच छी जन में बात तु भई उबागर ॥ १

हर्ष, स्मृति, प्रेम आदि संचारी भाव का  
सम्मिश्रित शीन्दर्य प्रजनारियों के माध्यम से निम्नांकित पंक्तियों में किता  
सबोध वर्णन है। क्या-

राधे बैठी तिलक संचारति ।  
मृगतयो कृष्णमाशुष के उर सुमग नंद सुत रूप विचारति ॥  
दरफ हाथ सिंगार आवात बासर बाम जुगति यौ डारति ।  
वन्तर प्रीति स्याम सुन्दर सौ प्रथम समागम कैलि संचारति ॥  
बासर गत रज्जी प्रम आगत मिलत लाल गीवर्धन धारी ।  
परमानन्द स्वामी के संगम रति रस मगन मुदित बजारी ॥ २

बालक श्रीकृष्ण की चंचलता पूर्ण क्रिया-कलापों  
के वातावरण में 'नापत्य' सज्जायुक्त संचारी भावों का निम्नीकृत  
उदाहरण द्रष्टव्य है :

१- परमानन्द सागर पृ० १२५ पद सं० ३६७

२- .. पृ० १२६ पद ३७१

बावत हुती चकिरी लीरि ।  
 दोऊ हाथ पठारि ऐ हरि ही बास सजाइ रही मुखोरि ॥  
 बालक ही अब कहा कहुँ सही लीनी दोहनी हाथ मरीरि ।  
 ऐसी चपल कठोली ठोटा पाज्यो वहरि पटुनिया कौरि ॥  
 कहि प्रकार कटपटो बलिया बलिया हार लियौ मेरी तोरि ।  
 ताकी सासि" दास परमानन्द " ऊं दुख साह सहे लसि कौरि ॥

वर्ण संचारी भाव सुख कृष्ण दृश्य का प्रकार है :

हरि भू के बावत कीबलिलारी ।  
 वासर गति देखत ही ठाढ़ी प्रेम मुक्ति अजारी ।  
 रित वसन्त कुसुमि वन देखित पक्ष्म वृन्द जस गावै ।  
 परमानन्द स्वामी रित कास अहमति नंद सनेह ॥ २

परमानन्द के परिवेश में " हास्य " संचारी  
 भाव की द्वितीय उदाहरण का आभास यह द्रष्टव्य है :

बानन्द की निधि नंद कुमार ।  
 प्राट ब्रह्म नर मेघ नराकृत जगदीश्वर लीला अवतार ।  
 लेखत लेखत कृतज्ञ बानन्द राधापति वृन्दावन लीद ॥  
 सुक मुनि वानंद भक्तन वानंद निधि दिन वानंद विलास ।  
 चरन कमल अनुहस्त निरन्तर बलि वानंद परमानन्ददास ॥

१- परमानन्दसागर पृ० १२७ पद ३७३

२- .. पृ० १३१ पद ३८६

३- .. पृ० १० पद सं० २६

‘ वीरचुम्बय ’ एवं ‘ उन्माद ’ रीतारी भावों का एक संश्लिष्ट और सजीव चित्रण निम्नीकृत पंक्तियों में कवि ने कितने सौन्दर्य के साथ किया है :

घर घर ग्वाल घेत है ऐरी ।  
 बाजत लाल मुँहग बासुरी ढोल बमामा मेरी ॥  
 छूटत कपटत सात मिठाई कहि न सकत कोऊ फेरी ।  
 उन्माद ग्वाल करत कोलाहल ब्रज बनिता सब ऐरी ॥  
 धुना फाका चौत माता सब सिंगारी ऐरी ।  
 जय जय कृष्ण कहत ‘ परमानन्द ’ प्रबट्याई कंस की ऐरी ॥१

‘ हर्ष ’ ‘ रीतारी भाव को एक अनुपम भाँकी कृष्ण जन्म के समय की चित्रित करती हुई दर्शनीय है :

‘ नंद झ तुम्हारे जायी फूत ।  
 लोलि भँडार अब देहु कथाई तुम्हारे भागि अनुत ।  
 ० ०  
 विप्र सब मिलि करत जेव ध्वनि हरिल्लि मंगल गाये ।  
 सब दुल हूरि गये ‘ परमानन्द ’ जानन्द प्रेम बढ़ाये ॥ २

वम, बावेग, उग्रता रीतारी भावों से क्लृप्त निम्नीकृत भाँकी की कटा सिखती फनीतारी है :

तेरी रो लाल मेरी मातु लायी ।  
 मेरी दुखारी सब छुनी घर डँडोरि अब ही उठि धायी ॥



होति किवार कोसि मंदिर दुध दह्यो सब तरफन लागी ।  
 होके ते कादि , सार चदि मोहन कहु लागी कहु भु दखावी ॥  
 नित प्रीति हरति कहां लीं सहिर यह डोटा ऐसै डंग लागी ।  
 परमानन्द रानी तुम बखी पूत कौसी तैं हो जायी ॥ १

‘ चापल्य ’ और ‘ कीर्तुव्य ’ युक्त संजारी भाव को  
 एक कौसी कटा इस प्रकार है :

‘ बखति काहे तैं नहीं ।  
 हानि होति नित प्रीति की बातें कीं लीं परति सही ।  
 मालन लाई दुध गहि डोरे लेफत जेग दही ।  
 ता पाई जो घर के लरिकुन भाऊ झिरफ मही ॥  
 जो कहु दुराज धरी दुरि की जानत सही तही ।  
 कहा बखाय तुम्हारे सुत शीं सब पचि छार रही ॥  
 नमल चपल चोर चिन्तामनि मोहन कथान परति कहो ।  
 ‘ परमानन्द ’ स्वामी उरखन के फिस मिसन कीं डुंढि रहो ॥ २

‘ वितर्कता मूढा ’ संजारी भाव का दूसरा एक प्रकार  
 है विवक्षित किया है :

यस हरि के उर की गज पीती ।  
 चन्द्रावली कहां ते पायी दुरि कस्त विनमनि की ओती ॥  
 डीठ महं पछिरे तन डीसति कुंभ ते कहा कहा उतर देही ।  
 मुलि भवन कि बाहु नंद के निरलि छिदाइ जगोदा लेही ॥  
 कषट्ठ तो नृप कैस जोष तुही मै दधि के फली है पायी ।  
 जो न पत्थाहु तो सपय के कुनहु परमानन्द ता दिन ऐग जायी ॥ ३

१- परमानन्द सागर पृ० ४६ पद १४७

२- .. पृ० ४८ पद १४४

३- .. पृ० १३६ पद ४१२

‘ चिन्ता ’ एवं ‘ स्मृति ’ पीछे संचारी के बीच मर्म स्पर्शी एक  
फलक निम्नलिखित पा में द्रष्टव्य है १

जब है प्रीति स्याम सौ कीसी ।  
ता दिन हैं मेरे झन नैननि ने कहू नौद न सीनी ।  
सदा रहति किंतु जाक चढ़यो सौ और न कहू सुहाय ।  
मन में कृत उपाय मिलन की छै विचारत जाय ॥  
परमानन्द प्रभु पीर प्रेम की काहु सौ नहि कहिए ।  
जैसे कथा मूक बालक की वपौ तन मन सहिए ॥ १

‘ चिन्ता ’, ‘ स्मृति ’, आत्सुक्य तावि संचारियों से  
सुसज्जित निम्नलिखित कि द्रष्टव्य है :

पारु कपोलन की भलक ।  
हरि की मुल कमल जैसे लागति नहीं फलक ॥  
कृम कृम की तिलक बन्यो कुटिल निबड़ ललक ।  
पीर लुहट चन्द्रिका बीच पे मनसिज की डलक ॥  
स्याम सुन्दर देहन की बाकत पिय ललक ।  
‘ परमानन्द स्वामी ’ गोपाल नैनन के उलक ॥ २

‘ प्रेम ’, ‘ चिन्ता ’, एवं ‘ पीर ’ युक्त संचारी मार्गों का एक उत्कृष्ट व्यंजनात्मक  
चित्र द्रष्टव्य है :

ग्यालिनि कमनी सी ठाढ़ी ।  
दाहन पीर विरह की बाढ़ी मदन गोपाल जैसे झाड़ी ॥

वही रसिफिनि रही सयानी बिहि सनेह प्रभु ते बायो ।  
 नैक छुटाव कहु कियो माधी सौ हस्तहि कियो जापुनी पायो ।  
 बलि सलो जाइ दूढहि बन बन बरन कमल के के निन्यारि ।  
 भुजा बड केस जब रला कहाँ दुरहिनि कान्तर प्यारे ॥  
 लोचन सख्त प्रेम बलि जातुर सुते अधर बंद मुस गो घटि ।  
 परमानन्द विरहिनी हरि की पिउ पिउ करत ज्ञाथ रहो लटि ॥१

\* स्मृति, निन्ता और मोह युक्त संचारी भावों का समन्वित एवं मार्मिक चित्रण का साक्षात् इस प्रकार है :

कियौ ज्ञाथ के नाथहि ।  
 स्वाम मनोहर सब चाहति हैं बहुरि तुम्हारी सागहि ॥  
 बार बार विरिहिनि ब्रज वनिता सुमिल हैं गुन गाथहि ।  
 मुसो अधर लोल कर पल्लव ध्यान करौ बोही सागहि ।  
 लोचन सख्त प्रेम विहातुर पुनि पुनि फोरति माथहि ।  
 परमानन्द मितन बहुरि कब हस्ति निहारति पाथहि ॥२

\* प्रथम एवं द्वितीय, उत्कंठा वादि संचारी भावों के संश्लिष्ट संचरण का चित्रण निम्न पंक्तियों में कितना मनोहारी है, जिसके अन्तर्गत लौकिक पर्यावा के अतिक्रमण की भी व्यंजना की गयी है। इस प्रकार के व्यंजनात्मक निम्न परमानन्द सागर में पर्याप्त रूप से पाये जाते हैं। क्या-

तुम्हो टेर टेर में हारी ।  
 कहाँ जो रहे अवलौं मन मोहन ते ही न जाक तुम्हारी ॥  
 भूल परो आवत माग मैं क्यों हूँ मैं न पड़ो पायो ।

१- परमानन्दसागर पृ० ६५ पं २३८

२- " १८६ पं २४८

हुकत हुकत यहाँ लौं जाईं तब तुम पैतु बसायी ॥

देसी मेरे लैग की फलीना उर की जेल मीनी ।

परमानन्द श्रु " प्रीति जान है धाम जातिगन दोनी ॥ १

" चिन्ता " बीर सास्य, चास जादि संचारी भावों की भंगिमाओं है व्यक्ति निम्नोक्त पद कितना मर्मस्पर्शी है :

जब तो कहा करीं री माछी

जब हैं दिष्टि परी नन्दनन्दन फल भर रहयी न जाई ।

मोहर मात फिदा मेहि जासत जे कुल गारि लगाई ।

बाहर सबे मुल मोरि कस्त है कान्ह सनेहनि जाइ ।

निसबासर मोहि कल न परत है गृह वीना न चुवाइ ।

परमानन्ददास की ठाकुर हंसि जित लियो है चुराइ ॥ २

उपसृत संचारी भावों के अवतारणों के अध्ययन और विवेचन के हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कवि की रचना में जिन संचारी भावों का उद्घाटन हुआ है उनके प्रस्तुतीकरण की क्रिया में कवि पूर्ण पटुता रखता है। इन पदों में कवि ने राधा, बाल कृष्ण, गोपियों जादि की भाव भंगिमाओं का चित्रण अत्यन्त वाक्यार्थिक ढंग से किया है, जिससे कवि की भाव विधायिनी शक्ति एवं उसकी व्यञ्जना शैली की उत्कृष्टता का पता चलता है। बाल कृष्ण की संचारियों की कटा के अन्तर्गत कवि को हम एक बाल मनोवैज्ञानिक के रूप में पाते हैं। कवि को बालक की प्रत्यक्ष भाव भंगिमा का पूर्णतः ज्ञान है यह भाव भंगिमा सज्जित कवि को " भुरदास " के समकक्ष लाकर खड़ा कर देती है। कवि की संचारियों

१- परमानन्द सागर पृ० २२३ पद ६४०

२- " २४८ पद ७१३

की वर्णन शैली 'सूर' की वर्णन शैली से किंचित् मात्र भी पीछे  
 दिखायी नहीं देती। इस संदर्भ में डा० गोकर्ण नाथ शुक्ल ने अपने ग्रंथ  
 प्रबन्ध 'परमानन्ददास' पर संग्रह के अन्तर्गत उनकी काव्यगत विशेषता  
 में लिखा है कि 'परमानन्ददास के पद और सुरदास के पदों में कोई भिन्नता  
 नहीं है, यदि परमानन्ददास जो के पद की बेतिम पंक्ति है 'परमानन्द'  
 शब्द को हटा दिया जाय तो और सूर की बेतिम पंक्ति है 'सूर' शब्द  
 को हटा दिया जाय तो 'सूर' और 'परमानन्ददास' को रत्नाबी  
 में कोई बन्ध दिगर्भ नहीं देता है।

कवि स्वात्मक एवं भावात्मक संयोजना में क्षणा विमीर  
 हो गया है कि उसमें उसे लोक मर्यादा का भी ध्यान नहीं रहा है। किसी  
 विशेष पद में गोपियों राधा का कृष्ण के प्रति क्षणा अतुराग प्रवर्तित  
 किया है जिससे मर्यादा का अतिक्रमण हो गया है, परन्तु इस प्रकार के  
 वर्णन में भी कवि को रसज्ञता इस तथ्य को उद्घाटित करने में कुछ प्रतीत  
 होती है कि उसमें कहीं भी कृत्रिमता नहीं जाने पाये है। संगीत रस  
 सम्बन्धी संचारियों के विषय में भी कवि के संचारियों की कृता का पूर्ण  
 स्मन्दन बड़े ही स्वाभाविक ढंग में हुआ है। कवि के एक एक पद में भाव  
 उच्छु समुच्चय काशीन्दर्य दिखाई देता है, क्योंकि एक ही पद में कई कई  
 संचारियों को प्रभा के दर्शन हो जाते हैं, जिससे कवि मानवीय प्रकृति का  
 कुशल पारसो भी सिद्ध होता है।

अतः कवि को भाव व्यञ्जना, स्वात्मक व्यञ्जना एवं  
 मनोवैज्ञानिकता की पूर्ण विशिष्टताओं के आधार पर हम निःसंकोच कह  
 सकते हैं कि कवि अव्यक्तत्व अपने समकालीन कवियों में एक गौरवपूर्ण  
 अव्यक्तत्व है।

### तृतीय अध्याय

#### परमानन्द शाला में कर्तार योजना

कर्तारों की व्युत्पत्ति, उनका विनियोग तथा प्रवृत्ता ,  
 परमानन्द शाला में कर्तार योजना, परमानन्द शाला में  
 शब्दाक्षित कर्तारों का वैशिष्ट्य, कुप्राप्त कर्तार एक शास्त्रीय  
 विवेचन, कुप्राप्त कर्तार का प्रयोग , वीष्ठा कर्तार : एक  
 शास्त्रीय विवेचन, वीष्ठा कर्तार का प्रयोग, यन्त्र कर्तार एक  
 शास्त्रीय विवेचन, यन्त्र कर्तार का प्रयोग, पुनरुचित प्रकाश कर्तार,  
 एक शास्त्रीय विवेचन , पुनरुचित प्रकाश कर्तार का प्रयोग ,  
 पुनरुचित प्रकाश कर्तार का प्रयोग, परमानन्द शाला में वर्णित  
 कर्तारों का वैशिष्ट्य, उपमा कर्तार एक शास्त्रीय विवेचन, उपमा  
 कर्तार का प्रयोग, उत्प्रेक्षा कर्तार : एक शास्त्रीय विवेचन, उत्प्रेक्षा  
 कर्तार का प्रयोग, रसक कर्तार : एक शास्त्रीय विवेचन, रसक कर्तार  
 का प्रयोग , रसकतिशयोक्ति एवं अतिशयोक्ति कर्तार : एक शास्त्रीय  
 विवेचन , रसकतिशयोक्ति कर्तार का प्रयोग, अतिशयोक्ति कर्तार  
 का प्रयोग , विभावना कर्तार : एक शास्त्रीय विवेचन , विभावना  
 कर्तार का प्रयोग, अन्योक्ति कर्तार : एक शास्त्रीय विवेचन,  
 अन्योक्ति कर्तार का प्रयोग , स्मरण कर्तार : एक शास्त्रीय विवेचन,  
 स्मरण कर्तार का प्रयोग , स्वभावोक्ति कर्तार : एक शास्त्रीय विवेचन,  
 स्वभावोक्ति कर्तार का प्रयोग, व्यतिरेक कर्तार : शास्त्रीय विवेचन,  
 परमानन्द शाला में व्यतिरेक कर्तार का प्रयोग, परिकर कर्तार :  
 शास्त्रीय विवेचन, परमानन्द शाला में परिकर कर्तार का प्रयोग ।

## परमार्थ सागर में कर्त्तार- योजना

### कर्त्तारोंकी व्युत्पत्ति, उनका विनियोगवशा महत्ता

#### व्युत्पत्ति

कर्त्तार शब्द की रचना संस्कृत भाषा के दो शब्दों 'कर्त्त' और 'कार' के योगसे हुई है। 'कर्त्त' शब्द का व्यंज्य वाभूषण है और 'कार' शब्द से वामिप्राय की प्रदान करे, इस प्रकार जो कर्त्तृत्व वाक्य वामिप्रायित करे उसी काव्योपादान की विधानों ने 'कर्त्तार' शब्द की रचना दी है। कर्त्तार शब्द के इस योगिक रूप से यह भी वामिप्राय संभव है कि जो 'कर्त्तृक' कर्त्तृत्वं पूर्णत्व 'कार' कर्त्तृत्वं प्रदान करे, इस प्रकार वह रचना प्रक्रिया जिसके पश्चात् और कुछ भी कहना शेष न रहे उस उपादान कथना उस प्रकार की रचना होती कीही कर्त्तार कहते हैं। इस तथ्यका गम्भीरतापूर्ण व्याख्या, विश्लेषण करने के विहित होता है कि कर्त्तार वाभूषण रूप में काव्य की शोभा का वाह्य साधन मात्र ही नहीं है वरन् उस शोभनीयता की पूर्णता का भी सुन्दर प्रमाण है। अतः कविता कामिनीके सारोक्त सौन्दर्य की वृद्धि करने वाले उपादान कर्त्तार कहता है।

'कर्त्तार' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में संस्कृत की निम्नोक्त पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

'कर्त्तृक्यो नेन इति कर्त्तारः ।' १  
( कर्त्तृत्वं जिसके द्वारा कर्त्तृत्व किया जाता है ) ।

कर्त्तरीति इति कर्त्तारः १

( कयात् यो कर्त्तृत्वं करता है )

उपसृत दोनों व्युत्पत्तियों में साम्य भाव है, दोनों का तात्पर्यवही है कि जिस तत्त्व कैलाश की सीमा होती है उसे कर्त्तार की संज्ञा दी जाती है।

साक्षात्कारिक कथं में 'कृत्तक' की शब्दावली के आधार पर कहा जा सकता है कि विदग्धों की समत्कारपूर्ण उचित ( वञ्चित ) ही कर्त्तार है।

काव्यान्तर्गत कर्त्तारों की अवस्थिति, वनिवाक्या एवं लक्षणाओं के विषय में प्राचीन आलोचनात्मक एक मत दिलाई नहीं देते हैं। काव्यशास्त्रीय धारणाओं के विकास के साथ साथ कर्त्तार के लक्षण में भी परिवर्तन होता रहा है। कर्त्तार का जो स्वयं कर्त्ता खादी आचार्यों ( भामह, दण्डी और उद्भट ) को जो स्वीकार था वह वनिवादी आचार्यों जामन्दवर्धन और उनके परवर्ती आचार्यों को स्वीकार न रहा। संक्षिप्त में इस मतभेदपूर्ण वस्तु-स्थिति पर हम भी प्रकाश डालना आवश्यक जान पड़ता है। सर्वप्रथम आचार्य भामह ने काव्य के सौन्दर्योक्ति के लिए कर्त्तार तत्त्व को एक आवश्यक तत्त्व निश्चित किया। तदुपरान्त आचार्य दण्डी, उद्भट, रुद्रट, जयदेव, चन्द्रालोक-

१- उभाषितावलीकार्यो लयोः पुनरलं कृतिः ।

वञ्चितोपदेशे वदन्त्यभिधीयति रुच्योः॥

- वञ्चितोपदेशः १-११



कार बादि ने भी अपनी अपनी शैली में नवी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया । वाचार्य दण्डी ने काव्य के शौभावाक्य धर्म को ही कर्त्तार की संज्ञा की और अपना मत निम्न शब्दों द्वारा व्यक्त किया है :

काव्य शौभाकरात् धर्मात् कर्त्तारात् प्रवर्तते । \*

वाचार्य वामन कर्त्तार को काव्य का आवश्यक दत्व , दण्डी के मत से भी अधिक मानते हैं, उन्होंने कर्त्तारों की संज्ञा के कारण ही काव्य की प्राप्ति एवं उसकी उपादेयता निश्चित करती हुए सौन्दर्यकर्त्तार की उद्घोषणा की । इस स्तर के वाचार्य में चन्द्रलोक-कार ने सबसे अधिक महत्वपूर्ण शब्दों में कर्त्तारों की अनिवार्यता एवं महत्ता के विषय में इस प्रकार कहा है :

दीर्घातीति यः काव्यं शब्दार्थविवर्तकृत् ।

कालमन्यो कस्मादनुष्णाकलंकृत् ॥ ३

चन्द्रलोककार के उक्त कथन का तात्पर्य यह है कि जो विद्वान् काव्य को कर्त्तार हीन मानते हैं वह यह क्यों नहीं स्वीकार करते कि वह भी शीघ्रतः अपना अनुष्णा हो सकती है।

उपर्युक्त सभी विवेचन उन वाचार्यों का है जो कि कर्त्तार को ही काव्य का प्राण जैसा वात्सा मानकर अपनी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं।

---

जब हम उन वाचार्थों के फलों का विवेचन करेंगे तो कि कर्तार की काव्य की वात्सा स्वीकार करने के पक्ष में नहीं हैं। इन कर्तारियों में मम्मट और विश्वनाथ अधिक उल्लेखनीय हैं। वाचार्थ मम्मट और विश्वनाथ ने आनन्दवर्धन की ही धारणा की गति-शील बताते हुए कर्तार के सृजन प्रस्तुत किये। इन दोनों के कथनों का समन्वित रूप इस प्रकार है :

“ कर्तार उन्हें कहते हैं जो शब्दार्थ रूप काव्य शरीर के वरिधर धर्म के रूप में उसकी अतिलय शोभा बढ़ाते हुए रसादि का भी उच्चारण करते हैं। वाचार्थ आनन्दवर्धन के अनुसार - “ कर्तार उन्हें कहते हैं जो काव्य की वात्सा, व्यंग्य की समीक्षा के प्रयोक्ता हैं।

वाचार्थ आनन्दवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ और पंडितराव आनन्दवर्धन इन चारों कर्तारियों द्वारा कर्तार-लक्षणों का विविध विश्लेषण निम्न प्रकार से प्रस्तुत है :

(१) प्रायः हम देखते हैं कि कनक कृष्णत आदि आभूषण शरीर की शोभा करने में कभीकभी असमर्थ दिखते हैं, ठीक उसी प्रकार वसुधा, उषा आदि कर्तार भी शब्दार्थ रूप में काव्य-शरीर की प्रायः सुशोभित करने में असमर्थ दिखती हैं और कभी कभी नहीं भी दिखते हैं। अतः कर्तार शब्दार्थ के वरिधर धर्म हैं।

१- उपकुर्यन्ति तं सन्तं ये गद्यारेण जातुचित ।

तारा दिव्यतारास्ते सुप्रसन्नपादयः ॥

- काव्यप्रकाश ८, ५७

२- काव्यात्मनो व्यंग्यस्य समीक्षा प्रयोक्ता कर्ताराः ।

(२) जिस प्रकार वापुषणों से विपुषित शरीर की वात्मा का उत्कर्ष होता है उसी प्रकार कर्त्तार शब्दार्थ की शोभा के माध्यम से परम्परागत इस सम्बन्ध का भी निर्वाह एवं उपकार होता है। परन्तु ऐसा परिस्थितियों के अनुसार ही संभव होता है। क्योंकि कतिपय स्थलों पर कर्त्तार एवं उपकार करने में वचन्य होते जाते हैं।

(३) पण्डित राज ज्ञानाथ का कहना यह भी है कि कर्त्तार ( शब्दार्थ की शोभा द्वारा ) काव्य की वात्मा व्यंग्यार्थ में स्पष्टीकृत उत्पन्न कर देते हैं।

(४) यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि गुण तो सब के नित्य धर्म हैं, जो कि सब का (साक्षात् ) उपकार ( उत्कर्ष ) करते हैं, परन्तु कर्त्तार शब्दार्थ के वस्तुस्थिति धर्म हैं, जो सब का साक्षात् रूप से - शब्दार्थ के शोभाकात्मा कर्त्तार - उपकार ( उत्कर्ष ) करते हैं।

उपर्युक्त संस्कृत के आचार्यों के कथनों से निष्कर्षित: यह स्पष्ट होता है कि कर्त्तारवादी और ध्वनिवादी दोनों वर्गों के वाच्य कर्त्तार द्वारा शब्दार्थ भी शोभा ( कर्त्तारिता ) की स्वीकार करते हैं, और उनके पक्षधर वाच्य कर्त्तार द्वारा शब्दार्थ की शोभा के माध्यम से इस कथना ध्वनि का भी उपकार होना स्वीकार करते हैं। कर्त्तारवादी वाच्य एवं, ध्वनि , गुणादि प्रायः सभी काव्य वस्तुओं की साक्षात् तथा वसाक्षात् रूप से कर्त्तार में ही सम्मिलित होना स्वीकार करते हैं।

संस्कृत के आचार्यों के सिद्धान्तों के विवेचन के पश्चात् हम इस सन्दर्भ में कतिपय प्रसृत हिन्दी वदण ग्रन्थकारों के

मन्तव्य है भी परिचित होना उचित सम्झते हैं। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कर्तारवादी बाचार्य केशव, भूषण आदि ने भी प्राचीन संस्कृतवाचार्य के सिद्धान्तों का ही अनुसरण किया है। परिणामस्वरूप कर्तारों की महत्ता के विषय में उन बाचार्यों में भी मतभेद दिखाई देता है। कर्तारवादी बाचार्य केशव, बाचार्य मामल, दण्डी आदि संस्कृतवाचार्यों के कर्तार सिद्धान्तों से प्रभावित होकर कर्तार ( वाभूषण ) की ही कविता का सर्वस्व मानते हैं। रामचन्द्रिकाकार के " भूषण विन विराजह कविता वनिता वि० " कथन से भी उनकी इस विचारधारा की पुष्टि होती है। इसके बतिरिक्त बाचार्य भीमसि, मम्मट और कविराजविश्वनाथ की विचारधाराओं से प्रभावित होकर इस तत्त्व को ही महत्त्व देते हैं, उनके निम्न दोहे से इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है :

यदपि दोषविन गुण सखि कर्तार हीं हीन ।

कविता वनिता कवि नहीं हउ तिन तदपि प्रीति । \* १

इस प्रकार हिन्दी के सफाण ग्रन्थकारों के मतों में भी समता दिखाई नहीं देती है क्योंकि केशव, गोपा, कनिह, भतिराम एवं भूषण आदि रीति ग्रन्थकारों का एक पक्ष काव्य में कर्तार तत्त्व को प्रमुखा देता है तो बाचार्य मम्मट भित्तारीदास आदि बाचार्य मम्मट और विश्वनाथ के सिद्धान्तों का ही अनुयायन करते हैं। इसी कारण में हम यहाँ ५० बीताराम चतुर्वेदी की विचारणा से भी अवगत होना आवश्यक प्रतीत होता है जो कि निम्न प्रकार से उद्धृत है :

" कर्तार वह निश्चल योक्ता है जिसके वन्तर्गत काव्य का स्वरूप, उसके विविध रूप, वर्णों के प्रकरण, प्रकरणों के वन्तर्गत कथा, वर्णन, संवाद और उन सब में व्याप्त एक विशेष उद्देश्य

की अभिव्यक्ति सब वा जाते हैं और यह सब पूरी योका कि कौन  
भाषा के विधानों से पूरी योका कि कौन भाषा के विधानों से  
पूरी होती है, उन सभी समष्टि ही उत्कार है। वैदिक के नट पर  
विभिन्न केन्द्रों से पढ़ने वाले विभिन्न लोगों के प्रकाश विभिन्न अवसरों पर  
उसी विभिन्न चेष्टाओं, भाव भावों और मुद्राओं को स्पष्ट करते चली  
हैं उसी प्रकार उत्कार भी काव्य के विभिन्न पात्रों, अवसरों और कार्यों  
को अधिक स्पष्ट रूप में व्यक्त करने में और संवेदनशील बनाने में सहायक  
होते हैं।

उपर्युक्त उत्कार विवेचन के विभिन्न वाचार्थों  
के मन्तव्यों से परिचित होने के पश्चात् विचारणीय यह है कि उत्कारों  
की वस्तु- स्थिति के निरूपण की मान्य कसौटी क्या है, इस सन्दर्भ में  
यद्यपि वाचार्थ विश्वनाथ की ही इस मान्यता को स्वीकार कर लिया जाना  
उचित होगा कि कटक एवं कृष्ण की भाँति खादि के उत्कर्ष धायक तत्त्व  
का ही नाम उत्कार है। परन्तु इस मान्यता में हम देखते हैं कि काव्य -  
अभिव्यक्ति के साथ उत्कार उतना घुसू सम्पर्क नहीं रखते हैं जितना कि  
शरीर का वाष्पणों के साथ है। ध्वन्यालोककार ने न तैर्जा वहिरित्यं  
इति अभिव्यक्ति कह कर इस की अभिव्यक्ति में उनकी प्रकृता की ही तो  
स्वीकार किया है। सुश्रव उत्कार शब्द- कीतिक व्यवहार एवं वैचित्र्य के  
द्वारा श्रोताओं को समतृप्त ही नहीं करते, बल्कि वे भावोत्कर्ष के साथ  
उनको बोधमय, सरस एवं आकर्षक बनाने में कर देते हैं। उनकी तो स्वा-  
भाविक रूप से संयोजना ही आनन्ददायी होती है। इस काव्य कीशतमयी

१- समीक्षाशास्त्र, वाचार्थ ५० सीताराम चतुर्वेदी पृ० १०२५

२- साहित्यदर्पण श्लोक १०, १

संयोजन के लिए काव्यकार की कोई विशेष प्रयासपूर्ण नियोजना नहीं बनानी पड़ती। बल्कि कवि की भाषाचूँचास की स्थिति ही उनके उद्घाटन का उद्गम होती है जहाँ से उनका कवि का रचना में स्वतः ही प्रस्फुरण होने लगता है।

इस प्रकार वे भावी वे भावी और भाषा दोनों के लिए आभूषण का काम करती हैं। अतः उन्हें एक एवं कृष्टता द्वारा शरीर की शोभा करने के वाह्य उपकरण के रूप में मानने का क्या अहित्य हो सकता है। परन्तु यह स्पष्टतः सत्य है कि इस के साथ उनका संयोग गुणों की भाँति होना आवश्यक नहीं है। जहाँ तक काव्य के गुणों का प्रश्न है वह तो काव्य की वात्मा की अन्तर्निहित शोभा ही होती है। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि कर्तारों के भाव में भी रसों का अस्तित्व बाध नहीं दे बना रहता है, किन्तु गुणहीन काव्य तो प्राण शून्य ही हो जाता है। परन्तु कर्तार विहीन काव्य की निष्प्राण नहीं कहा जा सकता है। संक्षेप में यहाँ ज्ञाना कहना ही योज्य है कि कर्तार सम्स्कृति के ही विधायक नहीं है, बरन स्वास्वादन में भी उनका एक महत्वपूर्ण योगदान निहित रहता है। इस प्रकार की स्थिति में रस के साथ उनके लगाव बहुत ही कम रह जाता है। यही कारण है कि वे कभी कभी रस-व्यंजना पर आच्छादन करते हुए उनके साथ विलुप्त होकर अपने अस्तित्व का प्रस्फुटन करते जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कर्तार, काव्यान्तर्गत भावोत्कर्षता तथा वस्तु मात्र के गुण, रूप एवं क्रिया की तीव्र अनुभूति कराने का एक साधन है और कोई न कोई कर्तार किसी न किसी रूप में काव्य शरीर के शोभाकारक के रूप में सदा ही अवश्य विद्यमान रहता है। ऐसा कि मम्मट के काव्य सदाण के 'अलङ्कृती पुनः कदापि' कथन से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।

### कर्तकारों के प्रकार

मम्मट के अनुसार कर्तकारों को तीन प्रकारों में विभक्त किया गया है :

- १- शब्दगत
- २- अर्थगत
- ३- शब्दार्थगत

### संख्या

भक्त मुनि के लेकर बप्पय दीक्षित तक बाणी विचार का जैसे जैसे सुस्मातिपुष्प विकसित होता गया वैसे ही कर्तकारों की संख्या बढ़ती गयी है। भक्तमुनि ने केवल ४ कर्तकार माने थे। उनके पश्चात् भामह ने ३६, वण्डी ने ३५, उद्भट ने ४०, वायन ने ३३, रुद्रट ने ५२, भोजराज ने ७२, मम्मट ने ६७, रुय्यक ने ८९, जयदेव ने १००, विश्वनाथ ने ८८, बप्पय दीक्षित ने १२४ और जगन्नाथ ने ७९ कर्तकार माने थे। इसके पश्चात् भी कर्तकारों की संख्या उबरी-उबरी बढ़ती ही रही है।

### परमानन्द सागर में कर्तकार - योजना

परमानन्ददास जी का काव्य समत्कारपूर्ण एवं कर्तकारों के यौक्तिक कर्तारवादी काव्य न होकर प्रसुक्तः पवित्रपक्ष सरस काव्य है। परन्तु फिर भी उनकी इस महाकाव्य (परमानन्दसागर) के वृत्तान्त शब्दावित और अर्थवित कर्तकारों एवं उनके विविध रूपों के

कलात्मक विन्यास का बाहुल्य दर्शनीय बनफ़ा है। परमानन्ददास जी की कर्तार- योजना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके काव्य में हमें जिस कर्तारों का समावेश मिलता है। उनका विकास, सौन्दर्य, स्वाभाविकता के वातावरण में ही हुआ है। कवि इस काव्य सत्त्व के प्रयोग के लिए कहीं भी प्रयत्नशील होता दिखाई नहीं देता है। अपने इस कथन की पुष्टि हम डा० दीन दयालु गुप्त के इस कथन से कर सकते हैं :

“ परमानन्ददास तथा नन्ददास ने कर्तारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप में ही किया है, उन्होंने अपने काव्य की कर्तारों के भार और व्युत्पन्न कल्पना की उचितता से नहीं लावा । उनके काव्य में सुविचार है जो भाव सतता के वितरण के साथ मन का रज भी करती है, उसमें पाठित्यपूर्ण समतारों मिलती नहीं हैं। ”

व्यक्तापी कवियों की कर्तार- योजना के सन्दर्भ में डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल के अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये हैं ,

“ भाव- गहनता की स्थिति में यद्यपि इन भक्त कवियों ने कर्तार, वन्द, गुण, योजनादि की परवाह नहीं की है, तथापि उनकी रचना में यह सब ज्ञायास ही जागृत है, बरन्स छि नहीं गये हैं। ”

इस प्रकार परमानन्ददास के व्यक्त है ज्ञात होता है कि कवि की कर्तार योजना एक संयोग मात्र है, इसके कसबस्वरूप

१- व्यक्तापी और वल्लभ सम्प्रदाय- भाग २ पृ० ७४२

२- परमानन्द दास पृ० ३०



कवि के काव्य में पूर्ण भावीत्कर्ष के दर्शित होते हैं। कवि की रचना में जहाँ भीज्य कर्तारों का प्रयोग हुआ है वहीं कवि के वाक्छि भाव में सम-णीयता की वृद्धि की पूर्ण अभिव्यक्ति दिखायी देती है। कवि की छ कर्तार योजना में भाव- छन्द्य, रूप चित्रण, सूक्ष्म गुणों एवं सरलता-पूर्ण कृतियों का चित्रण बड़ा ही मनोहारी ढंग से सफलतापूर्वक हुआ है। कवि की रचना में कर्तारों का योग कहीं भी विरुद्ध काव्य-सर्व-कता हुआ दृष्टिगत नहीं होता है, बल्कि कवि की रचना का जो माधुर्य गुण है उसमें भी कोई परिवर्तन नहीं हो पाता है। जहाँ तक व्यं का प्रश्न है व्यं की सरलता भी अबाध गति से बनी रहती है, यहाँ तक कि कवि की शब्द रचना वैशिष्ट्य का भी भाव या विधि बना रहता है।

परमानन्ददास जी के काव्य में प्रायः शब्द एवं व्यं सम्बन्धी दोनों प्रकार के कर्तारों के उदाहरण उपलब्ध होते हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध में उन सभी कर्तारों का विवेचन संभव प्रतीत नहीं होता है। वतः हम उक्त दोनों प्रकार के कर्तारों के प्रस्तुत उदाहरणों के विवेचन में ही कर्तार योजना की सफलता पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे।

#### परमानन्दसागर में शब्दाभित कर्तारों का वैशिष्ट्य

परमानन्ददास जी का सुमधुर, सुसज्जित एवं गम्भीर भावाभिव्यक्ति की साहित्यिक अभिरुचि के होते हुए उनका शब्द चमत्कृति के प्रति कोई भीष नहीं था। यही कारण है कि 'परमा-नन्द सागर' में शब्दाभित कर्तारों का प्रयोग प्रायः कम ही मिलता है। परन्तु फिर भी उनके प्रस्तुतः शब्दों के उदाहरण उनके काव्य में मिल

जाते हैं। इनमें अनुप्रास, वीर्या, यमक, स्तब्ध आदि कर्तकारों के उदाहरण दर्शनीय हैं। यह उदाहरण कवि की भावोच्छ्वास की स्थिति है उसकी सरस एवं नैसर्गिक काव्य प्रवाह प्रतिभा के परिचायक ही प्रतीत होती हैं। इनके प्रयोग में कवि की प्रयत्नशीलता का कहीं भी संकेत नहीं मिलता है। कवि धीकृष्ण सम्बन्धी सीता गायन में जाना नक्ति विभोर हो गया है कि उसे नक्ति की तन्मयता में स्वयं अपनी योजना का भी कोई आभास नहीं होने पाया है। इस प्रकार कवि की रचना की विशिष्टता हमें उसी तथ्य में दिखाई देती है कि कवि इस योजना के प्रति प्रयत्नशील न होते हुए भी उसकी कर्तार योजना का निर्वाह साहित्यिक दृष्टिकोण से उच्च कोटि का ही ठहरता है। कवि के इस रचना वैशिष्ट्य सर्वप्रथम हम निम्नीकृत शब्दाभित कर्तकारों की प्रतिच्छाया में देखेंगे- अनुप्रास, यमक, स्तब्ध, वीर्या वीर्या आदि ।

परमानन्दसागर के अन्तर्गत अनुप्रास कर्तकार के उदाहरणों पर दृष्टिपात करते हैं पूर्व, दो शब्दों में अनुप्रास कर्तकार के विषय में परिचय कर लेना भी आवश्यक है।

### अनुप्रास कर्तार एक सांस्कृतिक विवेचन

अनुप्रास शब्द का अर्थ है वर्णों की समानता । वर्णों की समानता का अभिप्राय यह है कि स्वरों की समानता न होने पर भी केवल वर्णों के साम्य होने पर भी 'अनुप्रास' कर्तार हो सकता है।

'अनुप्रास' का अर्थ 'अनु' + 'प्रास' है। 'अनु' का अर्थ 'सादृश्य' और 'प्रास' के संयोग से बना है। यहाँ 'अनु' का अर्थ 'सादृश्य' अर्थात्

वर्णनीय रस के व्यंजक वर्णों के प्रयोग करते हैं। 'प्र' का व्यंजक 'प्रकार' वर्णात् वर्णों का एक दूसरे के समीप करना है। 'वास' का व्यंजक वर्णों की वावृत्ति वर्णात् बार बार करने से है। इस प्रकार अनुप्रास में वर्णनीय रस के अनुसृत वर्णों को एक दूसरे के निकट बार बार प्रयोग किया जाता है। अनुप्रास के भेद निम्नलिखित हैं :

१- वर्णानुप्रास - (क) हेकानुप्रास ( वा ) वृत्थानुप्रास

२- शब्दानुप्रास

### (१) वर्णानुप्रास

उसके दो भेद हैं :

(क) हेकानुप्रास- वीक वर्णों के एक बार सादृश्य होने को हेकानुप्रास कहते हैं। हेक शब्द का व्यंजक चतुर होता है। चतुर व्यंजक के प्रिय होने के कारण ही उसे हेकानुप्रास कहते हैं। यथा-

कल वलन रवि उदित है वन्द मन्द दति कीन्त ।

काम काम तरु तीन के गण्ड पाण्डु बनि लीन्त ॥

गण्ड पाण्ड में दो दो वर्णों की एक बार समानता है।

(वा) वृत्थानुप्रास - वृत्ति मत वीक वर्णों की कक्षा एक वर्ण की अधिक बार वावृत्ति किये जाने को वृत्थानुप्रास कहते हैं।

### (२) शब्दानुप्रास ( लाटानुप्रास )

शब्द और व्यंजनों की वावृत्ति में सादृश्य कीभिन्नता होने को शब्दानुप्रास (लाटानुप्रास) कहते हैं। लाटानु-

प्राप्त में शब्द और व्यं दोनों की क्वालिटी स्कार्फे शब्दों की पुनरुक्ति होती है- केवल तात्पर्य ( व्यं ) में भिन्नता होती है। इसके अन्तर्गत शब्द या पदों की वाच्यता होने के कारण शब्दानुप्रास या पदानुप्रास कहते हैं।

यहाँ यह भी विचारणीय है कि शब्द या पदों की वाच्यता यन्त्र कर्तार में भी होती है, किन्तु यन्त्र में जिन शब्दों की वाच्यता होती है उनका व्यं भिन्न भिन्न होता है। इसके विपरीत शब्दानुप्रास में एक ही व्यं वाले शब्द या पदों की वाच्यता होती है। यथा-

ध धर हैं धन ही सदा जो धृ विधीय ,

ध धर हैं धन ही सदा जो नहिं धृ विधीय ॥

### अनुप्रास कर्तार का प्रयोग

अनुप्रास कर्तार के लक्ष संश्लिष्ट परिचय विवेचन के पश्चात् अब हम ' परमानन्द शास्त्र ' के प्रसृत स्थलों के परिचय में ही लक्ष कर्तार की अवस्थिति के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे :

(१) ईश्वर शब्द की वस्तुतः चेतन ।

वस्तुतः कर्मतः धृ है कौमल कतिमल हरन ॥

कृत वेद विचार जाकी काय कलन सन ।

ध्यान मुनि का शरत जाकी भक्ति धृ विस्तन ॥

हीन मन कर्म बनन जारी मजे एक ही बन ।

परमानन्द के उर बसी निरन्तर वस्तुतः भगत हरन ॥ ९

### कर्मकार विवेचन

प्रस्तुत पद के अन्तर्गत परमानन्ददास जी की अनुप्रासिक योजना का निर्वाह पद की द्वितीय पंक्ति के " क " वर्ण की वावृति दो बार होने से स्पष्ट हो जाता है। वही प्रकार तृतीय पंक्ति में " व " स्वर की भी दो बार वावृति हुई है। अथ, अथन, सन और अन्त, अन्त में रूपतः तीन वर्णों की चार दो वर्णों की दो बार बीर एक बार समानता की गयी है। अतः पद में इकानुप्रास होना संभव है। कवि की इस कर्मकार योजना के अन्तर्गत कर्मकार निर्वाह बनायास ही हो गया प्रतीत होता है जो कि कवि की कर्मकार योजना की अपनी एक विशिष्टता है। कवि का योजना के मूल में प्राचीन संस्कृति का परिवर्तन कवि की " गुरु " के प्रति भावामिच्छावृत्ति से प्राप्त होता है। कवि की प्रस्तुत रचना भारतीय संस्कृति की शिष्टता, शांतिनता के उस प्राचीन गीत एवं प्रतिष्ठा की पाठकों के समक्ष उपस्थित करने में प्रयत्नः सचान है। पर कवि के भावुक हृदय का ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित करता है।

हो हो होरी सलधर जावे ।

एसी प्रीति त्याग सुन्दर हो हरि सीता अपने मुस

गावे ॥

फिर बाहनी मन छैरणन नैन रसमते कच कहु ठीसि ।

बीह खड़ी खड़ी धिर नाम छटपटी बनन गीरीर कधर

गीसि ॥

बीह बलन हवि अगति चलन गति सुख धरीर रीक्षिती

नन्दन ।

परमानन्ददास ' सुखी प्रिय कुण्डल एक जड़ाये चन्दन ॥ १

### कर्तार विवेचन

कवि की कुप्रासिक कर्तार योजना की पूर्ति पद की प्रथम पैरिक्त है ही स्पष्ट हो जाती है क्योंकि ' ह ' वर्ण की बावृत्ति चार बार हो जाती है। इसके बतिरिक्त छ द्वितीय पैरिक्त में भी ' ह ' वर्ण की बावृत्ति तीन बार ( स्याम सुन्दर सौ ) शब्दों के प्रयोग से हो गयी है। पद की भाषा अपनी भाव विधा में पूर्ण सफल दिखाई देती है। पद स्वता भी सुति मधुर है।

मीलन मान मनायी मेरी ।

हो बलिहारी कमल नयन की नेहू तिली पुरु कैरी ॥

मात्स साहू तेहु सुखी स्वात दासन टेरी ।

जोरी करि कै जोरि काफी न्यारी मेयाँ धेरी ॥

कारी करि करि मोहि सिजावत रही बरजत कत बधिक कीरी ।

रन्दु नोल मनि सो तन सुन्दर कहा जाने बत धेरी ॥

मेरी सुत सिताब खन की खसो कान्ह बहरी ।

परमानन्द भीर भयी गाँव विसद लिपल बस तेरी ॥ २

### कर्तार विवेचन

पद की प्रथम पैरिक्त ही कवि की कुप्रासिक कर्तार योजना का प्रस्तुतीकरण करने में पूर्णतया सफल रहती है, क्योंकि सम्पूर्ण पैरिक्त के प्रत्येक शब्द में वारम्भ में ' म ' वर्ण की

वावृषि चार बार हुई है। इसी प्रकार पाँचवीं पंक्ति में ' क ' वर्ण की तीन बार और सातवीं पंक्ति में भी ' उ ' वर्ण की लगातार तीन बार वावृषि हुई है। इसी प्रकार हम देखते हैं कि पूर्ण का अपनी उत्कृष्ट भाषा निष्पन्नता के साथ पूर्णतः अनुप्रास वर्तकार का प्रतीक है।

हरि भोजकस्त विनीतः सः ।

करि करि कौर सुलारविम मे देति कौदा मोद सः ।

मधु मेवा सखान पिठारं कृप दह्यो घृत बीद सः ।

परमानन्द श्रु भोजन कस्त है भोग लय्यो सताद सः॥१२

#### वर्तकार विवेक

यस की द्वितीय पंक्ति में ' क ' और ' र ' वर्ण की लगातार तीन बार वावृषि होने से हेतुानुप्रास वर्तकार निश्चित किया जा सकता है। पाता द्वारा शिष्ट ( लीकृष्ण ) को भोजन करते समय का चित्र खींचने में कवि ने कोई कमी नहीं छोड़ी है। कवि अपनी भावों को व्यक्त करने में पूर्ण सफल दिखाई देता है। परन्तु उसकी रचना के इस प्रवाह में अनुप्रास वर्तकार का प्रयोग एक संयोग मात्र ब्रजवा कायास ही प्रतीत होता है।

वाय अति जानक प्रवराया

धन्य दिवस नन नस्त प्राम की कान्ठ चरावन नाय ।

वपनी पीताम्बर लघुटि मुरलिका लीर धिर लीरि नारह ।

०

०

०

०

०

०

प्रबल का धन मिलि धन सौंप सैन तिरसि पुन पाय ।

परमानन्द प्रभु यहि कासि ऊपर बलि बलि बलि बलि जाय ॥१॥

### करींकार विनयन

प्रस्तुत गद में " ब " स्वर की तीन बार वाच्यि हुई है। वीर अंतिम पंक्ति में " ब " वीर " स " की लगातार बार बार वाच्यि हुई है। कतः अंतिम पंक्ति के अनुसार ऐकानुप्रास की प्रतीति होती है। इस रचना के अन्तर्गत कवि ने श्रीकृष्ण की वेश मुखा का, वन की प्रथम दिन गाय बरान के लिए जाते समय का स्त्रीकारी वर्णन किया है। कवि की कल्पनाशक्ति वीर प्रयोगानुसृत भाषा भिन्न्यक्ति की इटा उसकी रचना में पूर्णरूपेण पुष्टि हो रही है। करींकार का सामान्य स्वाभाविक रूप से ही परिलक्षित होता है। कवि इसके लिए वप्रकल्पित है।

### कानुप्रास करींकार

की री गोपाल बालक आवत ।

बाधुरी डुरति का नीहन मन भावत ।

शुक्ति कैस सुदेस बदन पर बीच बीच कत हूँद रहे ।

मानो कस्त पय पर भीतो संज निरुट सतील गहि ।

गोपी नैन भूग रह उंच उडि उडि पत बदन पाछी ।

परमानन्ददास रह लोभी अति बाधुर कई बाछी ॥२॥

१- परमानन्द सागर पृ० ४२ पद १२२

२- " " पृ० ४७ पद १४३



### कलंकार विवेचन

प्रस्तुत पद की द्वितीय पंक्ति में ' व ' वर्ण की ५ बार आवृत्ति हुई है, तीसरी पंक्ति में ' व ' तीर ' च ' वर्ण की दो बार । पाँचवीं पंक्ति में ' उ ' तीर ' ह ' की एक बार तीर ' व ' वंतिम पंक्ति में ' र ' की दो बार आवृत्ति हुई है। काः अनुप्रास कलंकार की पुष्टि होती है। परन्तु इसके साथ ही चौथी पंक्ति में उत्प्रेक्षा कलंकार की प्रतीति होती है। सम्पूर्ण पद के भाग के पद में रूपातिशयोक्ति कलंकार का भी आभास होता है, क्योंकि कृष्ण के सुन्दरतम रूप की गन्ध उल्लेख करने के लिए मधुकर भी आकर्षित होकर उड़ उड़ कर आते हैं। उधर गोपियों के नेत्र भी रूप लीन से वीकृष्ण पर गढ़े हुए हैं। भाषा साहित्यिक एवं माधुर्य गुण से पूर्ण है। भाषा में प्रवाह एवं भाषानुसूतता का गुण भी विद्यमान है।

परमानन्द ठागूर में अनुप्रास कलंकारों के अध्ययन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनमें केानुप्रास का प्रयोग अन्य अनुप्रासों की अपेक्षा अधिक मात्रा में रखा है। यदि इनके प्रयोग में कहीं भी लक्ष्य दिखाई नहीं देता है।

### वीर्या कलंकार : एक सांस्कृतिक विवेचन

वार्ताकारों के वीर्या कलंकार की गणना शब्दाभिरुक्ति कलंकारों के अन्तर्गत ही की है। जहाँ एक ही शब्द की आवृत्ति दो बार किया छोटे से अधिक बार होती है वीर यह शब्द वर्णोत्पन्न

के पीछे ही वहाँ वीष्ठा वर्तकार होता है। भित्तारीदास ने काव्य निर्णय में वीष्ठा वर्तकार के लक्षण को निम्नीकृत दोहे द्वारा व्यक्त किया है :

एक शब्द बहु बार जहाँ हरणादिक ते होइ ।  
ता कहँ वीष्ठा कहत हैं कवि कोविद सब कोइ ॥१॥

### वीष्ठा वर्तकार

परमानन्ददास के वृत्तगण " वीष्ठा " वर्तकार का प्रयोग कतिपय स्थलों पर देखने को मिलता है। इसके उदाहरण निम्नीकृत हैं :

हुहि हुहि ल्यावत धीरी मेया ।  
कमल नेन की बति भासत है, मधि पति प्यावत घिया ॥  
हंसि हंसि ग्वाल कहत सब बाली, पुन गोबुल के रेया ॥  
रसी स्वाद कबहुँ नहि पायी बपनी सीहि कन्हैया ॥  
मोहन बध्नि भुल जो लागी लकि बाहि दे मेया ।  
परमानन्ददास की दीवि पुनि पुनि हत बलिया ॥ २

### वर्तकार विवेक

एक की प्रथम पंक्ति में हुहि , हुहि शब्दों की आवृत्ति और तृतीय पंक्ति में हंसि, हंसि शब्दों की आवृत्ति दो बार हुई है, जिसे कि वर्णोत्पादन होता है। तथा शब्दों के वर्णों में भी

१- काव्य निर्णय, भित्तारीदास , दोहा १७७ अ

२- परमानन्ददास पृ० ४४ पद १३०

समता है, अतः वीष्ठा वर्तकार निश्चित किया जाना संभव है। पर इस  
में कवि की स्वाभाविकता की प्रवृत्ति का पूर्ण विकास दर्शनीय है। भावों  
के इस स्वाभाविक विकास इन में वर्तकार की प्रकृति एक संयोग मात्र का  
ही प्रतीत होता है।

हरि भोजन करत विनीद छौं  
करि करि कौर मुखारविंद मैं देखि जलौदा मोद छौं ।  
महु भवा फलवान मिठाई सुध दह्यो पूत लौद छौं ।  
परमानन्द प्रभु भोजन करत है योग सग्यो संलौद छौं ॥१॥

#### वर्तकार विवेचन

यह की द्वितीय पंक्ति में करि करि शब्दों  
की दो बार आवृत्ति की गयी है, ये शब्द तथा पंक्ति के अग्रिम शब्द  
संज्ञातिथि करने में सहयोग दे रहे हैं। इस प्रकार वीष्ठा वर्तकार का  
प्रयोग प्रतीत होता है।

पोंढे रंग मल्ल गोविंद ।  
राधिका संग सरद रजनी उचित पुन्वी चंद ॥  
विविध चित्र विचित्र कैरि कोटिक चंद ।  
निरसि निरसि विखास विससत दर्पती सुत छंद ॥  
मलय चन्दन की लेखन परस्पर आनन्द।  
कृष्ण दीप्ता कार दोर सज्जनी परमानन्द ॥ २

#### वर्तकार विवेचन

प्रस्तुत पद की चतुर्थ पंक्ति में प्रयुक्त निरसि

१- परमानन्द सागर पृ० ३८ पद ११३

२- .. ५८ पद २४७

निरसि स्या ' विलास ' विलसित ' शब्दों की बावृत्ति से वर्णोत्सास प्रकट हो रहा है। क्तः वीप्सा वर्तकार है।

धन रानी कुमुदि गुरु बावत गोपी जन ।

० ०

बावत फरि देहरी उत्पन्न कितकि कितकि हंसत मन हो  
पम॥ १

### वर्तकार विविचन

कितकि , कितकि शब्दों की बावृत्ति वर्णो-  
त्सास का प्रतीक होने के कारण वीप्सा वर्तकार है।

इसप्रकार परमानन्द सागर में वीप्सा वर्तकार  
के अनेकों फनीचारी उदाहरण चित्र दर्शनीय हैं।

### यमक वर्तकार एक शास्त्रीय विविचन

#### परिभाषा

जहाँ एक या एक से अधिक शब्द एक से अधिक  
बार आए तथा उनका अर्थ भी प्रत्येक बार भिन्न हो, वहाँ यमक वर्तकार  
होता है। समान वाकार के वर्ण संज्ञात की बावृत्ति को यमक कहते हैं।

उदाहरण- कनक कनक ते सौ गुनी मादकतावधिकाय ।

तिर्यक वर्णों की वयवा भिन्न भिन्न अर्थ  
वाले सारक वर्णों की क्रमशः बावृत्ति वयवा उनका पुनः बवण ही यमक

वर्तकार कहता है। यमक वर्तकार में स्वर सहित निरर्थक और शार्थक दोनों प्रकार के वर्णों की व्यवृत्ति होती है। वर्णों का प्रयोग तीन प्रकार से होता है :

- १- सभी जगह जितनीबार व्यवृत्ति हो वह निरर्थक वर्णों की हो ।
- २- एक बार निरर्थक वर्णों की और दूसरी बार शार्थक वर्णों की व्यवृत्ति हो ।
- ३- सर्वत्र शार्थक वर्णों की व्यवृत्ति हो, जहाँ शार्थक वर्णों की व्यवृत्ति में यमक होता है, वहाँ भिन्न भिन्न व्यंजनों वाले वर्णों की व्यवृत्ति होती है, शार्थक वर्णों की नहीं होती ।

यमक और 'चि' वर्तकार में 'ड', 'वीर' 'स' तथा 'य' 'वीर' 'व' 'वीर' 'र' वर्णों में कोई भिन्नता नहीं समझी जाती है। जैसे 'भुवताप्यतामस्तापनः' 'कर्म' एक बार 'कस्ता' और दूसरी बार 'कस्ता' का प्रयोग है। इनकी ध्वनि एक समान सुनी जाती है। इसलिये 'यमक' वर्तकार के लक्षण में पुनः अवण कहा गया है, क्योंकि वर्णों की व्यवृत्ति के अतिरिक्त जहाँ व्यवृत्ति न होकर जहाँ वर्णों का समान अवण होता है, वहाँ भी यमक वर्तकार होता है।

यमक वर्तकार दो प्रकार का होता है :

(१) पादावृत्ति (२) भागावृत्ति । विद्वानों ने इनकी भी अनेक भेदों, उपभेदों में विभक्त किया है।

- १- पादावृत्ति यमक - छन्द का चौथा विभाग पाद कहलाता है। छठी प्रकार के पूरे पाद की आवृत्ति को ही पादावृत्ति कहते हैं।
- २- भागावृत्ति यमक- पाद के बांधे विभाग की क्यथा तीसरे या चौथे विभाग की या छठे भी छोटे विभाग की आवृत्ति को भागावृत्ति यमक कहते हैं।

### यमक कर्तार का प्रयोग

परमानन्दसागर के व्ययम्न के अन्तर्गत हमें यमक कर्तार के उदाहरण भी अन्य कर्तारों की भाँति उसी रूप में मिल जाते हैं किन्तु प्रयोग करने में कवि की प्रयत्नशीलता का कोई हाथ दिखाने नहीं पड़ता है। क्योंकि यमक कर्तार का प्रयोग भी कवि की स्वाभाविक रचना के प्रवाह में ही परिलक्षित होता है। 'सागर' में विहित यमक कर्तारों की छटा के कतिपय प्रमुख उदाहरण निम्नीकृत हैं :

भीगी भीग करत सब रस को ।

नन्द नन्दन जगोदा को जीवन भीपी जन पति सरस को ।

तिल भरि रंग तजत नहीं निज जन गान करत मनमोहन

जस को ।

तिल तिल भीग धरत मन भावत परमानन्द सुख ते यह

रस को ॥ १

### कर्तार विवेचन

उक्त रचना में तीसरे पाद ( विभाग ) में चौथे पाद के बांधे क्योंकि ' तिल भरि रंग तजत ' का ' तिल तिल

योग धातु ' में समान प्रवण का गुण निहित है। दोनों स्थानों पर सार्फक वर्णों का ही प्रयोग हुआ है। समान गुण के कारण यहाँ यन्त्र कर्तार की प्रतीति होती है। कवि की इस वर्ण सादृश्यता की योजना में ही यन्त्रकर्तार के स्वाभाविक सौन्दर्य की भी पुष्टि हो जाती है।

देखी मैया चहुँ दिशि द्वार बादर ।  
सन्मन विचार तेही मन में फेरि किरौंगे निरादर ।  
बरसा रितु बन दाहत तीजे भीजन संग निरादर ।  
निर्मल ताल तलिया के जल बोलत तीके दादुर ॥  
हरि हरि भूमि हाँडि मिलि बहरे कीर सादर ।  
लिखत श्री परमानन्द सब हरि मिलि बैठे बादर ॥१॥

#### कर्तार विवेचन

प्रस्तुत रचना में 'हरि हरि' शब्दों में यन्त्र कर्तार है। क्योंकि प्रथम हरि शब्दोच्चारण के रूप में तथा दूसरे हरि शब्द से हरी भूमि से ही उभरता है। अतः सार्फक शब्दों का एक ही तन्त्रिक बार निम्न कथों में प्रतीत होती है। अतः यन्त्र कर्तार कहा जा सकता है।

सब समाज भाँसिती है दाँसिती बूंदन बूंदन देखी ।  
कचरा बरगजा गोरा सधि सधि लये देखी ॥  
तटफत कावत भीतिन कँठनि बहि परस्पर देखी ।  
उनसद कोऊ बदन त काहु स्याम समर बन देखी ॥ २

१- परमानन्द सागर पृ० २२२ पद ६३७

२- .. ३०६ पद १२

### कर्तकार विवेचन

उपर्युक्त रचना की प्रथम पंक्ति में वृन्द वृन्द शब्दों की वावृत्ति होने से यन्त्र कर्तकार की पुष्टि होती है, क्योंकि शब्द 'वृन्द वृन्द' के दो अर्थ हो सकते हैं। प्रथम वृन्द का अर्थ समूह और दूसरे वृन्दन से वृन्दावन का अर्थ लिया जा सकता है।

वानन्द की निधि नंदकुमार ।

प्राट प्रल नर मेज नराकृत जगमोहन लोला अवतार ।

प्रमन वानन्द लोचन वानन्द मन में वानन्द वानन्द

पुरति ।

गोकुल वानंद गा.न वानंद नंद ज्योदा वानंद पुरति ।।

सम दिन वानंद धनु नराकृत नेतु बधायत वानंद बंद ।

लेस्त हंसत क्लृप्त वानंद राधापति धृन्दावन बंद ।।

सुक मुनि वानंद मथन वानंद निशि दिन वानंद धितास ।

चरन कस्त अनुकृत निरन्तर वति वानंद परमानंददास ।।९

### कर्तकार विवेचन

प्रस्तुत रचना में हम देखते हैं कि 'वानंद' शब्द की वावृत्ति बाबान्त हुई है। अर्थात् सर्वत्र ही सार्वक वार्ता की वावृत्ति मिलती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यहाँ 'समुच्चय यन्त्र' कर्तकार है। कवि की रचना में हम देखते हैं कि कवि ने इस वानंद शब्द की कितनी बार और कितनी विशिष्टता रखते हुए भिन्न भिन्न अर्थों में भी



प्रयोग किया है। प्रथम पंक्ति में आनन्द शब्द का अर्थ प्रसन्नता है। चतुर्थ पंक्ति में आनन्द शब्द की कृष्ण के लिए प्रयोग किया है। इस पद में तो यह (आनन्द) शब्द अपने विशिष्ट अर्थ में आनन्दमयी वृष्टि कर ही रहा है, पाठक गणों के हृदयों में भी आनन्द का संसार किये बिना नहीं रहता। कविकी इस प्रकार की स्वाभाविक उत्कर्ष योजना एवं उन्न कोटि की भाव-योजनाओं ने निरन्तर कवि को एक सफल एवं श्रेष्ठ रचनाकार छिद्र कर दिया। कवि की रचना का एक एक शब्द गम्भीर अर्थ लिए हुए हमारे समक्ष उपस्थित होता है जिससे कवि की काव्य कृतता का परिचय मिलता है। स्वाभाविक उत्कर्ष योजना के निर्वाह के साथ साथ कवि की रचना में हमें पूर्ण क्षीण प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं जिससे कवि हृदय का विचार हीन एवं परिपक्वता का पता चलता है।

सो मुख ब्रज का निकट निहास ।  
 जा मुख की चतुरानन बानस साधन करि करि हास ॥  
 जा मुख की मुति नेति नेति प्रति छिब सनकादिक बास ।  
 सो मुख नंद गोप के गोक्षर बस बहरा गी बास ॥  
 जा मुख की ऐस एहस मुख नाम लेत दिनन टास ।  
 सो मुख परमानन्द कौदा ले उरंग सुकास ॥ १

### उत्कर्ष विवेचन

प्रस्तुत रचना में 'मुख' शब्द की प्रत्येक पंक्ति में आवृत्ति हुई है। अतः 'समुच्चय' याक उत्कर्ष है। परन्तु 'मुख' शब्द का उसके पूर्व के शब्द 'सो' 'जा' के संयोग स्थापित हो जाने

वे सादृश्य मूलक यन्त्र के भी दर्शन हो जाते हैं। इस प्रकार समुच्चय मूलक और वर्ण सादृश्य होने के कारण यन्त्र वर्तकार है। दोनों प्रकार के वर्तकारों की भाषा से रचना सौन्दर्य युक्त प्रतीत होती है।

गुह्यो उद्यान लागे बाल ।

सुन्दर फाँग बाँधि मनमोहन नाँवत है मोहन के ताल ।

कोऊ फाँस कोऊ कँचत कोऊ देखत नैन विछाल ।

कोऊ नानक कोऊ करत कृताकृत कोऊ बजावत तरी

कहास ॥

कोऊ गुह्यो से उरझावत बापुन रँवत होर रसाल ।

परमानन्ददाण खार्पो फन मोहन रोझि रहत एक ही

काला ॥ १

### वर्तकार विवेचन

उक्त रचना में " कोऊ " शब्द की बाधुति हुई है। कतः भागवृत्ति यन्त्र वर्तकार है। वर्ण " कोऊ " अपनी समान वर्णों से सामीप्य नहीं रखता है। कतः ही व्यक्ति वर्तकार भी कह सकते हैं।

### सुलभित प्रकाश वर्तकार : एक साम्प्रदायिक विवेचन

जहाँ आख्या सौन्दर्यादि की वृद्धि के प्रयोज्यार्थ एक ही शब्द एक ही वर्ण में एक से अधिक बार प्रयुक्त होता है। वहाँ सुलभित प्रकाश वर्तकार माना जाता है।

धाँ धाम धाम तँ क्वाँ हुनि उदय की ।

वाम वामलास वमिताजति छी म्भी रही ।

उपर्युक्त काव्य रचना में ' धाम - धाम ' तथा ' वाम वाम ' की आवृत्ति होने से काव्य सौन्दर्य में वृद्धि हो गयी है। अतः पुनरुक्ति प्रकाश कर्त्तार है।

#### पुनरुक्ति प्रकाश कर्त्तार का प्रयोग

हुपि करु कमल चलन की ।

परि परि केत तीर जति बाहु रति वृन्दावन केन की ॥

दे दे गाँव बाँसिंग मिलनि भूकलता घुम वपन की ।

दे जतियाँकिरे के विहरति बान्ह उसी से सयन की ॥

बीर निरुद्ध में रास सितार भिया गोपाई पवन की ।

परमानन्द प्रभु धी रधी बीदे जो बीबी गृहु केन की ॥ १

#### कर्त्तार विवेचन

धामर की प्रस्तुत रचना में द्वितीय पंक्ति में ' परि ' परि ' सयन तथा तृतीय पंक्ति में ' दे दे ' शब्दों की एक से अधिक बार आवृत्ति हुई है। शब्दों के प्रत्येक स्थान पर कार्य समान हो है। अतः पुनरुक्ति कर्त्तार की कल्पना करना उचित प्रतीत होता है।

सुन्दर मुख की ही बल बल जाऊँ ।

साधन्य निधि गुन निधि सोभा निधि देख देख बँधित खन  
गाऊँ ॥

बैग बैग प्रति कम्पित बाधुरी प्रष्ट रुचिर ठोई ठाऊँ ।

तामै पुहु मुखकाय हरत मन न्याय कस्त कविमोहन ताऊँ ॥

सला जेस पर बाहु डये बाधे विकी बिन भीतविकाऊँ ।

परमानंद नन्द नन्दन की निरखि निरखि उर नयन सिराऊँ ॥१

### कलंकार विवेचन

परमानंद सागर की प्रस्तुत रचना के अन्तर्गत प्रथम पंक्ति में प्रमुख 'बल बल' शब्दों की दो बार, द्वितीय पंक्ति में निधि शब्द की तीन बार 'देख' शब्द की दो बार, तृतीय पंक्ति में 'ब म' शब्द की दो बार, अंती पंक्ति में 'निरखि' शब्द की दो बार जाबूजि हुई है। जहाँ तक शब्दों के वर्गों का प्रश्न है, प्रत्येक जाबूजि मुख्य शब्द स्फूर्तिदायी है। इस प्रकार यह रचना सौन्दर्यमयी हो गयी है। अतः यह रचना में बाधोपान्त 'गुनरुचि प्रकाश' कलंकार के प्रकाश की ही कटा दर्शनीय है।

सौख्य स्याम मनीहर गात ।

देख परवती जति रह भीती केशर पगिया पाथ ।

कहत फूस प्रतिविम्ब रूपीसन जेजैय फामय ही सजात ।

परमानन्ददास की ठाकूर निरख बदन मुखकात ॥ २

### कलंकार विवेचन

प्रस्तुत पद की रचना की तृतीय पंक्ति में

१- परमानंद सागर पृ० २३२ पद ६६७

२- .. २३२ पद ६६५

“ शब्द ” शब्द की दो बार एक ही अर्थ में पुनरावृत्ति पायी जाती है, जिससे रचनाक्रम में सौन्दर्य वृद्धि के वर्धन होते हैं। अतः पुनरावृत्ति वर्तकार की पुष्टि होने में कवि की पद रचना पूर्णतया समर्थ सिद्ध होती है।

मे तू के बिरियाँ समुझाई ।

उठि उठि उमरि उमरि जेबल टैब न जाई ॥

किन्तु किन्तु फुल्लु रह्यो न परे तब सखरि बोट लगाई ।

कमल नयन की फिरि फिरि देखे लोक की साज पिटाई ।

को प्रवि उबर देखे सती की गिरिधर हुदि चुराई ।

मदन मोहन राधा से लीला कहु परमानन्द गाई ॥ १

### वर्तकार विशिष्ट

उपरोक्त रचना क्रम में पुनरावृत्ति वर्तकार का कृत्ति व्येष्टा विकास मिलता है, जिसकी प्रामाणिकता हमें पद की द्वितीय पंक्ति में वाक्य “ उठि उठि ” और “ उमरि उमरि ” शब्दों की दो बार आवृत्ति होने से तथा तृतीय पंक्ति के “ किन्तु किन्तु ” और “ फुल्लु ” शब्दों की दो बार आवृत्ति तथा अन्तर्ग पंक्ति में फिरि फिरि शब्दों की आवृत्ति के माध्यम से ही जाती है। अतः रचना में स्पष्टतः पुनरावृत्ति वर्तकार विशिष्ट किया जा सकता है।

पौटे हरि मनीषी पट है बोट ।

सैग श्री कृष्णभान बनया धरा रस की बोट ॥

फलक कृतिर अलक बरुफकी हार गुंजा ताटेक ।

नीलपीत दीउ खवल बवलें सेत भर भर के ॥  
 हुदै हुदै सौं क्यार क्यार सौं नैन सौं नैन मिलाय ।  
 प्रीह प्रीह सौं तिलक तिलक सौं मुख सौं मुख लफटाय ॥  
 मातली कीर जाइ बाम्पा हुमन जाती कूट ।  
 दास परमानन्द सजनी पैत चुन चुन फूस ॥ १

प्रस्तुत रचना की कल्पित पंक्ति के शब्द 'भर  
 भर ' , हुदै , हुदै , क्यार क्यार ' नैन सौं नैन ' प्रीह , प्रीह कीर  
 तिलक तिलक शब्दों की दो दो बार आवृत्ति के दर्शन होते हैं। यह प्रकार  
 की शब्दावृत्ति से काव्य रचना अनिन्द्य बद् गया है, जिससे पुनरावृत्ति प्रकाश  
 कर्तकार की ही प्रतिस्थापना की जा सकती है।

रखि सिरौमनि नैननन ।  
 तसमय तस कसुप विराजि गोपबहू उफरु सीतल चैन ।  
 नैननि मैं सखि बिलवनि मैं सखि बातनि मैं सखि ठगत मनुष दल ।  
 नाबनि मैं सखि फिलवनि मैं सखि पैनु मधुर सखि प्राट पावन बल ।  
 जिहि सखि फलफिरत तुनि मधुर सौ सखि सेवित ब्रज वृन्दावन  
 स्वाम धाम सखि रखि उदासित प्रेम प्रवाह तु परमानन्द मन ॥ २

### कर्तकार विवेचन

कवि की प्रस्तुत रचना का मुक्त ' सखि ' शब्द की आवृत्ति के साथ अभी सखि ही शब्द की लहर बड़े ही मनोहारी  
 ढंग से बूझा है। कवि में यह प्रकार की परवर्णन रचना में पाठकों के हृदय  
 को स्थापित किया बिना नहीं रहती। जिस प्रकार कवि की उचित रचना

में शीकृष्ण पूर्ण रूप से रसिक शिरोमणि के रूप में व्यक्ति हुए हैं। उसी प्रकार उनकी रचना भी पूर्ण स्वीकार के शिखर बिन्दु तक पहुँच कर पूर्णतः एक शिरोमणि कहलाने की अधिकारिणी बन गयी है।

निष्कर्षतः कवि की रचना 'पुनरुक्ति प्रकाश' वर्तकार के वातावरण में प्रस्फुटित होती हुई कवि को पूर्णतः उत्कृत करती हुई दिखाई दे रही है।

#### परमानन्दशास्त्री के वर्णित वर्तकारों का वैशिष्ट्य

परमानन्दशास्त्री की वर्तकार योजना के अन्तर्गत जो विशेषता तर्क शब्दांकित वर्तकारों के अध्ययन - विवेचन में मिलती है। उन्हीं तर्कों के अन्तर्गत इसी निविष्टता विनियोग के अन्तर्गत वर्णित वर्तकारों के अध्ययन विवेचन में मिलती है। यहाँ भी कवि की मौलिक विचार धारा एवं उसकी काव्य रचना प्रक्रिया स्वाभाविकता के परिधि में ही प्रस्फुटित एवं प्रस्तुत होती दिखती देखी है। कवि की इसकी रचना में वर्तकार प्रदर्शन के लिए कोई नियोजना बनाते हुए नहीं देख पाते हैं बल्कि उसकी वर्णित वर्तकार की योजना भी स्वाभाविक रीति से उच्छ्वसित एवं उद्भाषित होती देखी जाती है। कवि की इस वर्तकार प्रक्रिया में भी हमें उसकी भावामिव्यक्ति की ही प्रधानता परिलक्षित होती दिखायी देती है। वर्तकार प्रदर्शन की नहीं। परन्तु किसी कवि की काव्य संरूपित में वर्णित वर्तकारों को छटा का भाव काव्य-सौन्दर्य एवं साहित्यिक रचना की दृष्टि से किञ्चित् मात्र भी कम नहीं हुआ है। कवि की इस प्रकार की स्वाभाविक रूप से वर्णित वर्तकार योजना का स्वरूप हमें प्रसूताः उपमा रूपक सगुणक उत्प्रेक्षा स्फूर्तिशक्ति आदि वर्तकारों के उदाहरणों

में देखने की मिलता है। इनके अतिरिक्त कवि की भावीत्कर्ण साधना में विषय वस्तु का रूप, गुण एवं क्रिया वादि की तीव्रानुभूति कराने में कौन-कौन सी कवि कर्तारों के उदाहरण भी उपलब्ध हो जाते हैं जिनमें सन्देह, प्रान्तिमान, अतिशयोक्ति, स्मरण वादि कर्तारों की परिगणना की जा सकती है। परन्तु यहाँ हम अपने विषयान्तर्गत कविपय प्रसुत कर्तारों के उदाहरणों की ही प्रतिज्ञाया है इनकी सार्थकता से परिचित होने का प्रयास करेंगे। इस क्रम में सर्वप्रथम कवि के सर्वप्रिय कर्तार उपमा कर्तार का ही व्यवस्त विवेचन प्रस्तुत करेंगे।

#### उपमाकर्तार एक शास्त्रीय विवेचन

उपमा का शाब्दिक अर्थ है समीपता से किया गया मान। दो पदार्थों के साधर्म्य की उपमान उपमेय भाव से कथन करने की उपमा कहते हैं। क्योंकि उपमेय और उपमान में सादृश्य विधान करने वाले समान धर्म का सम्बन्ध ही उपमा कहलाता है। अतिसार यह है कि उपमा कर्तार के अन्तर्गत उपमेय में उपमान के समान धर्म का ज्ञान निहित रहता है।

उपमा कर्तार के चार प्रसुत रूप होते हैं-

उपमेय, उपमान, साधारण धर्म एवं वाचक शब्द। जब इन सभी चीजों का समन्वित अन्वय सम्पूर्ण रूप से विवेकित दिखाई देता है। वहाँ 'पूर्णोपमा' मानी जाती है। यदि उपरोक्त चीजों में से किसी एक की कमी देखा जाता है, वहाँ 'अपूर्णोपमा' मानी जाती है।



### उपमालंकार का प्रयोग

परमानन्द शायर के अन्तर्गत हमें पूर्ण एवं सुख दोनों प्रकार के उदाहरणों के दर्शन ही जाते हैं। "दागर" के कवि की रचना में उपमालंकार के उदाहरण सर्वाधिक रूप में मिले जाते हैं, किन्तु वे कतिपय प्रमुख उदाहरणों विनोदित हैं :

एन में शिप रही ज्यों दामिनी ।

नंद कुँवर के पाँखे ठाढ़ी सीतल राधा दामिनी ॥

बास बसा ज्यो रंग रक्त परध सुहाई दामिनी ।

परमानन्द त्यागी रस नीने प्रेम सुगित गयानिनी ॥१

### जलंकार विनयन

उपसृष्ट उद्भावना में कवि के पूर्णापना विधान के अन्तर्गत राधा के अनुपम सौन्दर्य का दिग्दर्शन कई ही मनोहारी ढंग से हुआ है। कवि ने राधा के सौन्दर्योपादन के लिए प्रकृति के जिस उपमान का चयन किया है, उसके वर्ण्य वस्तु के प्रत्यक्षीकरण का तो परिणय प्राप्त होता है, साथ ही कवि की प्रयोगातुल्य कल्पना शक्ति एवं उसके सहृदय मनी-भाष चित्रण शक्ति का भी जीव जाता है।

जो प्रकार सुसौपना जलंकार के एक उदा-  
हरण के अन्तर्गत राधा के सौन्दर्य प्रदर्शन में कवि ने कितनी मनोरम एवं उत्कृष्ट कल्पना का परिचय दिया है, जो स्वप्रकार है :

नव रंग कँसकी तन गाढ़ी ।  
 तब रंगुनि घुनरी कीड़े बन्धवधू सी ठाढ़ी ॥  
 नव रंग मदन गोपाल सात सौ प्रीति निरन्तर बाढ़ी ।  
 स्याम तपास सात उर लपटी कनक लता सी बाढ़ी ॥  
 सब जग हुन्दर नवल किशोरी कोंक कला गुन पाढ़ी ।  
 परमानन्द स्वाधी की जीविनि स्रु सागर मधि काढ़ी ॥ १

### वर्तकार विवेचन

उपर्युक्त उदाहरण में कवि ने राधा के रूप  
 हीन्दु की पाठ्यार्थ के समान प्रकट करने के लिए किस प्रकार के उपमानों  
 की संजीया है, सभी वह राधा की बन्धवधू की उपमा देता है कभी कनक  
 लता के समान चित्रित करता है। इस प्रकार कवि की वर्णन शक्ति अपनी  
 प्रभावपूर्ण बन गयी है जो कि वर्णन विषय का पाठकों के समान तनुप निम्न  
 उपस्थित कर देती है। कवि के चित्रण का हीन अन्तर्गत मनीस है और  
 आकर्षक है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कवि वर्णन विषय की स्वयं  
 चित्रण रहा हो और पाठक भी वह समझते लगते हैं, मानो वह प्रत्यक्ष  
 रूप से वर्णन विषय की चित्र ही देख रहे हैं। कवि की उपमारा कड़ी  
 सरस एवं चित्राकर्षक है। इस प्रकार की कृती रचनाओं से कवि का काव्य  
 मरा फटा है।

इन इन साहिबी के बदन ।  
 बसिहि मृदुल सुगंध सीतल कमल के से बदन ॥  
 नख चन्द चारु कटुप राखत बीति जगमग करन ।  
 उषुर कृन्तित कृन्त विहस्त परम कौतुक करन ॥  
 नद सुख मनमोह कारी विहल सागर तन ।  
 दास परमानन्द दिन दिन स्याम ताकी सरन ॥ १

### कलकार विवेचन

उपर्युक्त पद पूर्णाफमा कलकार का कूटा उदाहरण है, क्योंकि पद में उफमा कलकार के प्रायः सभी की प्रत्येकी का वर्णन किया गया है जो कि इस प्रकार है- साहिबी कर्पात् राधा के चरण उपोय हैं। कमल उपमान हैं, मृदुल, सुगन्ध, सीतल आदि शब्द सामान्य धर्म के परिचायक हैं, तथा "दे" शब्द वाचक धर्म का जीवन करता है।

### उत्प्रेक्षा कलकार : एक शास्त्रीय विवेचन

सागर हैं उत्प्रेक्षा कलकार के व्ययम करने से पूर्व उत्प्रेक्षा कलकार से परिचित होना आवश्यक प्रतीत होता है। काः प्राचीनिक रूप से दो शब्दों में उत्प्रेक्षा कलकार का परिचय इस प्रकार से है : उत्प्रेक्षा शब्द के निर्माण में तीन शब्दों ( उत् + प्र + क्साण ) का योगदान निहित है। जिसका अर्थ विशेषतः ऊपर से देखने से होता है,

जब उपमेय में उपमान की सम्भावना जल्दा कल्पना कर ली जाये तबका प्रस्तुत की वस्तुतः रूप में कल्पना की जाये। वहाँ उत्प्रेक्षा वर्तकार होता है। मन, मानी, मगई, मनु, जानी आदि जल्दा उनके समानार्थी शब्द रूप वर्तकार के वाक्क शब्द होते हैं। कहीं कहीं वाक्क शब्दों के आश्रय में भी उत्प्रेक्षा वर्तकार की प्रतिष्ठा ही जाती है। इस स्थिति में काव्यशास्त्रियों ने इसको प्रतीय माना जल्दा गम्भीरुत्प्रेक्षा की संज्ञा प्रदान की है। इसी प्रकार वस्तु, हेतु एवं फलोत्प्रेक्षा की श्रेणियों में विभाजित किया है।

### उत्प्रेक्षा वर्तकार का प्रयोग

परमानन्दसागर में उत्प्रेक्षा वर्तकार के उदाहरण निम्न प्रकार हैं :

झोली भीड़ तेरी लाल गिरिधर मानी चढ़ी कमान ।  
 देखत रूप छाँही लागी लीचन मनचिज बान ॥  
 करतस केतु बधर फुट दोने जबहि करत हों गान ।  
 सुरपति नारि सुनत रूप लोही पाके व्योम व्यमान ॥  
 कदपे कीटि वाहने करि ही या ब्रह्म की ठान ।  
 परमानन्द स्वामी रति पति नाथक मैतत ही जभिमान ॥१॥

### वर्तकार विभिन्न

उपलक्ष्यशब्द की रचना की प्रथम पंक्ति में ही उत्प्रेक्षा वर्तकार की आभा के दर्शन ही जाते हैं। लाल गिरिधर कर्णात्

प्रीकृष्ण की भाँति में बड़ी हुई कमान की संभावनाके वर्णन द्वारा कवि ने एक उत्कृष्ट उत्प्रेक्षा का परिचय दिया है। इस प्रकार की उत्प्रेक्षाओं से 'परमानन्द सागर' भरा पड़ा है। अर्तकार निरूपण में कवि ने अपनी रचना के अन्तर्गत प्रीकृष्ण और राधा की भाँति भाँति की उत्प्रेक्षाओं द्वारा बताया है। यही कारण है कि कवि की सम्पूर्ण रचना में उत्प्रेक्षाओं का ही सर्वाधिक रूप सुलभित हुआ है।

### उत्प्रेक्षा अर्तकार

दीऊ मिल पाई सखी देख कहाखी ।  
 फटत कहा दीखे गीषीजन नैन की सुत राखी ॥  
 त्याग्य न्याय यों राखत है मानो मन्द्र कहा खी ।  
 कृष्ण देख पर स्वेत पिछोरी सोभा देत है लाखी ॥  
 फन हरावत नैन विरावत ललित करत स्नाखी ।  
 मधुर सुर गावत केवारी परमानन्द निज दाखी ॥ १

### अर्तकार विवेचन

उक्त पद रचना की तृतीय पंक्ति के अन्तर्गत उत्प्रेक्षा अर्तकार का स्वरूप दर्शनीय है। कवि की उत्प्रेक्षाओं की महानता हमें इस रूप में देखने की मिलती है कि उनके प्रत्येक पद में अपनी आराध्या एवं आराध्या की अग्रेष्ठ उत्प्रेक्षाओं के परिप्रेक्ष्य में ही देखी हैं। ऐसे वर्णन विशेष द्वारा भक्त कवि ने पाठकों के समक्ष अपना भक्तिक कृत्य निकाल कर रख दिया है। कवि के उत्प्रेक्षा वर्णन के अध्ययन करने से ऐसा

वाचास अवश्य होता है कि कवि के मानस पटल पर राधा कृष्ण की कुल  
लीलाओं के कात्पनिक मनोहारी अभिनव दृश्य प्रतिफल वाञ्छा दित रहते  
हैं। इस प्रकार ही रत्नाई भक्त प्रवर महाकवि परमानन्द दास जी के  
महानतम कवि एवं भक्त कवि हृदय की परिनायक ही सिद्ध होती हैं।

वादति जानैद कैंद सुतारी ।

विधु बदनो मृग नखी राधा दासीदर की च्यारी ।

जाके रूप कल नहिं बावै गुन विनिन सुकुमारी ।

मानो कहु पायी धन बाहरि विध्या रच्यो संजारी ।

प्रीति परस्पर गंधि छुटे ब्रज जन ऐ विनारी ।

परमानन्द दास बलिहारी मानो सचि डारी ॥१॥

### वर्णन विवेचन

उपर्युक्त रत्ना वर्णन में कवि ने रूपक एवं  
उत्प्रेक्षाओं का समन्वित प्रयोग किया है। पद की वादि पैक्तियाँ रूपक  
बद्ध तथा मध्य एवं अंतिम पैक्तियाँ सुललित उत्प्रेक्षाओं से नियोजित की  
गयी हैं। इस प्रकार कवि को अपने वर्णन में पूर्ण सफलता मिल सकी है।

फिरीरा साधा को कटि बाधि ।

वे देखी बावत नैदानन नयन हृष्टमसर बाधि ॥

स्याम सुमग तन गौरज नैलित बाहि सला के बाधि ।

चलत पैदगति जाल मनोहर मानो नखा गुन गधि ॥

यह पद कमल जब ही प्राप्ता भये बहुत दिनन बाराधि ॥

परमानन्द रवाणी के कारन सुरमुनिधरत समाधि ॥ २

१- परमानन्दसागर पृ० १२८ पद ३७

२- .. पृ० १६१ पद ४६२

### बल्लकार विविचन

जैसा कि हम पूर्ववत् उत्प्रेक्षा युक्त पद के उदाहरण में विविचन कर चुके हैं कि भक्त हृदय में उसके काराग्य सदैव निवास करते हैं। यहाँ भी कवि की रचना की चतुर्थ पैरिचित में उत्प्रेक्षा बल्लकार के वर्णन में श्रीकृष्ण अपने बात सतावों के साथ कन्धे पर हाथ रखते हुए मँथर एवं मनीषर गति से नटवर की तरह चलते जा रहे हैं। पद में कवि कल्पना की महानता परिलक्षित होती है।

जा दिन ते वागिन जेतत देखी श्री कसौदा की झूत री ।  
तब ते गृह धुँ नाचो दूट्यो जैसे कंचो झूत री ॥  
बलि विछात वारिब लीपन पट राजस काजर रेल री ।  
रक्खा दे मरई सेत मनी बलि गीसक के वेष री ॥  
राजस है है बुध की पतियाँ जामग जामग होत री ।  
मनी महातम मन्दिर में परी स्तनन की जोत री ॥  
प्रवनन उत्कंठा रखत सदाई जन मोलत जोत तुलारयरी ।  
मानी हनुमिनी कामना मुजी पुरन चन्द्रहि पाय री ॥  
परमानन्द देत तुन्दस्तन जानन्दउर न समाय री ।  
चले प्रवाह नयन मारग हवे कापे रोवयी जाय री ॥ १

परमानन्ददास विरचित इनकी पद ऐसे हैं जिनमें कि भक्ति भिन्न बल्लकारों का समन्वित रूप देखने को मिलता है। उपर्युक्त पद भी इसी प्रकार के उदाहरण का एक उत्कृष्ट प्रतीक मात्र है, पद की द्वितीय पैरिचित में उदाहरण एवं तृतीय पैरिचित में इसके बल्लकार का प्रयोग मिलता है। पद की चतुर्थ पैरिचित में उत्प्रेक्षा तथा प्रथम पैरिचित में

पुनः कवि प्रकाश की बाधा दृष्टिगत होती है। तत्परचातुं शब्द पवित्र एवं वष्टम पवित्र के बादि भाग में उत्प्रेक्षाओं की फिर से पुरावृत्ति की गयी है। इस प्रकार सम्पूर्ण पद रचना में कर्तकारों का एक जाल सा बिछा हुआ है। कवि के रचना कौशल एवं उसमें निहित कर्तकारों की प्रायोगिक योजना का ऐसा श्रेष्ठ उदाहरण साधारण कौटिक के कवि की रचना के अन्तर्गत नहीं हो सकता। इस प्रकार के पदों से विदित होता है कि परमानन्ददास जी की साहित्यिक दृष्टि भी अत्यन्त गहरी थी। मधुत हृदय के साथ साथ उनके हृदय में साहित्यिकता की भी कोई कमी नहीं थी। कवि की रचना के अन्तर्गत इस प्रकार के एक दो नहीं बल्कि तैक उदाहरण सत्य सुलभ हो जाते हैं जो कि साहित्य की कर्पाटी पर पूर्णतया सरे उतरते हैं। निःसन्देह कवि की रचना में भवित भावना एवं साहित्यिकता का मणिकर्जन प्रयोग मिलता है।

जो ही गोपाल बाल लह जायत ।  
बाधुरी मुरति का मोहन भायत ॥  
हृष्टि केस मुदेस बदन पर बीच बीच जलज्वर रहे ।  
नानी कमल पत्र पर मोती तैज निरुट खसील गहे ॥  
गोपी नेत्र भृंग लस लक्ष्म उडि उडि परत बदन माँही ।  
परमानन्द दास लस लोभी बति बाहुर कहँ जाही ॥ १

रूप सौन्दर्य वर्णन के अन्तर्गत भी कवि श्री परमानन्ददास जी प्रोक्षणा की नयी नयी उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। उनके कौशल बदन पर जल कण कमल पत्रों पर मोतियों जैसे प्रतीत हो रहे हैं। उन जल कणों के पास ही तैज रूपी नेत्र हैं, जो कि उनका



मान करते हुए वे दृष्टिगत होते हैं।

सारांशतः 'परमानन्दसागर' के अन्तर्गत उत्प्रेक्षा कर्तार का अध्ययन एवं अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि कवि उत्प्रेक्षाओं का धनी है। उत्प्रेक्षाओं उसका सर्वाधिक प्रिय कर्तार होता है। दूसरे शब्दों में कवि की उत्प्रेक्षाओं का सम्राट् भी कह दिया जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। क्योंकि श्रीकृष्ण राधा एवं समस्त गौप गौपिकाओं से सम्बन्धित प्रायः समस्त कार्य कलाओं के वर्णन विशेष में कहीं न कहीं उत्प्रेक्षाओं का समावेश अवश्य मिलता है। प्रत्येक स्थल पर कवि ने प्रसंगानुसृत उत्प्रेक्षाओं के स्वीयोजन से अपनी काव्यकला की अत्यन्त प्रभावोत्पादक, सुन्दर सत एवं बोध मय बना दिया है। कवि की उत्प्रेक्षाओं की महानता हमें इस रूप में भी देखने की मिलती है कि कवि ने जहाँ भी उस कर्तार का प्रयोग किया है, वहाँ काव्य विलसता के दर्शन नहीं होते।

रूप कर्तार : एक सांख्यिक विवेचन

जब उपमेय में उपमान का कभी रूप है आरोप किया जाता है, वहाँ रूप कर्तार होता है। 'वस्तुनिष्ठ' कर्तार में भी उपमेय में उपमान का आरोप किया जाता है, पदार्थ उसमें उपमेय का निषेध करके उपमान का आरोप किया जाता है। रूप में उपमेय का निषेध किया जाता है। रूप कर्तार के प्रसृतः ये हैं इस प्रकार हैं :

- १- सावयव ( हांगरूप ) कर्तार
- २- निगम रूप कर्तार
- ३- परम्परित रूप
- ४- तादृश्य रूप कर्तार आदि

### (१) सावयव रूपक वर्तकार

व्ययों के स्रष्टि उपमेय में उपमान के आरोप किये जाने में सावयव रूपक वर्तकार होता है। अर्थात् जिस शब्द योजना द्वारा कवि उपमेय और उपमान के विविध वर्गों के साथ उनके पारस्परिक आरोपण की ओर प्रवृत्त होता है। वहीं सांगरूपक वर्तकार की उद्भावना हो जाती है।

### (२) निर्गुण रूपक वर्तकार

निर्गुणशब्द निरवयव का पर्याय है। जिस वर्तकार- योजना के अन्तर्गत उपमेय एवं उपमान का वर्णन होते हुए भी उनके वर्गों के सम्बन्ध में कुछ भी वर्णन न किया जाय अथवा व्ययों के स्रष्टि केवल उपमान का उपमेय में आरोप किया जाय वहीं निरवयव रूपक वर्तकार होता है।

### (३) परम्परित रूपक वर्तकार

परम्परित शब्द परम्परा शब्द से बना है, जिसका अर्थ क्रमबद्ध होने से लिया जाता है। यहाँ एक आरोप दूसरे आरोप का कारण होता है यहाँ परम्परित रूपक वर्तकार होता है। उपमेय में किये गये एक आरोप दूसरे आरोपों के आधारित होता है। अतः परम्परित रूप है एक आरोप दूसरे आरोप का कारण होता है। इसके दो भेद होते हैं :  
(१) श्लिष्ट शब्द मूलक (२) वश्लिष्ट शब्द मूलक । श्लिष्ट शब्द मूलक में श्लिष्ट शब्दों का समन्वय शब्दों के आधारित होता है।

### (४) तादृश्य रूप कर्तार

उपमेय को उपमान को वहाँ भिन्न रूप (उपमान को ही द्वारा रूप ) कहा जाता है। वहाँ तादृश्य रूप कर्तार होता है। यह भी दो प्रकार का होता है :

१- अधिक तादृश्य

२- न्यून तादृश्य

वसिय करत चहुँ वीर अरु नयन ताप हरि लैत ।

राधा सुख यह उमर सँसै सतत उदित सुख पैत ॥

यहाँ ' उमर ससि ' पद द्वारा भीराधिका जी के मुत- उपमेय को उपमान- चन्द्रमा से भिन्न चन्द्रमा कहा गया है। ' सतत उदित ' के कथन से यह अधिक तादृश्य है।

### रूप कर्तार का प्रयोग

परमानन्द सागर के वर्तमान उपमा वीर उत्प्रेक्षा कर्तारों के वर्णित उक्त समीकरण के रूप कर्तारों का प्रयोग अधिकाधिक रूप से देने को मिलता है। उपमा, उत्प्रेक्षा वीर रूप तीनों कर्तारों के प्रयोग में कवि की वसिष्ठ कितनी अधिक दिखाई देती है उतनी अन्य कर्तारों के साथ नहीं दिलायी देती है। परमानन्दसागर के व्ययन करते से विदित होता है कि रूप कर्तार कवि का सर्वाधिक प्रिय कर्तार है। कवि की रचना में कितनी ही ऐसी

यह है जिनमें कि राधा, कृष्ण की सुगंध सेलावी के जगमगाते बिन्दु एक  
 एक कर्तार की प्रतिच्छाया में चित्रित किये गये हैं। छोटे छोटे निर्गुण  
 और परम्परित रूपों के परिवेश में तथा बड़े बड़े रागिरूपों के सुष्ठुतम  
 प्रयोग में कवि ने जिस कौशल का परिचय दिया है वह कवि की रचना के  
 निम्नोक्त उदाहरणों में दर्शनीय है।

### रागिरूप कर्तार

सोछे सीस सुहावनो दिन डुल्ले तेरे ।  
 मणि मोतिन को छेरा सोहे बखियाँ का भर ॥  
 मुल पुन्यो को चंदा है तुवतासुत तारे ।  
 उनके नखन कौर है सब देखन हारे ।  
 पाग लगे प्यारी मल खागरी का बारै ।  
 कम नागरी गोपी से सब देखन जाई ॥  
 दुसलिन तेन सुहाग जो सुलह तर नाथी ।  
 नवलाल को छेरा 'परमानन्द' प्रभु नाथी ॥१॥

### कर्तार चित्रण

उपर्युक्त यह रचना में रागिरूप कर्तार का  
 सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। 'छातर' के इस पद में परमानन्ददास जी ने  
 प्रोक्तृष्ण के सेहरे का गायन वाणीवाक्य रागिरूप कर्तार के वाभावयी  
 परिवेश में ऐसी प्योवारी ढंग से किया है जो कि सहृदय पाठकों की सहज  
 हीसुगम किये बिना नहीं रहता । यह श्रम का गायन करने से रागिरूप

वर्तकार के सभी अवयव स्पष्टतः बुद्धयोग्य ही जाते हैं । ' श्रीकृष्ण के लुल की उपमेय रूप देकर ' मृग्यो की चेता है ' शब्दों द्वारा उपमान का प्रस्तुतीकरण किया है। इसी प्रकार ' उनके नयन कभीर हैं ' शब्दों ' में ' नयन ' उपमेय तथा कभीर उपमानों का आरोपण किया है। पर इस में कवि की व्यञ्जना शक्ति कवि उद्देश्य को चित्रित करने में पूर्णतया सफल हो सकी है।

शोभित नर कुंज की हवि मारी ।

वदन्त रूप तमातु शो तपटी कनक बैलि छुमारी ॥

वदन सरीज दृढ उहें तोचन निरस्त हवि सुकारी ।

परमानन्द प्रभु मधु मधुप है श्री वृणमान हुता कुलवारी ॥१

### वर्तकार विवेचन

' वार्ता ' के अवतरण पर की वैतिम वैति परम्परित रूपवर्तकार की ओतक है। उपमेय प्रभु श्रीकृष्ण की मधुप का आरोपण किया गया है और वृणमान हुता कर्मात् राधा की कुलवारी है आरोपण किया है। मधुप का कुलवारी सर सुग्ध एवं बाधित रहता है। इस प्रकार एक वारीप ( मधुप ) दूसरे वारीप ( कुलवारी ) पर बाधित प्रतीत होता है। अतः एक- वैति में कार्य- कारण रूप है वारीपों की एक सुन्दर परम्परा का निर्वाह परित्याज्य होता है। पर की द्वितीय वैति में भी इसी प्रकार का रत्ना- वैतिष्ट्य होने के कारण द्वितीय और अन्त में परम्परित रूप का सुन्दर एवं सफल प्रयोग हुआ है।

आज नान कलीकन राधा ।

पदन गोपास वसन्त लेख है नागर रूप काधा ॥  
 ति पि सुधवार पंचमी मंगल रिह कृष्णकार बाहं ।  
 बगल विनीतन फरध्वज की जई तई फिरत दुहाहं ॥  
 मन्मथ राज विधासन बैठे तिलक फिरोमल दीनी ।  
 जव बँवर सुनीर रंत धुनि विकट बाप कर सीनी ॥  
 बली छली तहाँ लेख जेहि हरि उफावत प्रीति ।  
 परमानन्ददास को ठाकुर जानत है सब रीति ॥ ९

### अंकार विवेचन

उपर्युक्त एक रचना की प्रथम पंक्ति के मही-  
 त्सव राधा शब्द निर्गल्य अंकार के परिचायक हैं क्योंकि राधा उपमेय  
 और महीत्सव उपमान में अपेक्षित दृष्टिकोण होता है और उनके लिंग प्रत्ययों  
 के विषय में कोई तर्ज नहीं की गयी है। दूसरी बात यह भी है कि  
 उपमान ( महीत्सव ) का उपमेय ( राधा ) शब्द में लारीप किया  
 गया है। यह के अन्तर्गत कवि ने मधु मास ऋतु के सुन्दर वर्णन के साथ  
 साथ राधा श्रीकृष्ण की सुलभ-श्रीरा का भी दिग्दर्शन किया है।

माथें लोहि हरि की बानन्द केति ।  
 पदन गोपास निरुत कर बाजे ज्यों मास त्यों लेति ॥  
 कमल नैन की पुजा मनीहर अपने कंठ ले लेति ।  
 प्रेम बिबल बरु सावधान तूँ हूँ अलख सकल ॥  
 तहन तमास के नंद के नंदन प्रिया करु की बेली ।  
 यह सफटानी दास परमानन्द मुहुत पायन हों देखी ॥ २

१- परमानन्ददास पृ० ११० पद ३३१

२- " पृ० २३१ पद ६६२

### वर्तकार विवेक

प्रस्तुत पद की पैम पैमित के अन्तर्गत परम्प-  
रित रूप वर्तकार की भाषा परिलक्षित होती है। ' नंद के नंदन '   
 अर्थात् श्रीकृष्ण जी उपमेय रूप में 'तमसा तमास ' उपमान है बारीफि  
है, उधर ' प्रिया ' अर्थात् राधा उपमेय की ' कनक की बेली '   
 उपमान है वर्तकृत करते हुए बारीफि किया है। पद पैमित में एक बारीप  
दुधरे बारीप का कार्य- कारण रूप में बारीपी के परम्परित है और एक  
बारीप ' कनक बेल ' दुधरे बारीप ' तमास ' के वाधित रूप में भी  
चिन्तित की गयी है। इस प्रकार कवि ने पद की एक ही पैमित द्वारा  
परम्परित रूप वर्तकार के स्वल्प को सुलभित करते हुए अपनी काव्य कौशल  
का सुन्दर परिचय दिया है।

### रुक्मातिशयोक्ति एवं वतिशयोक्ति वर्तकार : एक आलोच्य विवेक

रुक्मातिशयोक्ति वर्तकार के अन्तर्गत उपमेय  
का वर्णन कहे केवल उपमान के कथन द्वारा ही उपमेय के अस्तित्व का  
वर्णन किया जाता है।

रुक्मातिशयोक्ति और रूप वर्तकार में यही  
अन्तर होता है कि रूप में उपमेय और उपमान दोनों का कथन होता है।  
जबकि रुक्मातिशयोक्ति एवं वतिशयोक्ति में केवल उपमान के कथन द्वारा  
उपमेय का निगर्ण कर लिया जाता है।

वतिशयोक्ति के अन्तर्गत कवि किसी उक्ति  
को इतना बढ़ा बढ़ा कर वर्णन करता है कि वह लौक सीमा का उल्लंघन

कर जाता है वहीं वतिशयोक्ति वर्तकार माना जाता है। वतिशयोक्ति वर्तकार में उपमान के साथ उपमेय का जोष हो जाता है। क्योंकि उपमान के द्वारा ही उपमेय का बोध होता है।

किसाकि हम वर्तकारों के संघर्ष पूर्व में ही प्रकाश डाल चुके हैं कि 'परमानन्ददास' जी के काव्य में सादृश्यसूक्त वर्तकारों में से सर्वाधिक रूप में ही उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक वर्तकारों के चित्र ही अधिकतर देखने को मिलते हैं। इन वर्तकारों के चित्रण में कवि ने जिन उपमानों का सहारा लिया है वह प्राकृतिक परिवेश के आधार पर परम्परागत ही हैं, परन्तु उनके चित्रण में कवि की पूर्ण भावानिव्यञ्जना शक्ति का उत्कृष्ट स्वरूप हमारे समक्ष आ जाता है। कवि की रूपकातिशयोक्तियों का विकास प्रांगानुकूल एवं स्वाभाविकता की पृष्ठभूमि में हुआ है, किन्तु इसके साथ ही कवि की वतिशयोक्तियाँ और भी प्रभावशाली तथा मनीषारी बन पड़ी हैं। इनके अध्ययन से कवि की कल्पना शक्ति की सूक्ष्म गहनता एवं महानता का परिचय प्राप्त हो जाता है। इन तथ्यों को सफलता हम कवि के निम्नोक्त उदाहरणों के माध्यम से देख सकते हैं। सर्वप्रथम हम रूपकातिशयोक्ति के कतिपय प्रमुख उदाहरणों में कवि की उद्भावना से परिचित होने का प्रयास करेंगे।

#### रूपकातिशयोक्ति वर्तकार का प्रयोग

परमानन्द सागर के अन्तर्गत रूपकातिशयोक्ति वर्तकार के उदाहरण निम्नोक्त हैं :

प्रदूषी नव हूँन की रिंगार ।

कीरति कृति जीतिरि कन्या सुन्दरता की सार ॥



नख चित रूप कहाँ लीं वसनी कोटि पवन बलितार ।

परमानन्द वृत्तान नन्दिनी जोरी नन्द हुतार ॥ १

### वर्लकार विवेचन

प्रस्तुत रचना की प्रथम पंक्ति के अन्तर्गत 'उपमान' सिंगार 'शब्द राधा के लिए तथा 'नव कुंज' (उपमेय) शब्द श्रीकृष्ण के लिए प्रयुक्त प्रतीत होते हैं। अतः उपमान द्वारा उपमेय की तुलना की प्रतीति होती है। अतः उपमान द्वारा उपमेय का निगूढ सिद्ध होता है। पर रचना की द्वितीय पंक्ति में 'कन्या सुन्दरता की चार' से 'राधा' के अवतरण का सत्यापन सिद्ध होता है। पर की तृतीय पंक्ति में राधा के रूप सौन्दर्य की अतिशयोक्ति का आभास होता है तथा अंतिम पंक्ति में कवि ने राधा और कृष्ण की युगल सीता का रहस्योद्घाटन कर दिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने राधा और श्रीकृष्ण के अवतरण का रहस्योद्घाटन कितने कौशल के साथ किया है इसके रूपातिशयोक्ति वर्लकार के नैसर्गिक सौन्दर्य चित्रण का सज्जन एवं मध्य स्वल्प और क्या ही सकता है ?

जागो जागो मेरे जगत उजियारे ।

कोटि नदन पारों मुखानि पर कमल नयन लालिन के  
तारे ॥

सुरभि बूझ गोपास निरखै ते जसुना के तीर जाकी  
मेरे प्यारे ।

परमानन्द कस्त नंदरानी दूर जिन जाकी मेरे ब्रज  
रत्नार ॥ १

-----

१- परमानन्दतानर पृ० ५५ पद १६६

२- .. पृ० २०६ पद ५६२

### वर्तकार विवेचन

प्रस्तुत पद की प्रथम पंक्ति से ही स्पष्टाति-  
शयोक्ति वर्तकार की अवस्थिति का परिचय मिल जाता है। कवि ने उपमय  
श्रीकृष्ण का निगूढ कहे हुए उपमान 'कल उजियारे' शब्दों द्वारा  
हो उपमय श्रीकृष्ण के अस्तित्व का विवरण प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार  
द्वितीय पंक्ति में 'कल नयन बालिन के तारे' शब्दों द्वारा स्पष्टातिशयोक्ति  
वर्तकार की ही सुरावृत्ति प्रस्तुत की है। इस प्रकार एक ही पद में एक जगह  
दो बार दोहो भी अधिक वर्तकारों की वावृत्ति सुरावृत्ति 'परमानन्दसागर'  
के अन्तर्गत इस तथ्य की भी पुष्टि करती प्रतीत होती है कि कवि हृदय  
वर्षे कष्टदेव की वर्षा काव्य-वाणी द्वारा स्तुति करते करते कहीं भी  
लिखित नहीं दिखाई देता ।

### अतिशयोक्ति वर्तकार का प्रयोग

परमानन्द सागर में अतिशयोक्ति वर्तकार  
के उदाहरण निम्नीवृत्ति हैं :

हगर पल मोवरधन की बाट ।  
कलत बीच मिलिग मोहन जहाँ गोधन के ठाट ॥  
चलि री रहो तोहि जाय मिलाऊँ सुन्दर बदन सरीज ।  
कल नयन के एक रूप पर वारी कीटि फौज ॥  
पाहुनी एक अनुपम बार्ह बान गाम की ग्वार ।  
परमानन्द स्वामी के ऊपर सखहु डारौ बार ॥ १

### कलंकार विवेचन

उपर्युक्त रचना की चतुर्थ पंक्तिमें कतिशयीवित्त कलंकार का समावेश रहे ही सुन्दर और सुख वातावरण में हुआ है। कवि ने उपमान और उपमेय का कीद प्रदर्शित करते हुए अपनी कवन की क्षमता बढ़ाकर चित्रित किया है कि वह लोक सीमा का अतिक्रमण कर गया है। श्रीकृष्ण के एक ही रूप पर करोड़ों मनोर्जों का न्यौछावर करता वह तथ्य का धात्वात् प्रमाण है। अतः कवि अपनी वांछित वर्णित कलंकार वर्णन में पूर्ण सफल दिखायी देता है।

बदन निहारति है नवरात्री ।

कौटिक काम एव कौटिक चन्द्रमा, कौटिक रवि वारति  
जिय जानी ॥

जिव निरूपि जाकी पार न बाधत छेण सहस गायत  
रसना रीति

गोद खिलवति महरि ज्योदा परमानंद किए बलि-  
हारी ॥ १

### कलंकार विवेचन

पद की द्वितीय पंक्ति में भी कवि ने कतिशयीवित्त के प्रयोग में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। यौदा जब श्रीकृष्ण के सुन्दर मुख को निहारती है, तब उसका हृदय करोड़ों कामदेव, सेकड़ों चन्द्रमा तथा करोड़ों सुखों की न्यौछावर करने की उत्तुक्ता एवं उत्कंठा

से भर जाता है। इस प्रकार के वर्णन में हीमा उत्सर्जन का परिवर्तित रूप स्पष्टतः प्रतिदिष्ट हो जाता है जिसमें कि कवि-कर्म पूर्णतः समाप्त है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि "परमानन्द सागर" में कविकल्पन ऐसे हैं जहाँ कवि के वर्णन में कल्पा-विलयविविध और विलयविविध उत्कर्षों की छटा अनुपम बन गयी है।

### विभावना उत्कर्ष : एक सांख्यिक विवेक

जहाँ कारण के आवेग में कार्य उत्पत्ति होने का वर्णन हो, वहाँ विभावना उत्कर्ष होता है।

विभावना का कार्य कारणान्तर ( अन्य कारण ) की कल्पना करता है। अर्थात् कारण के न होने पर कार्य का होना अभिप्रेत है, कल्पना की जाती है। विभावना के हः रूप होते हैं :

- प्रथम विभावना- बिना कारण के ही कार्योत्पत्ति का वर्णन होता है।
- द्वितीय विभावना - अपूर्ण कारण से भी कार्य की उत्पत्ति का होना ।
- तृतीय विभावना- प्रतिबन्ध के रहते हुए भी कारण से कार्योत्पत्ति ।
- चतुर्थ विभावना - कारण से कार्य की उत्पत्ति
- पंचम विभावना - विरुद्ध कारण से कार्योत्पत्ति का वर्णन
- षष्ठ विभावना - कार्य से ही कारण की उत्पत्ति का वर्णन

### विभावना कर्तकार का प्रयोग

परमानन्द सागर के अन्तर्गत विभावना कर्तकार की अवस्थिति निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा द्रष्टव्य है :

दिन दिन तोस लागे नातो ।  
 मसुरा बसत गोपाल पियारी प्रेम कियो छठिपाली ॥  
 स्तनी दूर तु बाधत नाहिन मन कीरे ठाँ रातो ।  
 मदन गोपाल हमारी प्रप की बालत तात्नि मातो ।  
 विरहा विधा अब जास लागी बंद भयी अब तातो ।  
 परमानन्द स्वामी के बिहारे भूति गई अब सातो ॥ १

### कर्तकार विवेचन

प्रस्तुत पद रचना में श्रीकृष्ण के वियोग से गोपियों की चन्द्रमा की उष्ण प्रतीति होता है। यहाँ कारण है विरह का रसोत्पादक का होना बिद्ध होता है। अतः अष्ट विभावना का आभाव होता है। इसी प्रकार निम्नीकृत पद में भी चन्द्रमा की किरणें सूर्य की किरणों के समूह लगने से अष्ट विभावना का आभाव होता है। इसी प्रकार निम्नीकृत पद में भी चन्द्रमा की किरणें सूर्य की किरणों के समूह लगने से अष्ट विभावना की ही प्रतीति होती है। इसी प्रकार के विभावना कर्तकार के अन्य उदाहरण भी निम्न प्रकार से प्रस्तुत किये जा सकते हैं :

ग्रन्थ की बीरे रीति नई ।

प्रातः सवे वर ताहिनि सुनिया प्रति गृह चलत रहै ।

ससि की किरन तरनि सम लागति जागत निरा नई ।

उद्भट मुप मकर केतन की बाजा होति नई ।

वृन्दावन की भुमि मावती ग्वाल्तु हाँडि दई ।

परमानन्द खापी के बिहारे विधि कहु बीर ठई ॥

### वर्तकार विविध

प्रस्तुत पद की तृतीय पंक्ति द्वारा विभावना वर्तकार की अवस्थिति दर्शनीय है। जहाँ अन्य कारण की कल्पना की जा रही है। ( चन्द्रमा की किरणें सूर्य की किरणों के समान उष्ण प्रतीत हो रही हैं। ) अतः विभावना वर्तकार है।

परमानन्द सागर में विभावना वर्तकार के बहुत से उदाहरण विश्व के पदों के रूप में अर्पित हैं। उन पदों के पढ़ने से कवि की कल्पना का उत्कर्ष दिगदर्शित होता है।

### अन्योक्ति वर्तकार : एक शास्त्रीय विविध

शब्द की शब्दों के मेल से अन्योक्ति बना है।  
अन्य + उक्ति जिसका अभिप्राय है दूसरी उक्ति । इसके अन्तर्गत किसी प्रसंग को सीधे रूप में न कह कर अन्य किसी के माध्यम से वर्णन करने की ही अन्योक्ति कहते हैं।

### कन्योचित कर्तकार का प्रयोग

परमानन्द सागर में कवि की कूठी कन्यो-  
चित्तियों के उदाहरण निम्नोक्त प्रकार से द्रष्टव्य हैं :

तुमको टेर टेर में सारी ।  
कहाँ जो ऐ कबलीं मा मोहन तेरी न शक तुम्हारी ।  
भूख पारी जावत मारग में बर्यो हूँ मैं न पेही पायी ।  
झुकत झुकत यहाँ तौं जाई सब तुम केतु बजायी ॥  
देखो मेरे कम को फीना उर को कबल पीनी ।  
परमानन्द प्रभु प्रीति जान के धाय वालिगन कीने ॥ १

### कर्तकार विवेचन

उक्त पद में परमात्मा के लिए वात्मा की  
तोज करने का प्रस्ताव्य भाव प्रदर्शन है। गोपियों के भाव भक्त स्वरूपा  
वात्मिक भाव उनके छष्ट पैव श्रीकृष्ण के प्रति वर्णित हैं, जो कि उनके  
स्व नाम ईश्वर रूप हैं। कवि की कन्योचित का भाव वर्णन आध्यात्मिक  
दृष्टि से उत्कृष्ट प्रभावयोग्य है।

इसी प्रकार "सागर" से कन्योचित्तियों के  
कीर्ति मार्मिक चित्तों की व्यंजना हुई है। क्या-

बे हरिती हरि नोद न जाई । २

कवि ने हरिती शब्द राधाके लिए प्रयोग

१- परमानन्दसागर पृ० २२३ पद ६४०

२- " पदपु० ८२२

किया है। अतः यहाँ अन्योन्यवर्तकत्व है। 'तामर' में इस प्रकार के जोड़ी-जोड़े वर्णन मिलते हैं।

### स्मरण वर्तकार : एक शास्त्रीय विवेचन

पूर्वावृत्त वस्तु के समान ही किसी अन्य वस्तु के देखने पर उसकी पुनः स्मृति के कथन करने को स्मरण वर्तकार कहते हैं। इसके अन्तर्गत पूर्व परिचित वस्तु ( पहले देखी गयी हो या बाद में ) को उसी वस्तु का कालान्तर में उसी के समान वस्तु के देखने पर ही स्मरण वर्तकार माना जाता है। सादृश्य वस्तु की अनुपस्थिति में भी स्मरण हो जाता है। यहाँ स्मरण वर्तकार न मानकर स्मृति की व्यञ्जना मानते हैं। काव्याचार्यों का कथन है कि यहाँ स्मरण वर्तकार की ध्वनि नहीं होती ।

### स्मरण वर्तकार का प्रयोग

परमानन्दशास्त्री के अन्तर्गत गोपी विश्व भाषा के विषय में स्मरण वर्तकार का प्रयोग अधिकाधिक रूप में मिलता है। इस प्रकार के कतिपय उदाहरण निम्नोक्त हैं :

फुन्नी बंद देखि मृगवनी बाघी की मुख धुरति करे ।

रास बिलास संभारति पुनि पुनि सोस कोरि बहू नैन

धरे ॥

सोई दिन बहुरि कबहि करिहि रहसि बाँह कर कम्त

धरे ॥



परमानंद स्वामी के विहारे मलिन वदन वरु हृदय बरे ॥ १

### कलंकार विविचन

उपर्युक्त रचना में कवि ने गोपियों की वियोग की दशा का एक मार्मिक एवं हृदयशाही स्मृति चित्र सङ्कटय पाठकों के मानस फल पर वंशित किया है। पूर्णिमा के चन्द्रमा को देखकर मृगयत्री क्योंकि राधा चन्द्रमुखी श्रीकृष्ण की स्मृति करने लगती है। उस स्मृति-मुद्रा में राधा के काल्पनिक एवं वास्तविक कार्य कलापों के चित्र प्रस्तुत करने में कवि पूर्णरूपेण सफल सिद्ध हो सका है। साहित्यिक दृष्टिकोण से कवि की वांछित कलंकार निरूपण ऐसी अत्यन्त ही मार्मिकता के द्वारा उद्घाटित करती है।

स्मरण कलंकार के अन्य उदाहरण निम्नोक्त

है :

चंद में देखी मोर झुल्ट की ।

०      ४

परमानंद लागी ना टूटे लाज कुवा में पटकी ॥ २

### कलंकार विविचन

राधा को चन्द्रमा दीख जाने पर ही श्रीकृष्ण ( मोर झुल्टधारी ) का चित्र उसके मानस फल पर वंशित हो जाता है।

१- परमानंद लागी पृ० ३३६ पद ६३०

२-                      ..                      पद ३७४

इस प्रकार की प्रक्रिया समानधर्मी ( चन्द्रमा ) को देखने से स्मृति के आधार पर ही होती है। कवः स्मरण कर्तकार है।

परमानन्दसागर के वृत्तगंत गोपी विरह के पदों में स्मरण कर्तकारों का प्रयोग मिलता है। इस कर्तकार के प्रयोग में कवि की वर्णन शैली का स्वाभाविक विकास क्रम विधिवत बना रहता है। उसमें किंचित् मात्र भी कृत्रिमता दिखाई नहीं देती है।

स्वभावोक्ति कर्तकार : एक शास्त्रीय विवेचन

बालक वादि की स्वभावगत चेष्टा तथा प्राकृतिक दृश्य के अपस्कारपूर्ण वर्णन की स्वभावोक्ति कर्तकार कहते हैं।

स्वभावोक्ति कर्तकार का प्रयोग

परमानन्द सागर के वृत्तगंत श्रीकृष्ण की बाल चेष्टाओं को लेकर कवि ने बड़ी बूझी स्वभावोक्तियों का उर्जन दिया है। कवि की कविप्रिय मनीषा ही सर्व महत्वपूर्ण स्वभावोक्तियों के उदाहरण चित्र निम्नोक्त हैं :

रहि ही ग्वालि जीवन मदमातो ।

धरे झगन पैगन से लातहि कत से उईन लगावति लातो ।

सोभत है अवधो राख्यो है, नान्ही उक्त दूध की दाती ।

लेखन है, धरु बाय बाफी, डोलति कहा स्त्री स्तरातो ।

उठि चली ग्वालि , लात लागे रोवन तब जलमति त्याई

बहु पातो ।

वानन्द जोट दे वर फिरि वाहं नैन ति सुझावत । १

### वर्णन विवेचन

प्रस्तुत रत्ना में कवि ने वीकृष्ण की शैलीय चैष्टाओं एवं क्रिया-कलापों का सुन्दर वर्णन किया है। रत्ना की द्वितीय तृतीय एवं चतुर्थ पैधितियों में ' लीजत है खवही राखी है ' ' डंगन मंगन ' ' वादि शब्दों द्वारा कवि ने स्वभावोक्तियों के मनोरम चित्र प्रस्तुत किये हैं।

वातविनोद ही विभावत ।

सुत प्रति विम्ब फरिखी की करि हलसि पुटलवन धावत ॥

कमल नैन माखन के कारन करि करि छैन बतावत ।

सब्ब जोरि बोल्यो जासत सुत प्रगट बन्म नहि बावत ॥

कोटि प्रलाप सपुट की मदिमा सिद्धता माहि दुरावत ।

परमानन्द स्वामी मन मोहन जगुमति प्रीति बढ़ावत ॥ २

### वर्णन विवेचन

उपर्युक्त रत्ना में कवि ने स्वभावोक्ति वर्णन का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है। कवि ने वात कृष्ण की चैष्टाओं की स्वाभाविक पृष्ठभूमि में निहित किया है। शिष्ट का वपन विम्ब कहना उत्सुकता के साथ पेटनों के बल पीढ़ना, मक्खन प्राप्ति हेतु सक्तिविक चैष्टाएँ, सब्ब उच्चारण के लिए प्रयत्न करना वादि सभी वात चैष्टाओं का मनो-हारी वर्णन किया है।

१- परमानन्द सागर पृ० ३० पद ८८

२- .. पृ० २६ पद ८५

कवि की झुठी स्वभावी वितर्क के अध्ययन से विदित होता है कि कवि अपनी स्वभावी वितर्क के चित्रण में घूर है बाग नहीं निकल सका है तो उसके सम्पूर्ण स्थान प्राप्त करने में पूर्णतः सक्षम प्रतीत होता है।

इसी प्रकार की स्वभावी वितर्क के कोनों चित्र बाग सीला के पक्षों में चित्रित हुए हैं। इन वर्णनों में कवि ने प्रीतिपूर्ण की बात प्रीतिपूर्ण, प्रीतिपूर्ण का सजीव वर्णन किया है।

### व्यतिरेक कर्त्तार : शास्त्रीय विवेचन

व्यतिरेक शब्द जो शब्दों के संयोग से निर्मित है - वि + कतिरे । 'वि' शब्द का अर्थ है विशेष और 'कतिरे' का बहुवचन अर्थ होता है अधिक । इस कर्त्तार में उपमान की अपेक्षा उपमेय में गुण- विशेष का विशेष वर्णन किया जाता है क्योंकि उपमान में हीनता की भावना तथा उच्छा मरुत्त कर्म दिखायी देता है। संनिष्ठ में यह कहा जा सकता है कि उपमेय में गुणों की अधिकता और उपमान में गुणों की न्यूनता का वर्णन निश्चित रहता है।

### परमानन्द सागर में व्यतिरेक कर्त्तार का प्रयोग

परमानन्द सागर के कव्यकर्म के ज्ञात होता है कि सागर की रक्तान्तर्गत व्यतिरेक कर्त्तार का प्रयोग भी न्यूनाधिक रूप में अवश्य स्थित है। 'पवित्रा छिंदीरे के पदों' के अन्तर्गत 'व्यतिरेक' कर्त्तार की कृता निर्माणित उदाहरण में पर्यनीय है :

एकरी पवित्रा छिंदी छिंदीरे दोऊन निरस्त नयन सिराने ।

वह राक्त नेत्र निर्दुःख मस्त में कोटिह काम लजाने ॥

हाथ दिताउ हस्त सबके मन जोग जोग मुख साने ।

परमानन्द स्वामी पद मोहन उपकृत तान जिताने ॥ १

### कलकार विवेक

प्रस्तुत कद-रचना में परमानन्द दास जी ने छिछोरे में झूलती हुई राधा का व्यतिरेक कलकार के प्रयोग-लीन्दरों द्वारा मनोहारी निम्न प्रस्तुत किया है। राधा-लीन्दरों के वागे करोड़ों कामदेव उज्जावश, कालिङ्ग प्रतीत हो रहे हैं। कौटिल्य कामदेवों की की कति विहीन दर्शाया गया है। इस प्रकार कवि अपने कोणित तक पहुँचने में पूर्ण सफल एवं सदाय सिद्ध हुआ है।

झूलत नवल भिछोर किलोरी ।

उत वृणभान कुँवर रसिकवर अत वृणभान नैविनी गीरी ।

नीलावर पीलावर कस्तुर उफा धन दामिनि हवि पीरी ॥

०

०

परमानन्द प्रभु मिलि सुख मिलिअ कन्ध नष्ट विर धुतत ककरी ॥

### कलकार विवेक

सागर की उपरुक्त कद रचना व्यतिरेक कलकार का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करता है। छिछोरे झूलती समय राधा एवं कृष्ण के लुप्त भिन्न के प्रस्तुतीकरण में कवि श्री परमानन्द ने उस समय का वास्तविक दृश्य लुप्त हो र उपरिक्त किया है जो कि कवि ने लुप्त होकर उस दृश्य को रेखा दी । कवि की रचना शैली में उसके कल-कार की कलकृति कहीं भी धुमिल नहीं होने पायी है जैसा कि हम प्रस्तुत रचना की सुतीय पंक्ति के रचना- विन्यास में देखते हैं। श्रीकृष्ण के लवले

शरीर ( उपमेय ) पर उड़ते हुए पीताम्बर की लीला का मैं चपकती हुई बिजली ( उपमान ) की लीला के निम्न दिखायी दे रही है। इस प्रकार उपमेय के गुण धर्मों में उपमान के गुण धर्मों के सांख्यिक का वर्णन होने के व्यक्तिक वर्तकार का सफल विवेचन सिद्ध होता है।

परिकर वर्तकार : उत्तरीय विवेचन

जहाँ सामिप्राय विवेचन का ध्यान किया जाता है वहाँ परिकर वर्तकार होता है। ' परिकर ' का शाब्दिक अर्थ ' उत्कर्ष ' वस्तु है। अतः इस वर्तकार के अन्तर्गत वाक्य के अर्थ के उत्कर्ष की पोषण करने वाले सामिप्रायपूर्ण विवेचनों का प्रयोग होता है। अन्वयता से परिपूर्ण उत्कृष्ट विवेचन का प्रयोग परिकर वर्तकार की विवेक्यता होती है।

परमानन्द सागर में परिकर वर्तकार का प्रयोग

' परमानन्द सागर ' के अन्तर्गत ' परिकर ' वर्तकार के कुछ उत्कृष्ट उदाहरणों के विश्व निम्नीकृत हैं :

रखिली राधा पलना भूतें ।

देति देति गोपी ज्ञात भूतें ॥

० ०

लीला की सागर सुहारी ।

उमा रमा इति वारी डारी ॥ १

### कलंकार विवेचन

उक्त रत्ना में कवि ने विशिष्टता और विशिष्ट्य दोनों का प्रयोग किया है। राधा को रसिकता विशिष्टता द्वारा विधुषित किया है। राधा रसिकता है उसको गोपी का बेल बेल कर मानवित हो गई है। उसको कुहमारिता से कानो भी मन मुदित है। इस प्रकार सम्पूर्ण का रत्ना के सुन्दर राधा के विशिष्टता की दृष्टि का सुन्दर वर्णन होने से परस्पर कलंकार की सफलता सिद्ध होती है।

सुन्दरता गोपालहि सोई ।

कमल न की नैद मन जानै का देखत रति नायक सोई ।

सुन्दर चल कलस गति सुन्दर सुन्दर गुणफल अवतै ।

सुन्दर कमलानल उर मँदित सुन्दर गिरा मयी कल हँस ॥

सुन्दर पैर सुन्दर पति सुन्दर सुन्दर सब लीन स्याम सरीर ।

सुन्दर बदन कानोबनि सुन्दर सुन्दर ते कलौरी ॥

मेव पुरान विरुपा बहुविधि अन नराकृति त्व निवास ।

बलि बलि जाऊँ मनोहर पुरति दुदय बधौ परमानंद दास ॥९

### कलंकार विवेचन

प्रस्तुत का को प्रकृति पेशित में परस्पर कलंकार का सुन्दरतम परिचाय हुआ है कि परस्पर कलंकार का रस, विशिष्टता के प्रयोग से कर्तव्य का उद्घाटन करता है। इस तत्त्व का उद्घाटन कवि ने सुन्दर वभिप्रायपूर्ण ( विशिष्टता सुन्द ) द्वारा व्यक्त



मनोरम ढंग से किया है। कर्तकार प्रयोग की विशेषता हमें इस रूप में देखने को मिलती है कि कवि ने जहाँ भी अविप्राय पूर्ण विशेषणों का प्रयोग किया है। उसका प्रायोगिक विकास एक सहज एवं स्वाभाविक परिवेश में हुआ है जिसके फलस्वरूप काव्योत्कर्ष अत्यन्त सफल बन पाया है।

रसिक सिरोमणि नन्दन ।

समय रूप वरूप विराजित गोपबधू उरु सोतल नंदन ।

नेननि मैं रस कितवनि मैं रस वातनि मैं रस ठगत मनुज पक्ष।  
गायनि मैं रस मिलवनि मैं रस वेनु मधुर रस प्रगट वादन पक्ष।  
बिहि रस मग फिरत मुनि मधुर ही रस संवित अक्ष

वृन्दावन ।

रसाम धाम रस रसिक उपाधित अंग प्रगट हु परमानंद

पद ॥ १

### कर्तकार विवेचन

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने परिकर कर्तकार के द्वारा नन्दन कर्ता प्रीकृष्ण के रसिक रूप को सुललित किया है। इस रसिक रूप को कवि ने " रसिक सिरोमणि " विशेषण शब्दों द्वारा व्यक्त किया है। प्रायः प्रत्येक पंक्ति में " रस " शब्द की आवृत्ति से ऐसा प्रतीत होता है मानो परमानंददास जी ने इस रचना में समुच्च हो एक रस-धारा ही प्रवाहित कर दी हो ।

### निष्कर्ष

परमानंद सागर ' ' में कर्त्तारों के अध्ययन से यह विदित होता है कि उसमें विन्न विन्न प्रकार के कर्त्तारों का सफल प्रयोग हुआ है। कर्त्तारों के प्रयोग में कहीं भी कवि स्पष्ट होता दिखायी नहीं देता है। अतः उसमें कर्त्तार प्रयोग वर्णन कृत्रिम रूप में मिलता है।

कर्त्तार विवेचन के इस प्रकरण में हमने परमानंद सागर में प्रस्तुत उन्हीं कर्त्तारों के उदाहरणों का विवेचन किया है किमें कवि की प्रवृत्ति अधिक रही है। इन कर्त्तारों के काव्य लिंग, कर्मान्तरन्यास, विाणम, काव्याचंपद वादि कर्त्तारों के चित्र भी देखे की मिलते हैं। इस प्रकार परमानंद सागर में कर्त्तारों का सौम कत्यन्त व्यापक है।

### चतुर्थ अध्याय

#### परमानन्द सागर की छन्द योजना

काव्य में छन्द विधान का पहल्य, विविध, व्युत्पत्ति, विकास तत्त्व और भेद , परमानन्द सागर की छन्द नियोजना एवं उसका प्रयोगात्मक सौन्दर्य , परमानन्द सागर में निम्नलिखित प्रमुख छन्द एवं उनका सौन्दर्य , चौपाई छन्द : शास्त्रीय विविध, परमानन्द सागर में चौपाई छन्द का प्रयोग , दोहा-छन्द : शास्त्रीय विविध , परमानन्द सागर में दोहा छन्द का प्रयोग , छार छन्द : शास्त्रीय विविध, परमानन्द सागर में छार छन्द का प्रयोग , तार्टक छन्द, शास्त्रीय विविध, परमानन्द सागर में तार्टक छन्द का प्रयोग , चवपैय्या छन्द : शास्त्रीय विविध, परमानन्द सागर में चवपैय्या छन्द का प्रयोग , रौता छन्द : शास्त्रीय विविध, परमानन्द सागर में रौता छन्द का प्रयोग, गीतिका छन्द : शास्त्रीय विविध , परमानन्द सागर में गीतिका छन्द का प्रयोग , झुलना छन्द : शास्त्रीय विविध , परमानन्द सागर में झुलना छन्द का प्रयोग , चौपाई छन्द : शास्त्रीय विविध, तथा परमानन्द सागर में उसका प्रयोग , रूपमाता छन्द : शास्त्रीय विविध, परमानन्द सागर में रूपमाता छन्द का प्रयोग , लावनी छन्द : शास्त्रीय विविध, परमानन्द सागर में लावनी छन्द का प्रयोग, सही छन्द : शास्त्रीय विविध, परमानन्द सागर में सही छन्द का प्रयोग, विलास छन्द : शास्त्रीय विविध, परमानन्द सागर में विलास छन्द का प्रयोग ।

## परमानन्द सागर की छन्द नियोजिता

### १- काव्य में छन्द विधान का महत्व, विवेचन, व्युत्पत्ति, विकास, तत्त्व

#### बीर भद

#### महत्व

प्राचीन काव्यशास्त्रियों का कथन है कि छन्दों का प्रयोग एवं छन्द शास्त्र का ज्ञान लौकिक साहित्य में नहीं बल्कि वेद तक में छन्दशास्त्र का ज्ञान एवं प्रयोग मिलता है। उन्होंने छन्दशास्त्र के भाव में वेद की भी पैरु घोषित किया है। अपने कथन की पुष्टि में उनका तर्क है कि " जिस प्रकार पैरों से रहित मनुष्य चल फिर नहीं सकता , उसी प्रकार छन्दों के ज्ञान के बिना वेद भी नहीं चल सकता । " इसके उच्चारण की गति, लय आदि की समुचित व्यवस्था के लिए छन्दों का ज्ञान परमावश्यक है। अतः छन्दों के ज्ञान के अभाव में साहित्य का उचित समुचित करना भी अशभव ही, सिद्ध ही सकता है। उपर्युक्त विवेचन से छन्दों के सम्बन्ध में यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि छन्दों के प्रयोग से काव्य आत्मा ही जाता है।

व्याकरण की व्युत्पत्ति के अनुसार छन्द की उपयोगिता एवं परिभाषा का स्वरूप हमें इन शब्दों में देखने को मिलता

### १- श्री भट्ट केदार विरचितम् पृथक्त्वाकम् की भूमिका पृष्ठ ३

व्याख्याकारः श्री धरानन्द शास्त्री । सुन्दर लाल जैन, भीतीलाल बनारसीदास , बंगला रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७ द्वारा प्रकाशित  
द्वितीय संस्करण १९७२

है, “ हृन्दयति वाह्लादयति यदि कसुन चक्ष्य हृत्स्य ”<sup>१</sup> अर्थात् जिसके हृदय बहु वाह्लादित हो अथवा प्रसादन हो वही हृन्द है। इसके अनुसार हृन्दों की उपयोगिता का मूल आधार उसमें अन्तर्निहित प्रसाद, गुण वीर कुरङ्गिकारी शक्ति के होने से है। अतः यह कहा जा सकता है कि हृन्द काव्यान्तर्गत प्रसाद गुण संचार कराने वाला अवश्य ही एक अच्छा उपादान है। प्रसाद गुण के अतिरिक्त काव्य में नाद सौन्दर्य का भी विशेष महत्त्व होता है जिसकी अभिव्यक्ति के लिए हृन्दों का प्रयोग नितान्त आवश्यक होता है। हृन्दों के महत्त्व विवेचन के विषय में ५० राम दहिन मिश्र की विचारणा इस प्रकार है, “ हृन्द ही काव्य का संगीत है, संगीत में जो संयम ताल से आता है, वही संयम कविता में हृन्द से आता है। ”<sup>२</sup>

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने हृन्दों की महत्ता को इन शब्दों में प्रस्तुत की है, “ वाणी की अनियमित गति नियन्त्रित हो, ताल सुप्त हो जाती, उसके स्वर में ‘ प्राणायाम ’ रोवों में स्फूर्ति आ जाती, राग की लसम्बद्ध झंकारों एक वल में बंध जाती, उनमें परिपूर्णता आ जाती है। ”<sup>३</sup>

हृन्दों की उपयोगिता एवं महत्त्व के विषय में उपर्युक्त विचारणाओं से निष्कर्ष स्वल्प यह कहा जा सकता है कि काव्याभिव्यक्ति को सुदृढ बनाने तथा पाठकों के हृदय में प्रतिस्थापना करने के लिए काव्य की संगीतमय, लय बद्ध तथा यति, गति आदि संगीत की अनिश्चित छायाओं में निबद्ध करने तथा उसे अधिकाधिक प्रेरणणीय बनाने के लिए हृन्द नियोजना आवश्यक होती है। काव्य में हृन्द विधान अलग से आलोचिता कोई नूतन अथवा विजातीय काव्य बन्धन नहीं है, यह हमें समीक्षाशास्त्र, ५० सीताराम शुक्लदी पृ० ७६६ से० २०१०

२- काव्यदर्पण - ५० राम दहिन मिश्र पृ० ३२

३- पल्लव की धूमिका - सुमित्रानन्दन पन्त पृ० ३३

तो तय की सौख्यता हेतु सुनिश्चित, स्वीकृत, स्वाणी की ही एक व्यवस्था है, जिसके सहयोग से काव्य में एक नवीन शक्ति का संचार होने लगता है।

यही कारण है कि इन्दीबद्ध रचना में जो प्रभाव सर्व संगीत की तीव्रता उत्पन्न हो जाती है, वह गद्य रचना में संभव नहीं होती। अतः जिसने पर महाकाव्य है वह सभी इन्द्र बद्ध सर्व गद्य रचना में निबद्ध पाये जाते हैं।

### व्युत्पत्ति

इन्द्र शब्द की व्युत्पत्ति इतिहास धातु से हुई है जिसका अर्थ है जो वाञ्छादन कर सके। काव्यान्तर्गत जब हम अपनी विचारधारारों को वर्णों तथा मात्राओं की निश्चित संख्या गति, यति सम्बन्धी नियमानुसार योजनाबद्ध कर सुझाते हैं तो वह सुनिश्चित योजना एक इन्द्र कहलाती है। यही इन्द्र हमारे भावों, विचारों का वाञ्छादन कर होता है। हमारी काव्यमयी वाणी विचार प्रक्रिया उस इन्द्र बद्धता से बाध होकर प्रवाहित होने लगती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इन्द्र वर्णों तथा मात्राओं की संख्या उनका क्रम, गति, यति आदि के नियमों से बद्ध एक योजना है, जिसके अन्तर्गत काव्य निर्माता अपनी काव्यमयी वाणी में अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता है।

वाचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्द्रों के वैज्ञानिक स्वल्प की उद्घोषणा निम्नोक्त शब्दों में की है :

“ ह्रस्व वास्तव में संधी हुई तय के भिन्न भिन्न ढाँची ( फट्च ) का योग है, जो निर्दिष्ट सम्बन्ध का होता है। तय- स्वर के उदात्त- उदात्त स्वर के छोटे छोटे ढाँचे ही हैं, जो किसी ह्रस्व के चरण के भीतर व्यस्त रहते हैं।<sup>१</sup>

ह्रस्व विधान के सम्बन्ध में प्रवीण चन्द्र देन का महत्वपूर्ण कथन इस प्रकार है :

“ कविता का ह्रस्व एक ध्वनि सम्बन्धी कला है, किन्तु इस ध्वनि का सम्बन्ध यन्त्र से नहीं, मनुष्य के कंठ से है। ---- जब हम कुछ कहते हैं, या कुछ पढ़ते हैं तब हमारी कंठ ध्वनि अविराम प्रवाह के रूप में नहीं बहती रहती है। बल्कि नाना विचित्र ध्वनियों में बीच- बीच में विरत होती रहती है। केवल बातचीत या गप पड़ने ही के समय नहीं, कविता के ह्रस्व पढ़ते समय भी ध्वनि की गति के समान ही यति भी अत्यन्त आवश्यक है। काव्य के ह्रस्व निर्माण के समय ध्वनि की इस गति को नाना विचित्र कौशलों से लगाना पड़ता है। इसलिए हमारी उच्चरित ध्वनि की कला व्याप्ति प्रसार वीरु यति तीनों ही बातें ‘ ह्रस्व शास्त्र ’ की प्रथम और प्रधान बातें हैं। ”

उपर्युक्त दोनों ही विद्वानों ने ह्रस्व की वैज्ञानिकता पर अपनी विचारधारा प्रस्तुत की है।

ह्रस्वों के उद्गम एवं विकास के विषय में भारतीय ह्रस्व शास्त्रकारों की विचारधारा यह है कि भारतीय अन्य धियावर्गों के सदृश ह्रस्वोविद्या का प्रीत भी वेद ही है उनका कथन है कि

१- बाबाय्य रामचन्द्र शुक्ल- काव्य में रहस्याद पृ० १३५ प्रथम संस्करण

२- साहित्य शास्त्र की पृष्ठभूमि , बुधनाथ फाग कैस पृ० ५३

लौकिक शब्दों का प्रयोग वेद ( ऋग्वेद ) में मिलता है । यहाँ तक कि शब्दों की संख्या वर्ण, नाम क्रम आदि का विवरण भी मिलता है। इस सन्दर्भ में आचार्य पं० सीताराम कर्तविकी ने अपनी ग्रन्थ समीक्षा शास्त्र में भारतीय शब्दों को वेदिक और लौकिक दो भागों में विभक्त किया है। वेदिक साहित्य में सात शब्दों का उल्लेख इस प्रकार है- गायत्री उष्णिग, वसुष्टप, वृक्षी, वैपति त्रिष्टप एवं जगती । वेदिक शब्दों का प्रयोग केवल वेदों में ही होता है। वहीं वेदिक शब्दों से लौकिक शब्दों का प्रादुर्भाव संभव हुआ है। लौकिक शब्दों के प्रथम जन्मदाता महर्षि वाल्मीकि हैं जिन्होंने क्राँव परती के तुम्प को विद्युत् कहने वाले निर्दयी व्याध को सम्बोधन में ' मा निजाद प्रतिष्ठा त्वमगमः ' के प्रथम लौकिक शब्द से अपनी महाकाव्य को प्रारम्भ किया था । इस प्रकार लौकिक शब्दों का उद्गम एवं विकास संभव हो गया । लौकिक शब्दों के सर्वप्रथम आचार्य पिंगल माने जाते हैं। उनके पिंगल सूत्र के आधार पर ही अन्य परवर्ती आचार्यों ने अपने ग्रन्थों का सञ्जन किया । शब्दों के विषय में महर्षि पिंगल के सिद्धान्त होते प्रगाढ़ हो गये कि शब्द शास्त्र का नाम भी पिंगल शास्त्र हो गया । इनका ग्रंथ आर्य ग्रंथ माना जाता है। इसके पश्चात् केदार भट्ट ( वृत्त रत्नाकर ) गंगादास ( शब्दी-मञ्जरी ) और कालिदास ( श्रुतबोध ) उल्लेखनीय हैं। हिन्दी के म.काल में मतिराम, सुतदेव मि, मिहारीदास, पद्माकर आदि के विवेचन भी उल्लेखनीय हैं। आधुनिक काल में जान्नाथ प्रसाद ' भास्व ' ( शब्द प्रभाकर ) अवध उपाध्याय कृत नवीन पिंगल , ' सरस ' द्वारा प्रणीत ' सरस पिंगल ' , रामनरेश त्रिपाठी कृत ' पद्म रत्ना ' तथा पं० प्र० पं० परमेश्वरानंद जी कृत शब्द सिंघा हो अधिक प्रचलित एवं प्रतिनिधि ग्रन्थ माने जाते हैं। लौकिक शब्दों का उद्गम, विकास एवं प्रतिनिधि ग्रन्थों का प्रयोग कालिदास, भवभूति, तुलसी और पं० सु० जायसी आदि ने अपने काव्यश्रृंगारों में



में बड़ी सफलता के साथ किया है।

छन्दों के वैज्ञानिक स्वरूप विवेचन, उपाधिका, उद्गम तथा विकास आदि के विषय में उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण ही पर्याप्त होगा।

### छन्द विभाजन

छन्द दो प्रकार के होते हैं : १- मात्रिक

छन्द २- वर्णिक छन्द।

### मात्रिक छन्द

मात्रिक छन्द के अन्तर्गत प्रत्येक चरण की मात्र मात्राओं की गणना के आधार पर की जाती है। जिस छन्द के चारों चरणों में मात्राओं का क्रम सम हो, किन्तु वर्णों का क्रम सम न हो उसे मात्रिक छन्द कहते हैं। इस छन्द में लय तथा स्वर की रक्षा हेतु 'गति' एवं 'गति' का भी विधान किया जाता है। स्वर की गति सर्वत्र एक समान नहीं होती, स्वर की गति की तीव्रता और मन्द गति से ही स्वर के लघु एवं गुरु होने का ज्ञात चलता है। लघु एवं गुरु - आधार पर मात्राओं का मान निश्चित किया जाता है। छन्दशास्त्र में लघु की एक मात्रा (।) और गुरु की दो मात्रा (।।) निर्धारित की गयी है। सस्वर द्रव्य वर्णों को एक मात्रा तथा दीर्घ वर्णों से दो मात्रा जाती है। जहाँ तक वर्णों की लघुता एवं गुरुता की स्थिति का प्रश्न है वह वर्णों के उच्चारण के आधार पर किया जाता है। संयुक्त अक्षर के पूर्व के द्रव्य स्वर की दो मात्राएँ मानी जाती हैं। इसी प्रकार अनुस्वार युक्त अक्षरों एवं विसर्ग युक्त अक्षरों के पूर्व वाले द्रव्य स्वर भी दो मात्रा वाला माना

जाता है। हिन्दी के शब्दों में संयुक्ताक्षरों में जहाँ उच्चारण की दीर्घता नहीं होती, जहाँ वे स्पर्श-संयुक्त या अपूर्ण उच्चारित होते हैं वहाँ उनके पूर्व जानेवाले अक्षर की लघु ही मान लिया जाता है। उदाहरण 'सप्रेम' शब्द में 'प्र' के संयुक्ताक्षर होने पर भी यही नियम के अनुसार 'स' की एक ही मात्रा मानी जायेगी।

### वर्णिक ह्रस्व

जिस ह्रस्व के प्रत्येक वर्ण की पाप वर्ण या अक्षर गणना के आधार पर की जाती है उसे वर्णिक ह्रस्व कहते हैं। वर्णिक ह्रस्व के चारों वर्णों में वर्ण-क्रम की समता तथा उनकी संख्या में भी समता होती है। इसके अतिरिक्त उसमें मात्रिक ह्रस्व की विशिष्टता के आरोपण का भी संवर्णन देला जाता है। ह्रस्वशास्त्रियों ने इस सूक्ष्म संस्पर्श से अवगत होने के लिए अक्षरों को तीन वर्गों ( शुभ, अशुभ और त्याज्य ) में विभाजित किया है। त्याज्य वर्णों के अक्षरों की दग्धाक्षर परीक्षा जाता है जो इस प्रकार है : फ , ह , र , म और ञ । यदि इनका प्रयोग करना आवश्यक हो तो उन्हें दीर्घ या दग्धाक्षर के प्रारम्भिक शब्द की देववाची बनाकर किया जा सकता है। अस्तु न है भास्कर, र है राघव , ह है अनुमत इत्यादि ।

उपर्युक्त संक्षिप्त ह्रस्व परिवर्त्य विवेचन से पता चलता है कि ह्रस्व दृष्टि से परिचित होने के लिए उसमें निहित मात्राओं की परिगणना, वर्णों की संख्या एवं उनके स्थापन-क्रम आदि ऐसे तत्त्व हैं, जिनके विषय में ज्ञान होना नितान्त आवश्यक होता है, इन तत्त्वों की जानकारी के पश्चात् ही ह्रस्व की स्यात्कृता एवं उसमें निहित संगीत

१- रासचरित मानस का शास्त्रीय अध्ययन- डा० राव कुमार पाण्डेय

पृ० ३६४ , सन् १९६३ , कानपुर

की आत्मा से साक्षात्कार होना संभव होता है।

परमानन्द सागर की छन्द नियोजना एवं उसका प्रयोगात्मक सौन्दर्य

परमानन्ददास जी ने श्रीकृष्ण , गोप, गोपियाँ से सम्बन्धित क्रिया कलापी का तात्कालिक ब्रज संस्कृति के पाहात्म्य एवं श्रीकृष्ण की महिमा का गायन अपने मुक्त कण्ठ से गेय पर रेली में किया है। इन गेय पदों को परमानन्ददास जी ने अनेक छन्दों में निबद्ध किया है।

‘ परमानन्द सागर ’ के अन्तर्गत उनका छन्द विधान निम्नीयत छन्दों के प्रयोग से देखा जा सकता है। छन्द, विष्णुपद, शंकर, छिंद, छार, ताँटक , चवफेया, प्रिय, रोसा, विलास, हरिगीतिका, फूलना , चौपार्क, चौपहं , दोहे, रोसा, खमाला समान चवफेया, लायनी, सली, हंसात, विजया आदि ।

कवि की इस छन्दात्मक रचना के अध्ययन से यह पता चलता है कि कवि ने अपनी काव्य में तात्कालिक प्रचलित लोकिक छन्दों का प्रयोगानुसृत प्रयोग किया है।

कवि की रचना में तुलसीदास जी के ‘ मानस ’ में प्रयुक्त दोहा, चौपायियों की भाँति किसी छन्द विशेष का प्रयोग नहीं मिलता है। इसका कारण यह ही सकता है कि ‘ परमानंद दास ’ जी का लक्ष्य कोई प्रबन्ध काव्य लिखी का नहीं था क्योंकि उनको रचना में

१- परमानंद सागर पद संग्रह पृ० ३३ - संपादक - डा० गोवर्धन नाथ शुक्ल  
नारायण प्रकाशन मंदिर, कलिंगद

भी किसी एक जगह दो छन्दों को ही स्थान न मिलकर बनेक प्रकार के छन्दों को स्थान मिल सका है। परमानन्द सागर में बनेक प्रकार के छन्दों के प्रयोग का बाहुल्य इस तथ्य का भी परिचायक है कि कवि ने अपने दृष्ट देव ( श्रीकृष्ण ) की लीलाओं का गायन बनेक प्रकार से किया है। अतः कवि की काव्य रचना भाँति भाँति के छन्दों से व्यापक है होती हुई दिखायी देती है। कवि की इस प्रकार की छन्द रचना शैली में कवि के संगीत की महानता का फल चलता है। उन्होंने अपने छन्दों के प्रयोग में विशेष स्थान ' गति ' और ' संगीतात्मकता ' को ही दिया है। इस संगीतात्मकता के कारण उन्होंने मात्राओं तथा वर्णों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है। संगीतबद्धता और लय बद्धता की ओर जितना ध्यान दिया है उतना ' यति ' भंगता की ओर ध्यान नहीं दिया है। इस प्रकार की काव्य रचना एक उच्च कौटि के भक्त कवि हृदय में ही जन्म पाती है, क्योंकि भक्त हृदय की मक्ति की विभोरता की उच्चतम स्थिति में पहुँच कर ' यति ' विधान आदि का ध्यान नहीं रहता। अतः इसका अप्रतिष्ठा यह नहीं समझना या समझना कि कवि छन्द विधान से अलग नहीं था।

' परमानन्द सागर ' के ' छन्द विधान ' के प्रयोगात्मक सौन्दर्य पर दृष्टि- प्रदीप करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि ' परमानन्द दास ' ने जहाँ भी जिस छन्द का प्रयोग किया है, उसका प्रयोग सब उसका विकास नितान्त स्वाभाविक पृष्ठभूमि में ही किया है। उनके छन्दों के प्राथमिक सौन्दर्य की दूसरी विशेषता यह है कि उनका प्रत्येक छन्द अवसर के अनुरूप तथा अपने विशिष्ट उद्देश्य का पूर्ण ध्यान रह-स्योद्घाटन करने में पूर्णतः सक्षम ही प्रतीत होता है। छन्द के प्रयोग से कवि रचना का प्रयोग कहीं भी छुमिल होता नहीं दिखायी देता है।

वास्तविकता यह है कि इन्हीं की प्रायोगिक सफलता के लिए कवि कहीं भी किसी स्थल पर अपनी रचना के कुछ प्रयोजन को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में सफल नहीं दिखायी देता । इसके साथ साथ इन्हीं के प्रयोग से रचना में सरलता एवं सरलता के अतिरिक्त कहीं भी सुलझता एवं क्लिष्टता के दर्शन नहीं होते ।

परमानन्ददास जी की रचना में इन्हीं का प्रयोग हमें कहीं भी प्रबल ब्रज भाषा के यथुक्त शब्दावली द्वारा देखी की मिलता है जिसके अन्तर्गत कवि की भाषा की सरलता एवं भावाभिव्यक्ति का सुष्ठु एवं सुन्दरतम रूप दिखाई देता है। अभी इस कथन की पुष्टि परमानन्दसागर के निम्नोक्त 'बीपाई' इन्द्र के प्रस्तुतीकरण द्वारा की जाती है :

धुनि धरौ वन सबोली राधा ।  
तैं पायी रस मिधु जगाधा ॥  
जो रस निगम वेति नित भाख्यौ ।  
साकी तैं बधामुत गाख्यौ ॥ १

प्रस्तुत बीपाई इन्द्र के अन्तर्गत एक सही राधा से उसके प्रेम व्यापार को लक्ष्य करते हुए कितने सुन्दर तथा मार्मिक ढंग से रहस्योद्घाटन करता हुई चित्रित की गयी है। इस प्रकार के इन्द्र वर्णन शैली कवि की सफल संवाद योजना का परिचायक कही जा सकती है। उक्त बीपाई इन्द्र की संवाद योजना में मार्मिकता की पूर्ण उत्कृष्टता दर्शनीय है। कवि रचना में इस प्रकार के उदाहरणों की कमी नहीं है।

तावनी इन्द्र के परिवेश में राधा की सती  
राधा से ज्यों मनोभावों को कितने सुन्दर ढंग से व्यक्त करती है :

तु जिनि लार्जे नंद झू के पारि तेरी बात जलाईं री ।  
तान पान सब तज्यौसाधरे से सब लियो चुराईं री ॥  
कौन नन्द काको सुत सज्जी, मैं देख्यो सुन्गी न मारि री ।  
फूँकि फूँकि हौं मारि धस्त धरे फेरे धरे लुगाईं री ।

०

०

परमानन्द प्रभु जो मे पाऊँ धरे तन विधा जुगाईं री<sup>१</sup> ॥

कवि की उपरोक्त इन्द्र योजना में उसकी संवाद  
योजना का निर्वाह स्वानाविक रूप से हो सका है। कवि इस प्रकार की  
रचनाओं में प्रसन्नता एवं उत्कृष्टता तथा मनोवैज्ञानिकता का परिचय देती  
है ।

जीपार्थ इन्द्र के एक दूसरे उदाहरण में उद्धव  
तथा गोपियों के बीच निर्गुण तथा सगुण भक्ति विभिन्न के विषय में  
जिस तर्क पूर्ण ढंग से संवाद उठ खड़ा हुआ है वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं  
है :

कमल नन मूलन मदि तार ।

०

०

निर्गुन ध्यान तबहि तुम कहते ।

सब समय ब्रत बूढ़ कर गहते ॥

मेनन ते सरिता कत बहती ।

हरि बिहसन को भूत न सखती ॥ २

१- परमानन्द सागर पृ० ३३२ पद सं० ६२०

२- .. १६१ पद सं० ५६३

प्रसूत छन्द के वन्तर्गत गीतियों ने " उदव जी " के निर्गुणोपासक ज्ञान की अवहेलना करते हुए ताकिं एवं व्यंग्यात्मक शैली में " उदव " की निरुद्धर करती हुई दिखायी देती है। उनका कथन है कि हे उदव जी निर्गुण ब्रह्म की उपासना की शिक्षा हमें वापसी पहुँचें ही दे देती होती तो हमें अपना सम्पूर्ण समय निर्गुण ब्रह्म की उपासना में लगाकर उस कठोर ब्रह्म की धारण कर लेती । हमें उसका अभ्यास ही जाता, तो वाच धीकृष्ण के वियोग में हमारे नेत्रों में अश्रु सरिता क्यों प्रवाहित होती और न ही हमें हरि- वियोग का कष्ट साध्य भूल सहना करना पड़ता ।

परमानन्द सागर के इस प्रकार उदाहरणों से छन्द नियोजित मार्फिक , तर्क सिद्ध एवं कवि का महान् कवि स्वल्प हमारे सामने उपस्थित हो जाता है।

### परमानन्द सागर में निहित प्रसूत छन्द एवं उनका सौन्दर्य

जैसा कि हम पूर्व में ही विवेचन कर चुके हैं कि परमानन्द सागर में परमानन्द दास जी के गेय पदों का संग्रह मात्र है। इन गेय पदों का महाकवि ने कीक छन्दों, रागी में यथा समय प्रसंगानुकूल ही चुन लिया है। उनकी इस प्रकार की रचना प्रक्रिया में प्रसूत छन्दों का चयन करना संभव प्रतीत नहीं होता ।

परमानन्दसागर की विषय-वस्तु एवं वस्तु-विन्यास की दृष्टि से हिन्दी के जिन प्रचलित छन्दों का गहरा सम्बन्ध प्रतीत होता है उन्हीं को " परमानन्द सागर " के प्रसूत छन्दों के रूप में स्वीकार करना न्याय संगत होगा । इस प्रकार के कतिपय छन्दों का

प्रायोगिक धीन्दर्य का विवर्ति एवं उपयोगिता इस प्रकार है ।

चीपाई छन्द : शास्त्रीय विवेचन

चीपाई छन्द में चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। वन्त में जगण, तगण नहीं होता है। जैसा कि छन्द विधान के अन्तर्गत मात्राओं की संख्या ज्ञात करने का नियम है, विसर्ग, अनुस्वार एवं संयुक्ताक्षर के पूर्वगत अक्षर को गुरु जाना दो मात्रा वाला माना जाता है। गुरु और लघु के छन्द क्रमः ( . . ) इस प्रकार हैं। कहीं कहीं ऐसा भी होता है कि संयुक्ताक्षर के पूर्वगत को भी लघु ही निश्चित कर लिया जाता है।

परमानन्द सागर की चीपाई में इस प्रकार की प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं। रामचरित मानस एवं जायसी के पद्योक्त में भी पन्द्रह मात्राओं की चीपाई का उल्लेख हुआ है। कतिपय विद्वानों ने इस प्रकार के छन्दों को चीपाई छन्द की संज्ञा दी है तथा सौतह मात्रा वाले छन्दों को ही चीपाई माना है। यहाँ यह कहना अपेक्षित है कि साधारणतया छन्दशास्त्र वेदाङ्गों में सौतह मात्रा वाले जिसमें

१- परमानन्द सागर में चीपाई छन्द का प्रयोग-

परमानन्द सागर की चीपाई में संयुक्ताक्षर के पूर्वगत को गुरु एवं लघु निश्चित करने की प्रवृत्ति का उदाहरण द्रष्टव्य है :

सुनि मेरी वचन कबोली राधा । तिन विरैचि जाके ज्ञान न जाये ।

तैं पायी रस सिंधु अनाधा । ताकी कृपनि सुमुख बितारै ॥

जो रस निगम केति नित नाथी । तू कृष्णभान गोप की भेटी ।

ताकी तैं अधराकृत नाथी । मोहन लाल भावते भेटी ।

- परमानन्द सागर पृष्ठ ४५५ पृष्ठ १५४



गुरु , तत्पु का विषय होता पाया जाता है। उसे ही चौपाई छन्द की स्थिति में स्वीकार करते हैं।

‘ परमानन्द सागर ’ की चौपाइयों का अध्ययन-विश्लेषण करने से विदित होता है कि उनकी मात्रा संख्या सर्वत्र समान न रही हुए कहीं कहीं विधायता की ओर भी उन्मुख होती दिखाई देती है। ‘ परमानन्द सागर ’ की चौपाइयों की दूसरी विशेषता यह है कि उनका सम्बन्ध किसी अन्य अपने निकटवर्ती अर्थात् पूर्ववत् व वा पश्चात् की छन्द रचना से न होकर एक स्वतन्त्र रचना के रूप में मिलती है। उनमें तुलसीदास जी के ‘ मानस ’ की चौपाइयों के पश्चात् दोहों जैसी संयोजन की व्यवस्था नहीं है और न ही उन्होंने अपनी रचना में उस चौपाई छन्द की भरणारंभ की है। बल्कि उनकी रचनावली में तात्कालिक प्रवृत्ति सभी प्रकार के समय और विषय पात्रिक छन्दों को स्थान मिला है। इनमें भी सर्वाधिक प्रयोग लोक जीवन में नाये जाने वाले रसिद, लावनी, लीला, बर, बादि का रहा है।

‘ परमानन्द सागर ’ में जहाँ तक चौपाई की अवस्थिति का प्रश्न है, वह उत्पन्न ही रहा है, परन्तु जिस स्तर पर भी कवि ने उसका सृजन किया है, उसमें प्रयोजनशीलता के गुण का वाञ्छित अवश्य मिलता है। इसी विशिष्टता के कारण इस चौपाई छन्द के अन्तर्गत विभिन्न काव्य गुणों ( शब्द शक्ति, रस, रीति, ध्वनि, पाठ्य ) का पूर्ण समाहार पाया जाता है। ज्ञाना ही नहीं इन चौपाइयों के द्वारा कवि ने भारतीय संस्कृति में निहित प्रवृत्तियों के लोक जीवन की समीप भाविकियों के निम्न वर्णित करते में भी पूर्ण सफलता प्राप्त की है। जैसा कि बिम्बोक्त उदाहरण से द्रष्टव्य है :

तोहि गारी कहा कहि दीदि । (१६ )

यह कस बापनो सुनि तीदि ॥ (१५ )

हे बाप सबे कौज जाने । (१६ )

जाहि केद पुरान बसाने ॥ (१५ )

तेरी मैया बानि बति जाती । (१७ )

तुम बंटे हिलिपिति पाती ॥ (१६ )

तेरी कूफी पै मस्तारी ॥ (१७ )

सो तो जर्जन की मस्तारी ॥ (१६ ) १

जीपाई - कम्पल नैन मधुसूत पदि तार, ऊधी गीपित पास पठार ।  
ग्रय का जीवत है केहि लागी , एते संग सदा कुरागी ।

जीपाई इन्द के उपर्युक्त उदाहरण से हम निष्कर्ष स्वल्प यह कह सकती हैं कि परमानन्ददास जी की जीपाई शास्त्रीय कवीटो पर सरो नहीं उतरती । महाकवि व्यसहार प्रवृत्ति तथा परम्परा ग्रहीत अनुबन्धन में पड़कर माताजी की निश्चित संख्या बादि की नीर से प्रायः विकेंद्रित हो ही गया है। यही कारण है कि उनकी जीपाईयों के वर्णों में माताजी की संख्या कहीं १५ कहीं १६ तथा १७ भी होगयी है।

दीहा - इन्द : शास्त्रीय विविचन

दीहा मात्रा वृत्त इन्द है, इसमें बीबीस माताजी

१- परमानन्द सागर पद ६२६ पृ० ३३४

२- " " ३२६

के दो चरण होती हैं। इस प्रकार कुल षड़शतीस मात्राएँ होती हैं। प्रथम एवं तृतीय चरणों में तेरह तेरह मात्राएँ और द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में ग्यारह ग्यारह मात्राएँ होती हैं। तेरह और ग्यारह मात्राओं पर यति का विधान होता है। द्वितीय और चतुर्थ पैरित में अन्त्यानुप्रास भी अनिवार्यः पाया जाता है। अतः दोहा छन्द को अक्षम चरणों का छन्द भी कहा जाता है।

### परमानन्द शास्त्री में दोहा छन्द का प्रयोग

परमानन्द शास्त्री के अन्तर्गत दोहा छन्द की अवस्थिति प्रायः नगण्य रही है। राग राग में प्रचलित गीत के अन्तर्गत उनका एक लम्बा पद चौपाई तथा दोहा छन्द में निबद्ध मिलता है, जिसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

बहाली- दोहा -      सर्व सखी स्वतः भई, निरस्त स्याम शरीर ।  
                                   आर पित के चोरता, कहीं गए कलकीर ।  
                                   ज्यों नलिनी पूरण सखी, जाही उदधि तरंग ।  
                                   निरलति चंद कौर ज्यों, विचरि गई सब लीन । १

उक्त दोहा - युग्म की अवस्थिति से ज्ञात होता है कि परमानन्ददास जी ने दोहा छन्द का प्रयोग भी किसी रूप विशेष की दृष्टि से नहीं किया बल्कि सामान्य मानस में चौपाईयों के पश्चात् दोहा अथवा दोहा युग्म की व्यवस्था मिलती है। प्रस्तुत दोहा छन्द को रचना के प्रयोजन में परमानन्ददास जी ने श्रुतिपूर्ण एवं गोपिणी

के व्य- शीन्दर्य की एक अनुपम कान्की चित्रित की है। एक दूसरे दोहा में कवि ने राधा के भाग्य की सराहना करते हुए एक सुन्दर शब्दों में की है। यथा-

दोहा- राधे तू बड़ भागिनी, कौन तपस्या कीन ।  
तीन लोक के नाथ हरि, वो तेरे बाधीन ॥ १

### सार छन्द : शास्त्रीय विवेचन

सार छन्द की गणना , भाषिक सम वृत्त के अन्तर्गत की जाती है। इसमें २५ मात्राएँ , अन्त में दो गुरु तथा सील्ल, बारह पर यति होती है। अन्त में एक गुरु अथवा अन्त में दो लघु अथवा एक लघु एक गुरु का भी ' सार छन्द ' में प्रयोग देखा जाता है।

परमानन्ददास जी ने सारंग राग के अन्तर्गत ' सार ' छन्द का प्रयोग कई पदों में किया है। वसन्त धमार के पदों में भी सारंग राग एक लम्बे पद में सार छन्द का प्रयोग किया है। उदाहरण इस प्रकार उद्धृत है :

ताते तुमारी मोहि परोखी जायें । ३

### परमानन्दसागर में सार छन्द का प्रयोग

कही रस मोहन मोरे लाल श्याम तमाल छौरी खेली ।

१- कविवर परमानन्द दास और उनका साहित्य पृ० ३४

२- छन्द प्रभाकर, सप्तम संस्करण पृ० ६६

३- परमानन्द पद संग्रह पद सं० ३०६ - डा० दीन दयालु गुप्त

सार कृन्द- गृह गृह तै नवला बफला सी, जुरि जुरि मुठिन बाई ।  
 लईगा पीत हरे बीर राति, सारी खेत सुहाई ।  
 बति भीमी , फलकत नव सतनन , करत बटित पिनकाई ।  
 कहुकि कनक कपिस सब पहरै, तहँ उखन की झाई । ७

कविने इसी कृन्द में वृत्त में लघु गुरु दो मात्राओं का भी प्रयोग किया है  
 जैसे-

जहर तेहर पायस बनवर कुँवन हीरा बलिता ,  
 पीत पिहुरिया, तेसोई चरनन, जायक दीनी सलिता ।  
 यह विधि राधा रानी गई, ताहि सावरे सरिता ।  
 जो रसिक गाइ है ऐसे, प्रेम पुँज फल फलिता । २

परमानन्द सागर में जहाँ तक इस कृन्द की  
 उपयोगिता एवं प्रयोग का सम्बन्ध है, हम यह निःसंकोच कह सकते हैं कि  
 परमानन्ददास जी ने अपनी रचनाएँ कौन-कौन सी स्थलों पर विशेषतः 'सार'  
 कृन्द में लिखी की है, जहाँ तक प्रयोग का सम्बन्ध है कवि ने इस कृन्द के  
 वृत्तगत प्रग- संकृति से सम्बन्धित रीति रिवाजों एवं गोप- गोपियों के  
 दैनिक क्रिया कलापों के कई ही मनोहारी चित्र चित्रित किये हैं। कवि के  
 इस प्रकार के वर्णनों में कवि की काव्य- प्रतिभा एवं उसकी साहित्यिकता  
 का उचित समन्वय हो सका है। इतना ही नहीं, 'सार' कृन्द के प्रायो-  
 गिक सौन्दर्यों कवि की कल्पना शक्ति का क्रमिक विकास एक सहज एवं

१- कीर्तन संग्रह, भाग २ वसन्त , धमार, बैसाई पृ० १५४

२- .. .. . पृ० १५५, १५६

स्वाभाविक परिवेश में हुआ है। इस प्रकार के पदों का व्यक्त-मन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने पदों में जो कुछ गायन किया है वह सब कुछ उधने देना ही। इसी संदर्भ में हम यह कहना भी कभी नहीं भूलेंगे कि भक्त प्रवर महाकवि परमानन्ददास जी की काव्य रचना महाकवि 'सूरदास' जी की काव्य रचना के कन्ध से कन्धा मिलाकर चलती है। दोनों की रचना लेली राग, छन्द, एक अलंकार, वर्ण्य विषय आदि में प्रायः समानता के अतिरिक्त और कुछ मिलता है तो वह है वर्ण्य विषय की उल्लेख का वाच्यत्व।

### तार्टक छन्द : शास्त्रीय विवेचन

तार्टक छन्द की गणना मात्रिक सम्बन्धित छन्दों के अन्तर्गत की जाती है। इसमें तीस मात्राएँ, अन्त में धाण और षोडश-बीदह पर वृत्ति होती है।

### परमानन्द सागर में तार्टक छन्द का प्रयोग

परमानन्ददास जी ने राग मैत्र के अन्तर्गत तार्टक छन्द का प्रयोग किया है। प्रयोग-प्रवृत्ति की दृष्टि से 'परमानन्द सागर' में इसका स्थान प्रायः नगण्य सा ही रहा है। परन्तु एक वृद्ध पद के अन्त में परमानन्ददास जी ने कृष्ण के जन्म काल तथा उनके रूप-लीन्दर्य से सम्बन्धित भागीरथी का दिग्दर्शन इस छन्द के अन्तर्गत की ही मनोहारी ढंग से किया है जो निम्नप्रकार है :

देखी ही यह केशा बालक रानो अहमति जाया है  
 सुन्दर बदन कमल दल लोचन , देखा बंद लगाया है ॥  
 पुरान बल्लि अतल बविनासी प्रकट नंद घर जाया है ।  
 मोर मुकूट पीताम्बर सोई, केसरि तिलक लगाया है ॥

प्रस्तुत पद में कवि की इन्द्र प्रक्रिया के अन्तर्गत  
 कीकृष्ण जन्म प्रसंग से लेकर उनकी रूप सौन्दर्यता एवं महिमा गायन, अव-  
 तारवादी उद्देश्य का पूर्ण सफलता के दर्शन होते हैं। हम देखते हैं कि पद  
 की प्रत्येक पंक्ति में कवि की आत्मा अभिव्यक्ति की स्पष्ट काय पद में है।  
 कवि यह अभिव्यक्ति इतनी सहज और आकर्षक है कि सहृदय पाठक भी  
 कवि के आत्मिक भावों की वाग्धारा में बहने लगता है। इस प्रकार कवि  
 की तार्किक इन्द्र निर्गुणा कवि के मन्तव्य को पूर्ण करती हुई सहज आक-  
 र्शका के साथ काव्यमय प्रतीति होती है। इसी रूप में कवि का काव्योत्कर्ष  
 महान् सम्पन्नता चाहिए ।

चतुर्पय्या इन्द्र : सात्त्विक विवेक

इस इन्द्र को चतुर्पय्या इन्द्र भी कहते हैं। इसकी  
 मात्रिक रूप कुछ इन्द्रों में परिगणित किया जाता है। कुल तीस मात्राएँ  
 होती हैं। दस, आठ, बारह पर यति और अन्त में एक सगुण और एक  
 गुरु का प्रयोग होता है।

परमानन्द सागर में चतुर्पय्या इन्द्र का प्रयोग

सुनी हो जसोदा आज कहूँ तेगोकुल में ऊँ पैठित जायी ।

वफा सुत को हाथ दिखावे बहु कवि जो विधि निरमायी ॥  
 सुत ही का पट्टी पैर को जानि बुलाय दिया ऊरघासन ।  
 पाये पसारि पुनि बँधली ते सब द्विज पे पाँव्यो अनुसासन ॥

०

०

हृदय सुत का पैर बहुत गुन पुन पैरत या सम नहि कोऊ ।  
 'परमानन्द' करी नयीहाथर हति मन्द जोदा दीऊ ॥ १

'परमानन्द सागर' में इस पद की अवस्थिति लावनी राग के अन्तर्गत देखने को मिलती है। चर्चयेया इन्द्र के कतिपय उदाहरणों से पता चलता है कि इस इन्द्र का प्रयोग कवि ने कुछ विशिष्ट स्थलों पर ही किया है। उक्त पद में कवि के इन्द्र प्रयोग की विशिष्टता हमें उसकी प्रभावात्मकता एवं गेयात्मकता के सहज परिवेश में पाव- हृदय की वफा पुत्र ( श्रीकृष्ण ) के मविष्य की जिज्ञासा की प्रवृत्ति के रहस्योद्घाटन के रूप में दृष्टिगत होती है। कवि के पद की रचनागत विशेषता हमें इस रूप में भी दिखायी देती है कि कवि ने ब्रज संस्कृति के कितने वादों एवं शिष्टता पूर्ण चित्र चित्रित किये हैं। यथा वैदित जो को वफा पुत्र का हाथ दिखाने के लिए हुलाकर उनका हाथिक स्वागत करना, उनके चरण धोना तथा उनको यथा स्थान आसनापन्न करना आदि । इसके अतिरिक्त कवि ने श्रीकृष्ण पहिया को एक ऐसे नूतन ढंग से इन्द्रोद्घाटन किया है जिससे उसकी कल्पना कीमती प्रतियोगिता होने लगती है।

रोला इन्द्र : शास्त्रीय विवेक

रोला भी नात्रिक समग्र इन्द्र है। इसमें २४



पात्राएँ, ११, १३ पर यति होती है। उसमें प्रथम १२ पात्राओं में छः कल, दिकल, त्रिकल और दिसीय तेरह पात्राओं में त्रिकल, दिकल, छः कल और दिकल बाने चाहिए।

### परमानन्द सागर में रीला इन्द का प्रयोग

हरि रस जीषी सब गोष तिस्र ते न्याही ।

कमल नयन गोविंद बंद का प्रानन न्याही ॥ १

परमानन्द सागर में रीला इन्द का प्रयोग बहुत ही कम मिलता है। उक्त उदाहरण में कवि ने लयक कर्त्तार के परि-  
प्रस्य में हरि रस की उत्कृष्टता को चित्रित किया है। उस प्रकार के प्रसंगों के अतिरिक्त परमानन्द दास जी ने रीला इन्द का प्रयोग गोषधन रीला के पदों के अन्तर्गत भागितिक प्रसंगों का वर्णन करने में किया है :

घर घर फल हीत कसा है बाबु तुम्हारे ।

बहु विधि कसत रखों मध हूँ गयी सकारे ॥ २

परमानन्द दास जी ने उक्त इन्द रचना

राग बहानों के अन्तर्गत संजोयी है। इन्द शास्त्र की दृष्टि से उक्त उदा-  
हरण में पात्राओं की गणना आदि का उपर्युक्त एवं क्रमिक विकास निहित है।

### गीतिका इन्द : शास्त्रीय विवेक

गीतिका इन्द भी पात्रिक सम्पूर्ण इन्द है।

इसमें कुल २६ मात्राएं अन्त में गुरु लघु की १४, १२ पर यति होती है।

### परमानन्द सागर में गीतिका छन्द का प्रयोग

जागत जानन्द कंध हुलारी ।  
विधु बहनी कुनझी राधा दामोदर की च्यारी । ।  
बाँके रूप कह तबहि बाँके गुन विचित्र लुलुमारी ।  
मानो कहु पायी जन जानरि विधना रन्यो लवारी ।  
प्रीति परस्पर प्रीति न छुटे ब्रज जन रहे विनारी ।  
परमानन्द दास बलिहारी मानो सचि डारी ।। १

परमानन्द सागर के अन्तर्गत गीतिका छन्द का प्रयोग राग वसन्त में हुआ है। इस छन्द का प्रयोग विशुद्ध रूप में प्रायः कम ही दिसाई देता है। जहाँ तक रचना शैली का प्रश्न है इस छन्द शैली में पदों की कमी नहीं है। गीतिका छन्द- रचना में कृति के पदों में गेया-त्मकता का बाधित्व तो है ही, साथ ही पदों में माधुर्य सरसता एवं लृंगार सौन्दर्य वादि काव्य गुणों की भी कोई कमी नहीं है। उक्त पद रचना में गीतिकाछन्द के प्राणन में जीक साहित्यिक गुणों का समावेश हो सका है। उदाहरणार्थ कवि ने राधा-सौन्दर्य विवेचन को रूपक तथा उत्प्रेक्षाओं के प्रयोग से इस प्रकार छन्द बद्ध किया है जिससे कि परमानन्द दास के काव्य व्यक्तित्व एवं साहित्यिक क्षेत्र के कुशल पारसी होने का पता चलता है।

### कृतना छन्द : शास्त्रीय विवेचन

कृतना छन्द मात्रिक समवृत्त है। इसमें कुल २६

मात्राएं लादि में दिक्कत और अन्त में गुरु- लघु तथा सात सात और पाँच पर यति होती है।

### परमानन्दसागर में भ्रुकला इन्द्र का प्रयोग

मदन गोपाल बतिये लेंहीं ।

भ्रुकला विष्णि तरनि तरया तट चति ब्रजनाथ का लिंगन देखी।

सप्त निर्हुण सुन्द एति बालप नव क्षुमनि की सख बिछली ।

त्रिगुन समीर पैय फा विहस्त मिलि तुम पैग सुरति सुत फली ।

अपनी लीप ते जब बीसहुनि तब गुरु लादि लौती लेहीं ।

परमानन्द प्रभु चारु बदन की उदित उगार सुदित छवि

लेहीं ॥ ९

परमानन्द सागर में भ्रुकला इन्द्र का प्रयोग

राग सारंग के अन्तर्गत हुआ है। भ्रुकला इन्द्र का प्रयोग प्रायः सवीग शृंगार के वर्णन में किया गया है। प्रस्तुत पद में भी भ्रुकला-इन्द्र की ही हरित-भाव भुषि में सवीग-शृंगार की उल्लास प्रकृति होती दिखायी देती है।

### चौपाई- इन्द्र : ताल्चरीय त्रिवेन

यह भी एक मातृक सप्त वृत्त इन्द्र है। इसमें पन्द्रह मात्राएं और अन्त में गुरु लघु होती है। चौपाई इन्द्र का उदाहरण इस प्रकार है :

का लिवी तीर कसील लोल ।

महु स्ति ( महुस्स ) माधी महु र बील ॥

सुन्दर गावत वैनु गीत ।

बन माला रची है पुनीत ॥

० ०

परमानन्द स्वामी दयाल ।

भव भजन भय हरत काल ॥ ९

परमानन्द दास जी ने इस छन्द की रचना अन्त के अन्तर्गत नियोजित किया है। उक्त पद रचना के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि प्रकृति-वर्णन के प्रसंग में कवि ने चौपद छन्द का प्रयोग किया है। छन्द- रचना एवं प्रकृति के मौलिक स्वल्प वर्णन की दृष्टि से कवि की रचना में कहीं भी शैथिल्यता के दर्शन नहीं होते। कवि के इस छन्द वर्णन की यही प्रमुख विशिष्टता दिखायी देती है।

परमानन्द सागर में चौपद- छन्द का प्रयोग प्रायः कम देखने को मिलता है।

रूप माला छन्द :शास्त्रीय विवेचन

रूपमाला भी एक मौलिक रूप वृत्त छन्द है। इसमें कुल चौबीस मात्राएं अन्त में गुरु लघु तथा चौदह, दस पर यति होती हैं।

परमानन्द सागर में रूप माला छन्द का प्रयोग

पीली देल सब कीछ कह्यो यहाँ कि बाकी लाल ।

देव जग्य हम करत हैं, कर फज्वात रसाल ॥ २

प्रस्तुत छन्द- रत्ना का प्रयोग कवि ने

‘ राग- बहानी ’ के अन्तर्गत किया है। परमानन्द सागर में इस छन्द का प्रयोग कवि ने कतिपय विशिष्ट स्थलों पर ही किया है। अतः ‘ राग- बहानी ’ में इसके प्रयोग की प्रकृति का अभाव ही दृष्टिगत होता है। परन्तु जिन प्रसंगों में इस छन्द का प्रयोग वर्णन मिलता है उनमें कवि को किसी सीमा तक सफलता अवश्य मिली है।

लावनी छन्द : शास्त्रीय विवेचन

इस छन्द को भी मासिक सप्त सूत्र छन्दों में परिगणित किया गया है। इसमें मात्रा, गति, यति आदि के सभी नियम जटिल के ही समान होते हैं। अन्तर केवल इतना है कि इसमें अन्त में पाण्य नहीं होता है।

परमानन्द सागर में लावनी छन्द का प्रयोग

यु बनि आह नन्द बु के द्वारे, देरी बात चलाई रो ।  
लान पान सब तज्यो चाँदो लै सब लियो चुलाई रो ॥  
कौन नन्द काको सुत सज्जी, मै देख्यो सुन्यो न माई रो ।  
कूँकि कूँकि हों पाई धरत भरी फे पर तुगाई रो ॥ ९

प्रस्तुत छन्द रत्ना का विकास कवि ने ‘ राग- बहानी ’ के अन्तर्गत किया है। परमानन्ददास जी ने लावनी छन्द का

प्रयोग गीतियों के पारस्परिक वार्तालाप एवं राधा विषयक प्रयोगों की लेकर की है। वष्य विषय में माधुर्य गुण भाव के साथ साथ इन्दोपयोगी वर्णन की विशुद्धताके भी दर्शन होते हैं।

सली इन्द : शास्त्रीय विवेचन

सली भी माझि सप वृत्त इन्द है। एसमें कूल  
जीवह माझरं तथा लुत्त में मगण लखन कणन होत है।

परमानन्द सागर में सली इन्द का प्रयोग

चलतु ती ब्रज में जेये ।  
जहाँ राधा कृष्ण रंजिये ।  
प्रसन्न राव घर बासि ।  
तहाँ बति हल न्योति जियाये । १

परमानन्द दास जी ने प्रस्तुत इन्द का प्रयोग  
राग सारंग के अन्तर्गत किया है। सली इन्द का प्रयोग कवि ने राधा-  
कृष्ण एवं ब्रज महिमा गायन के प्रयोगों में किया है। इन्द के उदाहरण  
में पात्रा बादि का विधान इन्द शास्त्र के अनुरूप है। इस प्रकार वष्य  
विषय शास्त्रीय नियमों एवं रचना सौन्दर्य की दृष्टि से एक सफल चित्रण  
है।

१- परमानन्द सागर पृ० ३३४ पद ६२६

### विलास कन्द : शास्त्रीय विवेचन

विलास एक वर्णिक सम्पन्न कन्द है। इस कन्द में मन्यम हीरे है।

हीरे मन्यम शृंगिला से ही मिलित ।

भासु सित मरुता मेयस्कर, भावत हम सकला है जीवन । १

### परमानन्द सागर में विलास कन्द का प्रयोग

कौटिल्य हैं कठिन भृशुटि की जीविका

सर हू हैं सरस शब्द की कोट ॥

जानें चतुर न जाते दोट ।

प्रेम के फन्द कहा बड़ कोट ॥

परमानन्द प्रीति की जीट ।

जब कहीं जेबों परे कारीट ॥ २

परमानन्ददास ने इस कन्द का गायक राग सारंग विलास के अन्तर्गत किया है। प्रस्तुत उदाहरण में विलास कन्द की नियोजना कवि की आध्यात्मिक परःस्थिति का एक सफल चित्रण है। कन्द विशेष की संयोजना में कविने अपनी व्यक्तिगत रुचि एवं व्यवहार बुद्धि का परिचय देते हुए मात्राओं कादि का विशेष ध्यान नहीं दिया है। इसके अतिरिक्त कवि की रक्ता शैली में साहित्यिकता का पूर्णतः

१- कन्दशास्त्र- रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय -

२- परमानन्द सागर पृष्ठ १४२ पद ४१६

समावेश ही सका है। जहाँ तक छन्द की रचना कौशल का प्रश्न है, वह कल्पम है, उसका प्रारम्भ वाङ्मयात्मिकतावादी दृष्टिकोण की ध्यान में रखी हुए किया गया है। परन्तु अन्तिम पंक्तियों में कवि ने उसकी बलिष्ठी भीतिष्वादी वातावरण में की है। इस प्रकार कवि की रचना लेती उसके कौशल की पराकाष्ठा का ही सच्चा प्रमाण है।

### निष्कर्ष

परमानन्द सागर के उपर्युक्त छन्दों की उदाहरण सहित विवेचना करने के पश्चात् हम स्पष्टतः इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ये छन्दों के प्रयोगमें सभी समकालीन भक्त कवियों गुरदास कृष्णदास, कुम्भनदास आदि की रचनाओं से प्रभावित हैं। कवि ने अपनी रचनाओं में ब्रज शीघ्र में ही अधिक लोकप्रिय समझे जाने वाले रसिये, सावनी, बहर, चौबोले आदि की ही अधिक प्रश्रय दिया है। यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से भी उनको रचना में समकालीन प्रचलित सभी रूप विचयक छन्दों की जोखार भरणार रही है। आः उनके काव्य में छन्दों के प्रयोग के बारे में यह कहा जाय कि उनकी रचना छन्दों की धनी है तो बलिशयोजित नहीं होगी।

महाकवि की छन्द योजना के विषय में यह भी उल्लेखनीय है कि उनकी रचना में मात्रिक एवं वर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। परन्तु प्रचुरता मात्रिक छन्दों की ही अधिक रही है। इसके साथ साथ यह बता देना भी उचित नहीं होगा कि हमारे



कवि ने वक्तारणः पिंगल शास्त्र के नियमों का अनुगमन न करते हुए उसने  
 उस सर्व प्राणिगानुक्त संगीतात्मक स्मृति, प्रमाह, वर्ण-सौन्दर्य, सरिता  
 स्वाभाविकता, सुबोधता ऐतिहासिकता सर्व विशदता वादि तत्त्वों को  
 भी दृष्टि में रखकर अपनी छन्द-साधना की गति प्रदान की है। कतिपय  
 स्थलों पर कवि की रचना में उर्दू कवियों की बहर शैली का भी प्रयोग  
 सर्व प्रभाव दृष्टिगत होता है। उनकी रचना में किसी छन्द विशेष को ही  
 अधिक स्थान नहीं मिल सका है।

अतः उनकी छन्द संरचना अपना छन्द विधान  
 के विषय में संक्षिप्त में हम जाना ही करना देयकर समझते हैं कि उनका  
 छन्द विधान एक ऐसे गुणवत्ते के समान है जिसमें कि भाँति भाँति के मुख्य  
 अपनी नए नए सौन्दर्य के साथ सुन्दरता हेतु संजीये जाते हैं।

### पंचम अध्याय

#### परमानन्द सागर की भाषा और उसका

#### कलात्मक संविधान

परमानन्द सागर की वर्ण योजना , परमानन्द सागर की भाषा का कलात्मक स्वरूप, सागर में पात्रानुसृत भाषा का स्वरूप, परमानन्द सागर में भाषानुगामिनी भाषा का प्रकृत स्वरूप, परमानन्द सागर में सरल एवं प्रवाहमयी भाषा का स्वरूप , परमानन्द सागर में वस्तुत्व- कला पूर्ण भाषा का प्रयोग हीन्दव्यं , परमानन्द सागर की भाषा में सुहावरी, लोकोक्तिर्या और धृष्टिर्या , परमानन्द सागर की भाषा में सही बोली का प्रयोग , परमानन्द सागर की भाषा में शब्द निर्माण की प्रवृत्ति , परमानन्द सागर में क्लृप्- रणात्मक शब्दों का प्रयोग , परमानन्द सागर में निहित शब्दानली , तत्सम, अर्द्ध तत्सम , तद्भव, देशज, विदेशी आदि , विन्वास की दृष्टि से शब्द भेद , परमानन्द सागर में अर्द्ध तत्सम शब्दों का प्रयोग , तद्भव शब्दों का प्रयोग , परमानन्द सागर में प्रयुक्त ब्रज भाषा के शब्द , परमानन्द सागर में विदेशी शब्दों का प्रयोग, परमानन्द सागर में प्रयुक्त अन्य उपाभाषाओं के शब्दों का प्रयोग , परमानन्द सागर में देशज शब्दों का प्रयोग, परमानन्द सागर में प्रयुक्त क्रिया पदों के उदाहरण, परमानन्द सागर की भाषा में सधार्य शब्द एवं साधारिक पदवली, परमानन्द सागर की भाषा में शब्दों का निजी प्रयोग ।

### परमानन्द सागर की भाषा और उसका कलात्मक संविधान

परमानन्द सागर की भाषा का लोच  
 अत्यन्त व्यापक है, क्योंकि 'सागर' की भाषा में ब्रज भाषा के  
 तत्सम एवं तद्भव शब्दों के प्रयोगके साथ-साथ देशज शब्दों का भी सुष्ठु  
 प्रयोग हुआ है। इन शब्दों के प्रयोग के साथ ही कवि की रचना में लोकी-  
 वित्तियाँ, मुहावरें एवं सूक्तियाँ की कृता भी अत्यन्त मनोहारी हैं। इस  
 प्रकार कवि की रचना पाठकों की भाव मन करने की तृप्त प्राप्तता रखती  
 है। 'सागर' की रचना में मध्यकालीन ब्रज भाषा के उत्कृष्ट रूप के  
 प्रयोग के साथ साथ लड़ी बीली के प्रारम्भिक रूप के दर्शन भी होने लगते  
 हैं। लड़ी बीली के वसतिरिक्त राजस्थानी अवधी मातवी तथा बुन्देली के  
 शब्दों एवं क्रिया पदों का प्रयोग भी मिलता है।

परमानन्ददास जी ने विदेशी शब्दों बर्णों  
 तथा फारसी आदि भाषाओं के शब्दों का कात्थान प्रयोग किया है।  
 परमानन्द सागर में प्रयुक्त शब्दों के विषय में निष्कर्ष स्वल्प हम यह  
 कह सकते हैं कि 'सागर' में ब्रज भाषा के तद्भव शब्दों का सर्वाधिक  
 प्रयोग हुआ है। कवि की भाषा कर्नाजीपन लिए हुए है। उनकी भाषा  
 में ब्रज भाषा का विकसित रूप सर्वत्र देखी जा मिलता है। कवि की भाषा  
 का कलात्मक संविधान उपर्युक्त वर्णित भाषा के शब्दों के प्रयोग में भाषा-  
 सुकृत हुआ है। उनकी संस्कृत पद-नियोजना एवं भाषा वैविध्य के लक्ष्यगत  
 साहित्यिक सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। साधारणतया उनकी भाषा के कला-  
 त्मकस्वरूप संघटन से यहाँ हमारा तात्पर्य रूप, गुण, ध्वनि, शब्द संगीत  
 शब्द सन्नि, रुन्द विधान, मुहावरे लोचितियाँ सूक्तियाँ आदि का अध्ययन  
 करना है।

### परमानन्द रागर की वर्ण- योजना

वर्ण- योजना भाषा शैली का ही एक ढाँचा है। किसी भी कवि की वर्ण- योजना कितनी समुचित एवं व्यवस्थित होगी भाषा भी उतनी ही सशक्त सिद्ध होगी। यही कारण है कि काव्य- कला के अन्तर्गत वर्ण योजना का एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। साहित्याचार्यों ने आदर्श वर्ण- योजना के कुछ माप दण्ड निर्धारित किये हैं। आचार्य कृतक ने वर्ण- विन्यास- षड्वर्ण के सम्बन्ध में भी मानदण्ड निर्धारित किये हैं, उनका विवरण इस प्रकार है- वर्ण- योजना सदा प्रस्तुत विषय के अनुकूल होनी चाहिए। उसका प्रयोग केवल वर्ण- साम्य के व्यवह-मात्र के कारण नहीं होना चाहिए क्योंकि वाँचित्य के अभाव में प्रतिपाद का रूप विकृत हो जाता है। वर्ण-योजना में आग्रह की वृत्ति नहीं होनी चाहिए। और न उसमें अनुन्दर वर्णों का प्रयोग होना चाहिए। प्रसाद गुण की रक्षा वर्ण- योजना का प्रथम उद्देश्य होता चाहिए। श्रुति- पैकता तथा प्रतिपाद की अनुकूलता वर्ण- योजना के सर्व प्रमुख गुण हैं।

उपरोक्त मानदण्डों के आधार पर परमानन्द दास जी की वर्ण- योजना पूर्णतया सही उतरती है क्योंकि इनकी भाषा में माधुर्य एवं संगीत की ऋद्धिम शृंग सर्वत्र सुनायी देती है। प्रतिपाद- अनु- कूलन एवं माधुर्य तो इनकी भाषा के विशिष्ट गुण हैं। कहीं कहीं उनकी वर्ण- योजना के प्रति आग्रह का आधिक्य तो दिखाई दे जाता है परन्तु कवि का दृष्टिकोण भावों की प्रधानता की ओर ही दृष्टिगत होता है। कवि राधा कृष्णोपासक होने के कारण उसकी वर्ण- योजना उसके भक्ति-मय सदैव विराजमान राधा- कृष्ण के कारुणिक स्वरूप दृश्य एवं उनकी

सीताजी के सजीव चित्र तथा तत्सम्बन्धित संगीत के मृदुली हुए स्वरों की प्रस्तुति करने में सहायक तत्त्व के रूप में प्रयुक्त होती दिखायी देती है।

प्रायः सभी कृष्ण भक्तिकालीन कवियों की रचनाओं में संगीत-तत्त्व का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रहा है, उन सभी में एक बान्तरिक संगीत है परन्तु परमानन्ददास की रचनाओं में शास्त्रीय संगीत की गरिमा के साथ साथ उनकी वर्ण योजना में लोक गीतों की धुन की झनकार का आधिपत्य दिखाई देता है। कृष्ण भक्त कवियों की वर्ण-योजना में तीन प्रमुख उद्देश्य निहित हैं :

- १- भाषा-व्यंजना के लिए उपयुक्त भाषा-निर्माण हेतु
- २- भाषा की लय बद्ध तथा संगीत तत्त्व को समाविष्ट करने हेतु ।
- ३- भाषा तर्कण हेतु

परमानन्ददास की वर्ण-योजना में उपर्युक्त केवल दो लक्ष्यों का ही प्रतिपादन मिलता है उनकी वर्ण-योजना में तर्क-करण का कोई प्रयोजन दिखाई नहीं देता । उनकी वर्ण-योजना में सौष्ट की मृदुलता तथा कृत्रिमता का आधिपत्य रहा है।

उनकी भाषा शैली तथा वर्ण-योजना का प्रमुख लक्ष्य प्रतिपाद में निहित अनुभूतियों को प्रसारणी भाषा में अभिव्यक्त करना है। भाषा के गतिशील के लिए उसमें अन्त्यानुप्रास की सहजता के सहज ही वर्णन ही जाते हैं। यथा-

चंचल वा नि नचावत वल्ल लीह लगावत तान ।

सब ही हस्त ले मंद चलावत करत बाबा की जान ।

पाग की प्यारी चरम जागरी बन जाई ।  
 लप नागरी गोपी एक सब देख जाई ॥ १

इसके अतिरिक्त उनकी रचना में वायानुप्रास  
 का लप भी सहाय एवं स्वाभाविकता लिए हुए है :

जी माये सौही भरे मोहन माधुरी मधुर स्वास ।  
 जी सुत सनकादिक की हुरलम हुरि देखत प्रज बाल । २

परमानन्द दास जी की भाषा प्रभावोत्पन्न  
 भाषामिव्यक्ति के लिए वाचस्पति के परिशिष्ट में माधुर्य भावके अतिरिक्त है  
 अभिप्रेत दिखाते देती है। "सागर" की निम्नोक्त पंक्ति वर्तकृत निमी-  
 क्षित न होकर भी उचित की समस्त शक्ति "रस" की वाचस्पति के द्वारा  
 हो यिक्ति है।

वासि रस बन रस, पत रस सब रस नन्द नन्द के पये । ३

परमानन्ददास जी की वर्ण योजना के विषय  
 में ब्रज भाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यक्ति शिल्प के अन्तर्गत वसा  
 अभिमत व्यक्त करने हुए डा० सावित्री सिन्हा के शब्दों में :

"परमानन्द दास जी की वर्ण-योजना  
 की गति स्वस्थ वर्तकृत ग्राम बालिका के समान है जिसका सौन्दर्य अपनी  
 जाय ही निरंतर बढ़ता है।" परन्तु इतना अवश्य है कि उनकी इस प्रकार  
 की योजना सम्पूर्ण रूप से सर्वत्र सभी पदों में नहीं दिखाई देती । अमात्रिक

१- परमानन्द दास पृ० ३२ पद ६५

२- " १०५ पद ३१५

३- " ६७ पद २१०

सब वर्णों में उसकी मन्दिर गति की सहेजा की वधिकास पत्नी में मिल जाती है परन्तु पत्नी के बीच में कहीं कहीं सहेजा उसकी मन्दिर गति की गतिशील रूप में देती है। उनकी इस प्रकार की योजना ने वर्णनात्मक रूपों की सजीव रूप दे दिया है। निम्नोक्त पद में उनकी इस योजना का मुख्य उस समय चित्रित हो जाता है जबकि मालिन यहीदा से कुछ प्राप्त हो चुका होता है कहती है :

मणि धुवाँसि नार रुकाई ।

भगवत वल करत कीतकल चिरवीणि तेरी हुँवर

कन्हाण १

परमानन्द दास की की वर्ण-योजना की

सबसे बड़ी विशेषता इस रूप में दृष्टिगत होती है कि उनके पदों की एक एक पंक्ति में ही वर्ण- यैवी तथा अनुप्रास योजना का निर्वाह किया है। व्यष्टिगत के सम्पूर्ण कवियों में परमानन्द दास ही एक मात्र कवि हैं जिनकी अनुप्रास का चरमोत्कर्ष ही कलात्मक योजना बन कर हमारे समक्ष आया है रूप में उपस्थित हो जाता है। इस चीज में हम की अनुप्रासियों में परमानन्द दास की की अनुप्रासियों का संस्पर्श नहीं कर सकी हैं और न ही उनमें अपने उद्देश्य के दर्शन हो सके हैं। क्या-

कमल वल नेना ।

जितवनि नारु नरु जितवनि मृदु नरु माधी केना ।

कहा करी घर गया न माके वलनि कलनि गति धाकी ।

स्याम सुन्दर रसि दासी कीनी ललित पर गति ताकी ॥२

१- परमानन्द सागर पृ० १०६ पद ३१६

२- .. पृ० १५२ पद ४५०

प्रस्तुत प्रसंग में अन्य पंक्तियों की साधारण  
प्रति में द्वितीय पंक्ति की भाव- योजना देखी प्रतीत होती है यानी किसी  
ग्राम्य किसीरी की वत्सल भावना अपने सौन्दर्य के प्रति जाण पात्र के लिए  
छियाशील होकर पुनः अपने सहज वत्सल्य में अपने को ली दिया ली ।  
निम्नोक्त की पंक्तियों में भी कवि वर्ण- सौन्दर्य के प्रति सजगतापूर्ण वाता-  
वरण में पुनः अपनी सामान्य स्थिति में आ जाता है :

का लिन्दो तीर कलोल लोल ,  
मधुर हू पाधी मधुर नील ॥ १

परमानन्ददास जी की वर्ण- योजना में  
काव्य के वाङ्मय सौन्दर्य संयोजन की पूर्णतः रगान नहीं दिया गया बल्कि  
उसके प्रति कवि ने उपेक्षा की दृष्टि से ही रही है इसके विपरिन्त कवि  
विहंगम दृष्टि प्रतिपाद की क्लृप्तता पर केन्द्रित रही है। इस विधान की  
व्यवस्था हेतु कवि ने सर्वत्र लघु तथा क्लृप्त कोपल वर्णों का सहारा  
लिया है, वर्णों के सूजन, मैत्री आदि की वीर कवि संवेष्ट नहीं दिखाई  
देता है। उनकी भाषा का रम्य रूप सज्ज एवं स्वभाविकता के परिचित  
में ही फलता फूलता रहा है, वर्णनात्मक एवं अप्रस्तुत योजनान्तर्गत भी  
कवि का दृष्टिकोण परिवर्तित नहीं हुआ है। गया-

जब कहे पावत हैं जावन ।

सुन्दरता सब गुन को पूरित ब्रज तजि बसे मधुपुरी जावन ॥

०

०

०

रे कूर कूर सुफल सुत तोहि न हूमिये दूतहि जावन ।

परमानन्द स्वामी पिलि की लागी है गोपी पिधिहि

जावन ॥ २



उपर्युक्त पद में जाणान्त तद्यु तथा वनाज्जि

वर्णों का ही वाधिव्य रहा है। दीर्घ मात्राओं का प्रयोग जहाँ मुख्य रूप से वावरक था वहीं मिलता है। वर्णों में कटु वर्णों का अभाव ही है, इस प्रकार के वर्णन में कवि चित्र योजना में संश्लेष न होते हुए भी उस सख्य तथा स्वाभाविक वातावरण में लोक प्रकार के चित्र पाठकों के समक्ष उप-  
स्थित होजाते हैं। इसी प्रकार बहुत सी ध्वनियाँ भी सुसंस्थित होती नयी  
हैं।

इस प्रकार कवि की स्वाभाविक वर्ण-योजना की ध्वनि एवं रसाचित्र के इस निम्नीकृत उदाहरण द्वारा देह सकते हैं,  
जिसमें कि यशोदा दधि मन्थन कर रही हैं :

प्रातः सौ गौपी नन्द रानी ।

म्रम तति उपजत तेहि असर दधि मयत भार मयानी ॥

०

०

संनत अवसत कृन् हारावति की बलित तसित कुम्भाकर ।

मनि प्रकार नहीं दीप उपल्ला सख भाव राजत ग्वातिन

पर ॥१९

निम्नीकृत उदाहरण में श्रीकृष्ण के रूप सौंदर्य तथा उसके प्रति गोपियों के सख्य वाक्यांश के चित्र में वर्णित वर्ण-योजना किसनी सखीय ही उठी है :

जब नन्दताल नयन भरि देखे ।

एक टक रही सम्हार न तन की मोहन मुरति देखे ।

भी मुक्त कवित्त मन्द मुहु मुक्तनि तित करति मत्त नन्द किरी । १

कलकारों के बीच में भी कवि की वर्ण-  
योजना कल्पित प्रसनीय है। पूर्ववत् कलकारों के प्रकरण में उस सन्दर्भ में  
प्रकाश डाला जा चुका है।

### परमानन्द सागर की भाषा का कलात्मक स्वरूप

किसी भी कवि की कृति विशेष के कलात्मक  
स्वरूप का मूल्यांकन करने से पूर्व कवि की रचना में उसका शब्द-जयन, शब्द-  
सक्ति शब्द में संगीत तत्त्व, विम्ब ग्राह्यता, ध्वन्यात्मकता आदि मूल्य  
तत्त्वों का कहां तक समुचित ढंग से निर्वाह किया गया है। उक्त कल्पित  
विशेषताओं के अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व उसकी रचना की भावा-  
मिव्यक्ति की शक्तता है भी है। उसकी अनुसृत शब्द-योजना कवि की कल्पना  
को कहां तक साकार कर सकी है। कवि की भावामिव्यक्ता का तत्कालीन  
जन-जीवन से कंसा सम्बन्ध है आदि बातों पर विचार करना अति आवश्यक  
ही जाता है। प्रस्तुत प्रकरण में हम कवि की भावामिव्यक्ता की भाषा के  
वन्द्य स्वरूपों के साथ साथ उसमें प्रयुक्त लोकोक्ति, मुहावरें एवं सूक्तियों  
के सन्दर्भ में भी देखने का प्रयास करेंगे। सर्वप्रथम सागर में प्रयुक्त पादानुसृत  
भाषा के सन्दर्भ में हम विवेचन करेंगे।

### सागर में पादानुसृत भाषा का स्वरूप

परमानन्द सागर एक महाकाव्य है जिसके

अन्तर्गत कवि ने लीला स्वरूप श्रीकृष्ण भगवान् की मीठी-सी एवं मीठी-सी लीलाओं में अपनी कुशल रचना शक्ति एवं भक्ति-साधना द्वारा प्राण भर दिए हैं। श्रीकृष्ण की बात एवं पीगण्ड अवस्था से सम्बन्धित प्रायः सभी लीलाओं के जो भी चित्र संभव हो सकते थे, परमानन्द दास जी ने बड़े ही स्वाभाविक एवं मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किये हैं। उनके चित्रण में सबसे बड़ी विशेषता पात्रानुसृत एवं प्रसंगानुसृत भाषा के प्रयोग की है। कवि ने गोप, गोपिकाओं, श्रीकृष्ण तथा राधा विषयक सभी लीलाओं के भाव चित्र अपनी कल्पना के माध्यम से सजीव कर दिए हैं। कवि ने प्रसंगा-नुसृत पात्रों द्वारा ऐसा दृश्य स्पर्शों वर्णन किया है। मानो कवि बहुत दूर-दूर की अपनी बालों से देख रहा हो, उदाहरणार्थ गोवर्धन धारण का एक दृश्य प्रस्तुत है :

बावहु रे बावहु रे ग्वाली या पर्वत की इधियाँ ।  
गावहु नाचहु कराह कुलाहल जिन डरपहु मन मरियाँ ॥  
जिन तुम्हरी फलान जो लायी अब सोई रक्षा करि है ।  
परमानन्ददास की ठाकुर गोवर्धन कर धरि है ॥ १

उक्त प्रसंग में कवि ने कितना व्यर्थ चित्रण किया है, ग्वाल बालों की भाषा में ही ( बावहु रे, बावहु रे, गावहु नाचहु ) आदि शब्दों के प्रयोग द्वारा प्रसंगानुसृत वर्णन किया है।

परमानन्द दास गोपियों की मीठी-सी तथा उनके नैसर्गिक स्वभाव की अभिव्यक्ति 'चोर हरण' के एक प्रसंग में कितने स्वाभाविक परिवेश में कूट ढंग से करते हुए सत्ताम विलास देते हैं :

देही ब्रजनाथ हमारी वाणी ।  
 ना तरु रंग विरंग होयकी कहे बिरियाँ हम मांगी ।  
 ब्रज के लोग कहा कहेंगे देस परस्पर वाणी ।  
 ली चतुर हरि ली वन्तरगत रंग परी कब जागी ॥  
 सकल मूत कनन के वागी बीच खनन की धागी ।  
 परमानन्द प्रभु दोजिर काहेन प्रेम सुरंग रंग पागी ॥१

परमानन्द सागर में पात्रानुसृत भाषा के  
 पदों की कमी नहीं है, इसी प्रकार की भाषा एक अन्य चित्र निम्नोक्त  
 पद में द्रष्टव्य है, जिसमें राधा अपने लालसे पुत्र के लिए कितनी तरह से  
 माधुर्य पूर्ण शब्द योजना का प्रयोग किया है :

वपने लाल के रंग राती ।  
 जा दिन से कटि बसन लपेट्यो ता दिन से रंग जाती ।  
 बन बन हँडत रहन हरिहिं कब सुरत रंग हर जाती ।  
 परमानन्द प्रभु रंग रंग नागर जीवन बाल संघाती ॥ २

उक्त पद की प्रथम पंक्ति में 'लाल',  
 'रंग राती' शब्द स्नेहमयी भावना के सूचक हैं, जो कि पार्वी बेटे के अतिशय  
 सम्बन्ध का सूचक एवं परम स्नेह के परिचायक हैं। इसी पंक्ति में रंग राती  
 शब्द में मुहावरे के प्रयोग का भी भाव निहित है।

'वभितार' के प्रसंग में कवि ने राधा की  
 उल्टी द्वारा राधा की अधिकृष्ण से वभितार करने के चित्रण जिस प्रकार

१- परमानन्द सागर पृ० २७६ पद ६०९

२-       ..                   २१६ पद ६०६

पात्रानुसृत एवं प्रसंगानुसृत सद्भावली का निर्माण किया है यह स्त्री-पात्रों की अभिरूचि की अभिव्यक्ति का ( अवतरानुसृत, भाषा-शैली ) का प्रतिनिधित्व करती दितार्क होती है। यथा-

सुनि राधा एक बात मली ।

तू किन डरे हैन अधियारी मेरे पाछे जाउ चली ॥

तहाँ से जाऊँ मदन मोहन पे मे देखी एक एक गली ।

सघन निर्द्वज कृष्णनि रसि भूतल वाड़ी विटप तली ।

हरि की कृपा की मोहि मरीचो प्रेम नतुर चित करत

अली ॥

परमानन्द स्वामी की मिलिकै मित्र उदै केँ केवल चली ॥१॥

### परमानन्दसागर में भावानुगामिनी भाषा का प्रकृत स्वरूप

परमानन्द सागर में प्रकृत पात्रानुरूप भाषा के अध्ययन के पश्चात् प्रस्तुत प्रकरण में हम सागर की भावानुगामिनी भाषा पर भी अपनी विचार प्रस्तुत करेंगे । निःसंदेह परमानन्द सागर की भाषा भावों के परिवेश की कली फुली है उसके वंशिकाश पत्तों में भावों की उत्कृष्टता के दर्शन होते हैं। कवि ने जिस किसी भाव का उल्लेख करना चाहा है चाहे वह वात्सल्य वर्णन में हो , मातृ-स्नेह भाव के रूप में हो वरदा गोप-गोपियों के प्रेममयी भावना के भाव चित्र हों उनमें भावों की पात्रानुसृत भाषा द्वारा प्रस्तुत करके एक चित्र या तड़ा कर देते हैं। इस प्रकार भाव-

चित्रणों में कवि की भाषा भी भावों की कृपा मिली बनकर चलती हुई दिखाई देती है। कवि की इस प्रकार की भाषा के कतिपय प्रसृत उदाहरण इस प्रकार हैं :

मेया मोहि रेखी सुलहिन भावे ।  
 जैसी यह काहू कि छिठीनियाँ रुनक भुनक घर लावे ।  
 कर फखान खास रखीई बफे कर लै मोहि जिभावे ।  
 कर बैल पट बीर बाबा को ठाढ़ी व्यार हरावे ॥  
 मोहि उठाय गीद बैठारे कर फुहार फावे ।  
 जहाँ धेर लाल कही बाबा लीं तेरी व्याह करावे ॥  
 नंदराय नंदरानी किलमिल सुख समुद्र बढ़ावे ।  
 परमानंद प्रभु को बातें सुन जानन्द उर न सपावे ॥ १

उपरोक्त उदाहरण राधा बीर श्रीकृष्ण के बाल्य जीवन अवस्था के प्रथम बीर प्रसाद प्रेममयी वातावरण की एक कूठी भाँकी प्रस्तुत करता है। कथन श्रीकृष्ण का अपनी मातायगीदा के प्रति है जिसका लक्ष्य राधा है, श्रीकृष्ण के प्रथम प्रेम व्यापार की कवि ने विवाह के प्रसंग के अन्तर्गत स्वाभाविक रूप प्रसृत भाषा में प्रस्तुत किया है।

माधुर्य गुण से युक्त भावानुगाभिनी एवं प्रेमासिक्त भाषा के प्रयोग में कवि की रुचि रचना की कितनी सफलता मिलती है, यह स्पष्ट है। बाल कृष्ण की मनोभावना को व्यक्त करने में कवि ने जिस प्रकार की भाषा शैली का प्रयोग किया है, उसमें किंचित्

मात्र भी कृत्रिमता दिखाई नहीं देती । भाषा पूर्णतः भावों का अनुसरण करती दीप्त पड़ती है। लीकृष्ण अपनी दुलहिन के विषय में माता यशोदा से किसनी मृदुल भाषा में कह रहे हैं कि मैं मुझे उस प्रकार कि दुलहिन ला दे जैसी कि यह किसी की लड़की रुनक रुनक की जावाबु करती हुई हमारे घर जाती है। बापे उनके बारे में अपना मनीमत भावों को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि वह उस प्रकार की ही जो कि मुझे स्वादिष्ट फलवन बना बना कर अपने ही हाथ से खिलाया करे तथा अपनी वस्त्र की खीर से गर्मी में मेरी हवा किया करे जादि । माता इसका प्रतिउत्तर भी कितने मधुर शब्दों में कर रही हैं कि हे । मेरे लाल बाबा से कही कि वह तेरा विवाह सम्पन्न करे । इस प्रकार के वार्तालाप से स्वाभाविक है कि नंद जीर यशोदा के हृदयों में अपरिमित प्रेम का सागर उमड़े ।

इस प्रकार के वर्णन में जैसे कि एक माता के हृदय में अपने पुत्र की प्रेम सम्बन्धी जाकांजाबी की सुनकर भावना पैदा होनी चाहिये थी । उसी प्रकार की भाव- योजना सर्व भावानुगाप्ति भाषा की निदर्शना परमानन्द दास जी के इस पद में देखने की मिलती है। भाषा भावों को क्रमिक रूप से विकसित करने में भी पूर्णतः सक्षम है।

भावानुगाप्ति भाषा का एक अन्य उदाहरण भी दर्शनीय है :

भलि गयी मेरी भाज्ज फौरि ।

कहा री कहुँ सुत मातजसोदा बरुमात्त लायो जीरि ।

तरिका पांच सात रंग लोने रोके रक्त सफ़िरी सोरि ॥

मास में कीठ चलन न यावत तैत हाथ से दूध मरोर ।  
 समक न परत या ढोटा की रात विषस गीरु ठंडोर ।  
 बान्हि फिरत फाग सौ लेत तारी पैत हंसतमुख मोर ॥  
 सुन्दर स्याम गीली ढोरा सब ब्रज बाँध्यों प्रेम की डोर ।  
 परमानन्ददास की ठाहुर स्यानी ग्यातिन तैत बलैया वीर डोर ॥१

यह मनोविज्ञानिक तथ्य है कि बालक अपराध करने के पश्चात् अपने परिवारीय जनों से छिपा चाहता है। अधिक्रीतः बालकों में यह प्रवृत्ति देखी की मिलती है। इसी स्वाभाविक बाल-मनो-वृत्ति का चित्र परमानन्द दास जी ने बड़े ही कौशल के साथ किया है। उनकी दूध दधि चुराकर खाने की प्रवृत्ति की भी पूर्ण गण्डली सहित व्यक्त किया है। चुराकर खाने की प्रवृत्ति के सम्बन्धित जी भी क्रिया कलाप, चेष्टाएँ वातावरण जिस प्रकार के होने चाहिये थे, उसी प्रकार के प्रत्येक भाव को लेकर उनकी भाषा का यह मधुरतम रूप उक्त पद में दिलायी देता है।

परमानन्द सागर के अन्तर्गत इस प्रकार के सजीव एवं मार्मिक वर्णनों के उदाहरणों की कमी नहीं है। उनके इस प्रकार के वर्णन भाषानुगात्मिकी भाषा के बड़े सज्जन उदाहरण सिद्ध होती हैं।

परमानन्द सागर में सर्व सर्व प्रवाहमयी भाषा का स्वरूप

परमानन्द सागर की भाषा की सबसे बड़ी



विशेषता उसमें प्रयुक्त सरस एवं प्रवाहमयी भाषा के स्वरूप की रही है। कवि ने अपनी वात्मानुभूतियों को श्रीकृष्ण लीला गान के अन्तर्गत अपने सरस एवं सरिता पूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया है कि उसके रचना प्रवाह में कहीं भी क्लिष्टता के दर्शन नहीं होते यों तो प्रायः वाष्ट्याप के सभी कवियों को भाषा में सरसता का प्राचुर्य मिलता है। परन्तु परमानन्द दास जी की भाषा में यह गुण और भी उत्कृष्ट रूप से मुखरित हुआ है। इसका एक मात्र कारण श्रीकृष्ण राधा के प्रति उनका असीमित भावित भाव ही माना जायेगा कि क्योंकि भक्ति विमोहता में कवि के मुखर विन्दु से जो भी स्वाधारा एक कृत्रिम कान्ति की भाँति फूट पड़ी वही काव्य धारा के रूप में प्रवहित होगयी। इस काव्य धारा की प्रवाहित होने में अप-साधना के लिए न तो कोई आवश्यकता ही थी और न कवि के पास जتنا अवसर ही था। अतः परमानन्ददास जी की भाषा में कृत्रिमता एवं क्लिष्टता के कहीं भी दर्शन नहीं होते। कवि की भाषा का सौन्दर्य उसके सरस एवं सरितापूर्ण वातावरण में विकसित हुआ है। इस सन्दर्भ में परमानन्द सागर से उद्धृत कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य है :

धुनि पैरी बदन इबोली राधा ।  
 तै पायी रस सिंधु बगाधा ॥  
 जो रस निगम नेति नित भाख्यी ।  
 ताको तै अधराभूत भाख्यी ।

०

०

सैरी भाग्य मोहि कस्त न आवै ।  
 कह्यक रस परमानन्द नावै ॥ १

रत्ना का श्रमिक विकास सज्ज, सरस एवं स्वाभाविक वातावरण में कितनी सुन्दर ढंग से हुआ है। कवि की नैसर्गिक शब्द योजना में किञ्चित् मात्र भी उसके चम्पटा रस रहने का वातावरण तक नहीं होता है। राधा की एक चतुर सखी राधा है कितनी वृहत् भाषा में उसके भाग्यमान होने की बात की सुमधुर ढंग से उच्चरित कर रही है। उसके एक एक शब्द में सरसता एवं गुणानुसूतता का भाव स्पष्ट रूप से दिखायी देता है। वह राधा के लिए 'बबोली' शब्द का प्रयोग करती है जो कि राधा के गुण स्वाभावानुसूतता का ही पीतक है। इसी प्रकार वीरुष्ण के लिए 'रस सिंधु जगाधा' भी पूर्णतया रस पूर्ण तथा उनके गुणों के अनुकूल ही प्रयोग कराया है। 'अधराभूत' 'चाख्यो' शब्दों में सरसता का भाव निहित है। इसी प्रकार समस्त रत्ना का विकास सरसतापूर्ण भाषा के प्रयोग से प्रभावयुक्त है। उसके गायन में कहीं भी गति अवरोधता दिखाई नहीं देती।

परमानन्द सागर में उपर्युक्त विशेषताओं से युक्त पदों की कोई कमी नहीं है। इस प्रकार की भाषा के प्रयोग से परमानन्द सागर पूर्णतः धनी है।

परमानन्द सागर में वक्तृत्व- कला पूर्ण भाषा का प्रयोग सौन्दर्य

वक्तृत्व- कला का भाव- प्रदर्शन कवि को शब्द सँघटना उस स्थिति में करता है जबकि एक ही केन्द्रीय भाव की व्यंजना अन्य प्रकार की विधाओं से की जाती है। कवि को इस प्रकार की भाव- व्यंजना उसकी रत्ना की उत्कृष्ट प्रभावोत्पादक बना देती है। इस

प्रकार की रचना कवि के अगाध भाषा पांडित्य की परिणामक होती है।

परमानन्द सागर के अन्तर्गत राधा जीर  
शोकृष्ण के 'बनिसार' के प्रयोग में वक्तृत्व-कला का निदर्शन निम्नोक्त  
प्रकार की भाव भूमि में विकसित होता दिखाई देता है :

करन दैलोगन को उपहास ।  
मन भ्रम बन् नंद नंदन की निनिष न झाड़ी पास ॥  
सबहुटुम्ब के लोग निकनियाँ भरे जाने पास ।  
जब तौ जिय ऐसी बनि वारी वर्यो मानौ तस जास ।  
जब वर्यो रण्यो परे चुन सकनो एक गाँव को बास ।  
दे वारी नीकी जानत हैं जन 'परमानन्द पास ।' १

उक्त रचना में राधा के स्वर्ण में शोकृष्ण के प्रति उदीप्त आत्मानुराग से व्यंजित शब्द-योजना का प्रसस्तम रूप ही परिलक्षित होता है। राधा शोकृष्ण के प्रेम में अपनी केन्द्रित हो गयी है कि वह फल मात्र को भी उनका साथ मन भ्रम वचन से छोड़ना नहीं चाहती। वह अपनी सती से यहाँ तक कहे बिना नहीं छूटती कि सब लोग ईर्ष्य हैं, तो भी उसे कोई चिन्ता नहीं है। उसके लिए परिवारिक भी घास फूस के समान है। उस प्रसंग में राधा शोकृष्ण के रंग में पूर्णतया रंगी हुई है और लोक समाज तथा परिवारिक उससे तिर उभरता तथा भर्त्सना के केन्द्र मात्र बन कर रह गयी है।

### परमानन्द सागर की भाषा में मुहावरों, लोकोपित्यों और सूक्तियों

परमानन्ददास जी की भाषा में मुहावरों और लोकोपित्यों का प्रयोग भी बड़े बहिर्व्यञ्जात्मक स्वरों में देखने को मिलता है। इस प्रकार की भाषा का प्रयोग दान लीला, मान लीला और प्रेम गीत के अन्तर्गत हुआ है। इन प्रसंगों में गोपियों के तीक्ष्ण वचनों की व्यञ्जना लोकोपित्यों मुहावरों और सूक्तियों युक्त भाषा के अन्तर्गत बड़े ही स्वाभाविक रूप में हुई है। इनके प्रयोग से 'सागर' की भाषा की पात्रानुकूलता का गुण सजीवता एवं मार्मिकता और भी बढ़ गयी है। गोपियों के प्रति यशोदा की लीला, श्रीकृष्ण के प्रति गोप और गोपिकाओं के उपासक वर्णन अत्यन्त ही शक्ति एवं प्रभावपूर्ण बन पड़े हैं। इन्हीं के द्वारा उनकी भाषा में एक मृदुल एवं सहजानुराग युक्त प्रेम प्रवाह के हमें सख्त ही दर्शन हो जाते हैं। इस प्रकार यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगा कि परमानन्द सागर में प्रयुक्त मुहावरों लोकोपित्यों एवं सूक्तियों से मधुर साहित्योपकरण है जिनके प्रबल प्रसारों के प्रयोग से गोपियों के समस्त उद्वेग जो की योग-साधना का रंग भी फीका पड़ गया था।

परमानन्दसागर में प्रयुक्त कतिपय प्रमुख मुहावरों के उदाहरण की निम्नोक्ति पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

(१) पाई री डार डार पात पात जुमत्त करायी ।

(२) माधी परि गई लीक सखी ।

(३) सुति री ज्योदा या डोटा की न्हातहि बनि वार लखी ।

(४) उत्त बाय चौकनों ले हौं नयन छुणा सुभान दे ।

- (५) धर धर झाली करे दोर्या धर बायी ही ।  
-----
- (६) परमानन्द लागी न दूटे लाज ईश्वर मैं पटली ।  
-----
- (७) परमानन्द प्रभु सकल दाता जाही के नाग ताही के डरे ।  
-----
- (८) परमानन्द प्यारी जितवनि रुसि स्थिई समानी ।  
-----
- (९) परमानन्द प्रभु सकल दाता जाही के नाग ताही के डरे ।  
-----
- कहनी लीय लो कहनी उलोरी कहा नयी काहू मुस मोरयी ।

परमानन्द प्रभु लोग संसन के लोक वेद तिलुका से तोह्यो ॥

- (१०) परमानन्द प्रभु नन्दन की कहियाँ निरखि सिरानी ।

## सीकी प्रिया

परमानन्द सागर में प्रयुक्त कतिपय लौकीकित्तियों का उदाहरणमुक्त स्वरूप निम्न प्रकार से द्रष्टव्य है :

- काट्यों दूध मयी जब कांजी कहा सवादहि लौह । १  
घर घर जानैद होत सवन के दिन दिन बढ़त सवायी । २  
तुम्ह ऐसी सी कहा काज है सम कीउ है तुम ठगर नहीं । ३

- |    |                |           |
|----|----------------|-----------|
| १- | परमानन्द ठाकुर | पृष्ठ १०२ |
| २- | ..             | पृष्ठ १६  |
| ३- | ..             | पृष्ठ १६६ |

परमानन्द की नीहावर घर घर बात सुटाई । १

बार बार निहार कतल पुल लियो खिरायो है । २

मानन्द मरी नन्द जू की रानी फूली का न उमाई । ३

### परमानन्द सागर की भाषा में लड़ी बोली का प्रयोग

परमानन्द सागर की भाषा में कतिपय स्थलों में लड़ी बोली का प्रयोग भी मिलता है। 'नन्द पलौत्तन' प्रयोग के सम्बन्धित कवि का निम्नोक्त सुप्रसिद्ध पद द्रष्टव्य है :

देखी रो यह कैसा बालक रानी कुमलि जाया है।  
 सुन्दर बदन कमल तल लीजन, देखत नन्द लजाया है ॥  
 पुस वल्लि कलल बबिनासी, फ्रुट नन्द घर जाया है ।  
 पोर मुहूट पीताम्बर सीई, केरि तिलक लगाया है ॥

०

०

सी पाखस फ्रुट हीय ब्रज में लुटि लुटि दधि लाया है।  
 परमानन्द कृष्ण मन पीहन बरन कमल चितलाया है। ॥ ४

-

-

-

कहाँ ते जाये हो निजराज ।

सोच कहो तूम कहाँ जाबीग कहाँ बसोगे जाय ॥

०

०

१- परमानन्द सागर पद १६६

२-        ..        पद ६

३-        ..        पद ११

४-        ..        पद ३७

परमानन्द कच्छ छस्त हमारे तुषहि विप्र सेहु साव । १

०

०

जीतयी ही जीतयी नन्द नन्दन व्योम दहामि बाजे ।  
 वरणात कुतुब देवगन गावत तितु वरणा ज्यो गाये ॥

०

०

परमानन्द प्रभु गोधन चास्त डोलत कानन भाये ॥ २

परमानन्द सागर की रत्ना के उपरोक्त उदाहरणों में है एक संख्या एक में लड़ी बोली के स्वरों का स्पष्ट रूप मिलता है। शेष पदों की रत्ना में लड़ी बोली की भल्लक व्यत्यय हो सुल-रित होती दिखायी देती है।

लड़ी बोली के कतिपय प्रसुत शब्द निम्न लिखित हैं : कोच, कियाह, बाया है, लयाया है, खिलीना, स्टेको, जेयता, टल्ल, बेस्ट, फगहो, तुम्हारे, ल्योहार, दरेर, बहुत, मोल वादि ।

परमानन्द सागर की भाषा में शब्द-निर्माण की प्रवृत्ति

भावानुसृत एवं प्रयोगानुसृत वर्णन किसी भी प्रौढ़ कवि की विद्वत्ता पर निर्भर होते हैं। इस प्रकार की रत्ना कवि की अपनी निजी बुझ-बुझ पर आधारित होती है, और वह उसकी मौलिक रचना होती है। इसमें कवि का भाषा-पांडित्य एवं उसके अनुभव का विशेष हाथ होता है। इस प्रकार कवि अपनी रत्ना की उसकी प्रवृत्ति के अनुसृत

१- परमानन्द सागर पद ८८६

२-                    पद ५१९

में नवीन शब्दों के निर्माण का कार्य करता है। कभी कभी पुराने शब्दों को भी नवीन अर्थ के रूप में भी प्रयोग करके कवि अपनी रचनात्मक कार्य का पूजन करता है। इस प्रकार का कार्य कवि की सज्ज वसिष्ठ्यता शक्ति का ही परिचायक होता है। 'परमानन्द सागर' में महाकवि की यह प्रवृत्ति प्रमुक्तः निम्नीकृत उदाहरणों की पंक्तियों में द्रष्टव्य है :

तेरे वक्ष जात ने शिव हैं तामर हाथ दितावत । १

परमानन्ददास की ठाकुर फल्यो चाखत नीरी साहं । २

जो रस रिख कीर मुनि गायी । ३

गावत शिव सारद मुनि नारद कमल कोस तेरों न चलायो । ४

प्रथम पंक्ति में वक्ष जात शब्द दो शब्दों से 'वक्ष + जात' के संयोग से बना है जिसका प्रयोग कवि ने उरीजों के लिए किया है। द्वितीय पद पंक्ति में फल्यो का प्रयोग फरूयो के भाव को लेकर किया गया है। तृतीय पद पंक्ति में 'कीर' 'वीर' 'मुनि' को पूष्प् पूष्प् शब्दों से एक नवीन शब्द कवि मुनि की संरचना है जिसका प्रयोग कवि ने जूत के अर्थ में किया है। वही प्रकार वृत्त में कप्तकोस प्रता के लिए किया है।

परमानन्द सागर में प्रमुक्त शब्दों का प्रयोग की दृष्टि से तो महत्व है ही साथ ही उन शब्दों का अर्थ-निर्माण की

१- परमानन्द सागर पद १४०

२-        ..        पद १३६

३-        ..        पद ४५३

४-        ..        पद ४५३



दृष्टि से भीकहों भी तब सेधिल्या के दर्शन नहीं होते हैं। जैसा कि उनके एक पद में संयोग की आकांक्षी गोपियों को एक 'सुकुल' शब्द के दू प्रयोग द्वारा कितनी सरस व्यंजना की है। द्रष्टव्य है-

कमल नयन बिन और नभावे कह  
निष रसना कान्ह कान्ह तट ।  
रोदन कहि नैन गेवाये बिल  
बदन ठाढ़ी जीवति वट ॥  
तुमरे पस बिन वृषा जात है  
मेरे उरज धी कँचन पट ।  
नंद गोप सुत जबहि मिलहुँ तबहि  
होहिनी सीत सकल तट ॥  
हुलैम देख कहै सबहि सुख बाते  
बिसरी मतिन भये पट ।  
परमानन्द प्रभु कबहि बिसरि गयो  
हमारौ तुम्हरो केल जमुन तट ॥ १

पद की प्रथम पंक्ति में गोपियों को अतिशय प्रेम की पीर लपकी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है। द्वितीय पंक्ति में उनकी यह प्रेममयी भावना सीमा पार करती हुई दिखायी देती है। श्रीकृष्ण के वियोग में ठीक उनके नेत्रों से भी हाथ धीना पड़ा है जहाँ उरीजों को भी श्रीकृष्ण के स्पर्श के बिना व्यर्थ ही समझती है। आगे वे कहती हैं कि हे गोप सुत जब तुम हमसे मिलोगे तभीपरे सिर की विवृतललित लटें एकल रूप में होगी। कवि के द्वारा इस प्रकार के वर्णन विशेष से शेषा प्रतीत होता है, मानो गृह, परिवार और समाज

की उपेक्षा करने वाली स्वयं विरहिणी ही ने स्वयं उनकी तटों में साकार रूप ले लिया है।

एक प्रकार निष्कर्ष स्वल्प यह कहा जा सकता है कि परमानन्द दास जो ने अपनी काव्य- रचना में केवल प्राकृत कवियों की काव्य रत्ना में शब्दों का ही अनुकरण नहीं किया बल्कि कवि ने अपनी विशिष्ट प्रतिभा से समयानुसृत यथास्थान पर नवीन - नवीन शब्दों को जन्म देकर तथा उनके संयोग से एक नवीन शब्द की कल्पना करके उनका प्रयोग किया है। नये शब्दों का निर्माण तथा पुराने शब्दों को नवीन रूप में प्रयुक्त करना कवि की सज्ज व्यंजना शक्ति का परिचय होता है। परमानन्द सागर की भाषा भी इस कथन का अन्वय नहीं है।

#### परमानन्द सागर में अनुकरणात्मक शब्दों का प्रयोग

सुरसागर के रचयिता सुर की भाषा में जिस प्रकार के अनुकरणात्मक शब्दों का बाहुल्य मिलता है उसी प्रकार 'परमानन्द सागर' में भी अनुकरणात्मक शब्दों की कोई कमी नहीं है। भाषा की दृष्टि से सुरदास जीर परमानन्ददास ही नहीं बल्कि समस्त कृष्ण भक्ति-कालीन कवियों की भाषा हिन्दी साहित्य जगत में सर्वाधिक मूल्यवान् निधि है। इन कवियों के इन अनुकरणात्मक शब्दों ने सीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण को माौरम सीलावाँ के गायन में सबीवता प्रदान कर दी है। इन्हीं शब्दों के प्रयोग से राधा कृष्ण की युगल सीला चित्र, गीप गीपियों की अनुभूति-जन्म चित्र, बालकृष्णकी झीड़ावाँ की फाँकियाँ घुन्दावन के प्राकृतिक चित्र तथा उनमें गीचरण के चित्र हमारी दृष्टि-पटल पर उपस्थित होकर साकार

रूप में स्पन्दन कर उठती है। उन्हीं शब्दों के प्रयोग से परमानन्ददास जी की भाषा में बिम्ब निर्माण का गुण भी पाया जाता है। इस प्रकार शब्द योजना के संदर्भ में इन शब्दों का महत्वपूर्ण योगदान सिद्ध होता है। पारंपारिक दर्शनशास्त्री जगद्गुरु के अनुसार इन शब्दों की सांकेतिक शब्दों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

कृष्ण भक्त कवियों की भाषा के विषय में आचार्य वाजपेयी का यह वक्तव्य भी ध्यान देने योग्य है कि “ केवल दूर ही नहीं अपितु सभी कवियों ने इन बोलते हुए शब्दों का सहारा लिया है, इनके द्वारा कवियों ने विभिन्न स्थितियों और भावनाओं के चित्र खींचे हैं। इस प्रकार के शब्द तीन श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं :

- १- कृतुति व्यंजक
- २- कार्य व्यापार और रूप व्यंजक
- ३- ध्वनि व्यंजक

परमानन्द सागर की भाषा में प्रायः उक्त तीनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग मिलता है, परन्तु कृतुति एवं ध्वनि व्यंजक कथना कृतुकरणात्मक शब्दों का प्राचुर्य रहा है। इस प्रकार के शब्दों के कतिपय प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित हैं :

(१) तूफ़ान कंकन झिंझिनी कटि रुन रुन बाजे । १

(२) पाय पैजो रुनरुन बाजत चलत डूँड गहि बाझी ॥२

१- परमानन्दसागर पृष्ठ सं० ७७

२- “ “ “ ८६

- (१) जागन तेहि धै फनक मनक ।  
 तरिका ब्रूष संग मन मोहन बालक ननक ननक ॥  
पैयां लागीं घर घर जायो झाडीं सनक तनक ।  
 परमानन्द कहत नन्दरानी बालनक तनक तनक ॥ १

(२) घर घर झाडीं करे दीयां घर जायो री । २

(३) चाहत करि देखी उलझन कितक कितक हुलसत मन ही मन ॥ ३

(४) नैननि की टकु टकु तेरी । ४

(५) अल घोष मिलि करत वेद धुनि जय जय हुंदभि बजाये ।

०

०

परमानन्द प्रभु मन मोहन की कौसल्य जानो गौद स्थाये ॥ ५

(६) मृग मद मिलक बलक छुंयरा री मृगुल हास मन मोहे । ६

(७) पिया मोहि रेखी दुलहिन भावे ।

बैसी यह काहु की दिठीनियां तनक मुनक घर जावे ॥ ७

(८) राक्षस द्वे द्वे दूध की दतियां जामग जामग होतरी । ८

(९) इस इबाले रूप पै मैं भई लौटक पीटा । ९

१- परमानन्द सागर पृष्ठ ८७

२-	..	१००
३-	..	७४५
४-	..	४२८
५-	..	३४०
६-	..	३४३
७-	..	३१२
८-	..	४६७
९-	..	३५५

(१०) जय जय श्री नरसिंह हरी ।

जय जगदीश भगत मय पीतल लै फारि प्रकट कहना करी ॥१

(११) कालिंदी तीर कलोल लोल ।

मधुर तू माधी मधुर बोल ॥ २

(१२) बादर हुरि हुरि गाऊ लागे भसी होय धौ भासी सु । ३

०

०

जिन उसी ही नाम तिहारो वंसि वंसि कहत दुरीर सु ॥

परमानन्द सागर में निहित शब्दावली

तत्सम, कर्त तत्सम, तदुभय, देशज, विदेशी वाचि

परमानन्द सागर की विशाल वाङ्मयी परिदीप्ता में प्रवेश करनेसे पूर्व हम काव्य में शब्दों के महत्त्व के विषय में संक्षिप्त विवेचन करना अपेक्षित समझते हैं। भाषा ( बोली ) कच्चा काव्यमयी भाषा कच्चा काव्यमयी रचना के अन्तर्गत शब्द भाव प्रकाशन के मूलतः माध्यम होते हैं। काव्य रचना में प्रत्येक शब्द अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। प्रत्येक शब्द अपनी विशेषता के साथ भावानुकूल अवस्था में व्यवस्थित ढंग से प्रयोग किया जाता है। शब्दों की इस व्यवस्था का वाधुनिक कविता में तो ज्ञान नहीं परन्तु पुरातन काव्य रचना के अन्तर्गत शब्द इस व्यवस्था का बड़ा महत्त्व भी है। यदि एक ही शब्द को उसके निश्चित स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर रख दें तो कविता का स्वरूप

१- परमानन्द सागर पद ३५०

२- .. पद ४००

३- .. पद २५५

ही व्यवस्थित रूप में विकृत हो जाता है। यही कारण है कि आधुनिक कविता को लोग कविता भी कहने लगे हैं।

कविता के अन्तर्गत शब्दों का ज्ञान महत्व है तो एक महाकवि की रचना भी शब्द कोण की दृष्टि से समृद्ध होना भी आवश्यक है उसकी रचना में सीमित शब्दावली उसकी सीमित ज्ञान संकुचित काव्य क्षमता का परिचायक ही समझनी पड़ेगी। इतना ही नहीं कवि जिस शब्द का प्रयोग कर रहा है उसे उस शब्द की व्युत्पत्ति उसी की तथा उसकी वास्तविक प्रकृति आदि का ज्ञान होकर भी बताना आवश्यक होता है, क्योंकि प्रतिपाद की अभिव्यक्ति में कौन शब्द किना उपयोगी है तथा प्रयोगानुसृत उसका प्रयोग कहाँ उपयुक्त होगा, इन बातों की जानकारी होना कवि के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

ऐतिहासिक दृष्टि से शब्द समूह को विद्वानों ने चार श्रेणियों में विभक्त किया है : १- तत्सम २- वृद्ध तत्सम ३- तद्भव ४- देशज । इन चारों प्रकार के शब्दों के अतिरिक्त कुछ ऐसे शब्द भी होते हैं जो विदेशिक भाषाओं के आदान प्रदान के द्वारा एक दूसरी भाषा में समावेश हो जाते हैं। इस प्रकार कवि के लिए शब्दों की एक विस्तृत शब्द राशि सुलभ हो जाती है। कवि इन विदेशीशब्दों को अपने कौशल से अपनी ही भाषा का अभिन्न अंग बना लेता है। इस प्रकार किसी भी कवि की काव्य संरचना केवल एक जगह दो प्रकार के शब्द समूहों पर ही आधारित नहीं होती, बल्कि उसमें अपने काल के तथा उसके बौद्धिक परिवेश में विद्यमान सभी भाषाओं के प्रचलित शब्द का योगदान निहित रहता है। इस प्रकार ऐसे कवि की रचना का स्वर व्यापक हो जाता है।

उसकी भाषा एक आदर्श भाषा का सम्मिश्रण बन जाती है। इस प्रकार हम सभी प्रकार के शब्दों के बारे में विहंगम दृष्टिपात करें तो हमें ज्ञात होता है कि कवि की भाषा का तत्सम रूप उसकी भाषा की गरिमापयी बनाता है। तद्भव शब्दावली उसमें सहजता का वातावरण उत्पन्न करती है। देशज शब्दावली उसकी निजता एवं स्वाभाविकता की बीर से जाती है। इसी प्रकार विदेशी भाषा के तत्कालिक प्रचलित शब्द उसकी भाषा की व्यापकता को बढ़ाने में सहायक होते हैं। परन्तु नये पुराने शब्दों का लगातार कभी-कभी प्राचीन भाषा के शब्दों का प्रयोग कवि की रुचि पर ही आधारित होता है।

प्रसिद्ध दर्शनशास्त्री बरहू ने सम्पूर्ण शब्द समूह का बाठ भागी में वर्गीकरण किया है। उसका कथन है कि प्रत्येक शब्द बाठों वर्गों में से किसी एक वर्ग के अन्तर्गत अवश्य आ जाता है, उसका वर्गीकरण निम्न प्रकार है :

प्रचलित शब्द	कोन्ट
व्यप्रचलित	रून्ट
तादात्म्यिक शब्द	मेटाफि रिक्ल
वर्तकारिक शब्द	बो रनामेन्टब
नवनिर्मित	न्यूतो कोन्ट
व्याकृजित	सेन्थेन्ट
पंक्षुजित	वानट्रैक्ट
परिवर्तित	वाल्ड्रेड

बरहू का शब्द समूह सम्बन्धी विवेचन यह है कि कवि का प्रमुख उद्देश्यवशी प्रतिपाद की प्रभावोत्पादक बनाना है। इस

कभीष्ट की पूर्ति के लिए कवि शब्दों शब्द को ग्रहण करने में पूर्णतः स्वतन्त्र है। काव्य सृजन में उन्होंने कलाधारण और अप्रचलित शब्दों के प्रयोग को अधिक महत्वपूर्ण बताया है।

### विन्यास की दृष्टि से शब्द-भेद

विन्यास की दृष्टि से काव्य में प्रयुक्त शब्द दो प्रकार के होते हैं :

१- समस्त

२- वसमस्त

समस्त शब्दों की फटावली प्रयास साध्य मानी जाती है। इस शैली में शब्दों की प्रधानता अधिक होती है। जिसके कारण भाषा के रूप में स्वाभाविकता नहीं रहने पाती। यहाँ तक कि भाषा में वास्तविकता की व्यञ्जना धूमिल पड़ जाती है। इस स्थिति में ऐसा वातावरण उपस्थित हो जाता है जिसमें कि शब्दों पर कवि का बाधित्व प्रायः नहीं रहा है और स्वयं कवि ही उनके अधीनस्थ हो गया है। सारांश यह है कि भाव माराक्रान्त हो जाते हैं।

वसमान्त शब्द के प्रयोग में भाव और भावा-  
निव्यभिक्त में एक समन्वय स्वाभाविक रूप से बना रहता है। फलस्वरूप भाषा सरल, बोधगम्य एवं भाव सौन्दर्य विधिवत् बना रहता है।

शब्द समूह के महत्त्व एवं भेदादि के संस्थापित परिचय के परचातु अब हम 'परमानन्द धागर' की तत्सम शब्दावली के



प्रयोग के विषय में लक्ष्य करेंगे ।

परमानन्द सागर में प्रस्तावना के माध्यम  
प्रवाह में कुछ मिल जाने वाली संस्कृत शब्दों का निर्वाह कराय हुआ है।  
गणिमापूर्ण बालम्बन के चित्रण तथा तदनन्त बहुल शब्दों को गीत पूर्ण  
बनाने के रूप में संस्कृत निम्न शब्दों का प्रयोग मिलता है। परमानन्द  
सागर में केवलित कविपय संस्कृत शब्द एवं संस्कृत शब्दों से प्रयुक्त उदा-  
हरण निम्न प्रकार हैं :

कान्त कमल दल नैन विहारी ।

बल विघात कै अवलोकनि हठि मनु हस्त हपारी ॥

तिन पर बनी कुटिल बलकावलि मानहु महुप हुंकारी।

बलि से रसिक रसातल रु भो चित ते टल न टारो

मदन कीटि रवि कीटि कीटि सति ते तुम ऊपर

पारो ।

परमानन्ददास की जोवनि गिरधर नंद दुतारो ॥१

मदन गोपाल देखि हो पाई ।

विभुज खिगो रघाम फनीसर सुन्दर निधि कुतिति सुखदाई ।

०

०

सौभा कहीं और ली बली परमानन्द दास सुल पाई ॥ २

उपर्युक्त दोनों पदों में संस्कृत के शब्दों का  
प्रयोग हुआ है। प्रथम पद में कुटिल, कीटि, महुप, कमल दल, रवि, रसातल,

१- परमानन्द सागर पद ४५२

२-                   ,                   पद ४४८

कलकावलि आदि संस्कृत भाषा के शब्द हैं, इसी प्रकार पद संख्या दो में दिभुज, त्रिभंगी, मनीहर, निधि आदि भी संस्कृत भाषा के शब्द हैं जिनका कि निर्वाह परमानन्ददास जी ने सही भाँति प्रयोगानुसूल ही किया है। इन शब्दों के प्रयोग की सफलता इस बात में परिलक्षित होती है कि कवि ने जहाँ भी इन शब्दों का प्रयोग किया है, वहाँ भाषा एवं प्रतिपाद्य विषय के भाव में कहीं भी क्लिष्टता नहीं बाने पायी है। क्योंकि उनकी भाषा में प्रयुक्त संस्कृत शब्द प्रचलित जनभाषा के होशब्द हैं। इस प्रकार हम यह कहते हैं कि महाकवि की भाषा में देववाणी का भी प्रयोग हुआ है।

नागर से उद्धृत प्रमुख संस्कृत शब्दावली

निम्नलिखित है :

बहु बन्धुज, स्वस्थ, अधर कृत, नराकृति,  
मुक्ता कण्ठ ( पृ० १५२-१५३ ) उत्साह, बहुभुत, चकृत, मध्य, चिन्तु,  
बल्लभ, पीताम्बर, सुगन्ध ( पृ० ८८, ८९ ) अन्तर, उत्तराग, वसिष्ठ,  
वर्षकृत, इन्द्र नीलमणि, उच्छलित, उपदेश, उत्सर्ग, उपहार, वीरुष्ट,  
कुमुदायुध, हृषित, गोरम, विभुषा पति, प्रतिबिम्ब, परिभ्रमण, महीत्सव,  
मर्तग, महाप्रलय, वेदोक्त, विरिचि, बल्लभ, ज्ञानागण, अनिच्छेक ( २८ )  
निकन्दन, प्रतापिक, कृष्ण ( पद ३७ पृ० १३ ) , पुत्र, ज्ञान, वानन्द,  
चक्र, प्रेम ( पृ० १२४ ) , वषट, मतासिद्धि, प्रतापिक, रुद्रादिक ( पृ० १६ )  
पूत ( पृष्ठ २०६ ) , विप्र ( पृ० २०८ ) परलव ( पृ० २०८ ) , ( पद ५६५ ),  
प्रकट ( पृ० २०६ पद ५६८ ) , श्राव, अनिच्छेक ( पृ० ६२ पद २७२ ) ,  
जम्बूत, पूत ( पृ० ६२ पद २७३ ) , प्रलय ।

### परमानन्द सागर में कई तत्सम शब्दों का प्रयोग

परमानन्द सागर में संस्कृतनिष्ठ शब्दों के प्रयोग के कहीं अधिक प्रयोग कई तत्सम शब्दों का मिलता है, वास्तव में इन शब्दों की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्दों के हुई है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से मुक्त मुक्त के सिद्धान्त के आधार पर इन शब्दों का अपना निजी अन्तः वास्तविक स्वरूप न रहकर इनका स्वरूप कुछ विकृत हो जाने के कारण इनका स्वरूप कई तत्सम हो रहा गया है। इस प्रकार के शब्दों का परमानन्द सागर में प्राचुर्य मिलता है। परमानन्ददास तथा अन्य सभी अन्य भाषी कवियों ने इन शब्दों का प्रयोग अन्य भाषा की ध्वनियों के अनुकूल हो किया है। परमानन्द दास जी के इन शब्दों के प्रयोग करने में कठिण स्थलों में कहीं भी संबन्ध व्यवस्था में चला जाता है। यथा - " छी " शब्द का प्रयोग परमानन्द दास में किया गया है जिसका अर्थ निम्न पंक्ति में दो अर्थ में लगाया जा सकता है जो इस प्रकार है :

वास्तव छी निगद में राखे का राग्रह में बाध । १

उक्त पंक्ति में " छी " शब्द प्रकृतभाषा के अन्तर्गत क्रिया के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। परन्तु यहाँ " छी " शब्द का अर्थ " हत्या की " से लिया गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण पंक्ति का अर्थ है " बालकों की हत्या की तथा बेटियों में अहं कर कारागार में डाल दिये । " इसी प्रकार " स्वच्छन्द " का सुख तथा गृह का अन्तर्ग्रह भी प्राक्क प्रतीत होता है।

परमानन्द दास जी ने जहाँ संस्कृत शब्दों का प्रयोग गरिमा और नाभ्योर्थ प्रदान करने में हो है तो वहाँ तत्सम शब्दों का प्रयोग उन्होंने अपने काव्य की समृद्ध बनाने की दृष्टि से तत्सम शब्दों के अतिरिक्त इनका प्रयोग किया है। परन्तु उन शब्दों के प्रयोग से उनकी रचना में कटु साध्यता अपना भाव चित्छेता आदि एक भी दोष की उभारने का कहीं भी अवसर नहीं मिल सका है, क्योंकि कविने किसी भी प्रसंग में किसी भी अप्रयुक्त शब्द का विहित मात्र भी प्रयोग नहीं किया है। यही कारण है कि कवि की समस्त रचना में फी- फी सहजानु-भूति और सरलता की दृष्टि का वातावरण सदैव होना रहता है। अब हम संक्षेप में कवि की इस प्रकार की वहाँ तत्सम शब्दावली के कतिपय प्रमुख शब्दों के उदाहरण प्रस्तुत करेंगे :

वासिष्ठ ( पृ० ६२ पद २७२ ) , वसिष्ठ  
( पृ० ६० पद २७२ ) , सहस्र , पूरक , सुम , सम , कृष्ण ( पृ० २०६ ) ,  
वमिलात ( पृष्ठ २४० पद ६८ ) , शोचन ( पृ० १६७ पद ४६२ ) ,  
स्याम ( पृष्ठ १६७ पद ४६४ ) , वातस ( पृ० २२ पद ६२ ) , वासीर-  
वाद ( पृ० १७ पद ५२ ) , वायुचन ( पृष्ठ ५ , पद १० ) , सिंगार  
( पृ० ५ पद १० ) , रक्षा , महात्म , सनेह ( पृ० १५६ पद ४७० ) ,  
मगत , वेद , शिस्तकसिपु , उत्तम , चिन्तामनि , भृति , परावादा ,  
पक्षाम , विलीति , दक्षिणा ( पृ० ६३ पद २७५ ) , प्रमात ( पृष्ठ  
६२ पद २७२ ) , उचात ( पृष्ठ ६२ पद २७२ ) , निस्नाय ( पृ० ६२ पद  
२७२ ) , पक्षारप ( पृष्ठ ६२ पद २७३ ) प्रमोन ( पृष्ठ ६० पद २७२ ) ,  
वच्छा ( पृष्ठ १०२ पद ३०६ ) , पूषन ( पृष्ठ १०३ पद ३०६ ) ।

### तद्भव शब्दों का प्रयोग

परमानन्द दास जो एवं उनके अन्य समकालीन कवियों की रचनाओं में तद्भव शब्दों के प्रयोग अन्य शब्दों की अपेक्षा अधिक रहा है, क्योंकि प्रायः इन कवियों ने अपनी रचना का माध्यम तत्कालीन व्यावहारिक भाषा की ही बनाया है और व्यावहारिक भाषा में तद्भव शब्दों का प्राचुर्य होना स्वाभाविक है। भाषा में स्वाभाविक वस्तुतियों की व्यंजना में इन शब्दों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। इसलिए परमानन्द दास ने अपनी प्रतिपाद्य विषय में वर्णन की स्वाभाविकता की मार्मिक व्यंजना के सन्दर्भ में तद्भव शब्दों का अधिकाधिक सहारा लिया है। ये तद्भव शब्द मूलतः संस्कृत भाषा के गभं से ही उत्पन्न हुए हैं। परन्तु बदलती हुई परिस्थितियाँ एवं काल विशेष के साथ ही साथ यह शब्द अपने मूल रूप से कुछ भिन्न रूप में परिवर्तित हो गये इसलिए वास्तविकता यह है कि यह शब्द मूलतः संस्कृत से उत्पन्न होने के कारण आज हिन्दी जगत में अमरतम निधि के रूप में देखे जाते हैं। परमानन्द सागर में इन शब्दों की निम्नोक्त रूप में देखा जा सकता है :

बान, लीन, मृत, रिसाया, वार ( पृ० ६०-६१ ) सुमरी ( पृ० ८६ ) , जग्य ( पृ० ८६ ) , झिंक (पृ० ८५ )  
हुग , गरब (पृ० ८४), बयार , ताती ( पृ० ८५ ) , फहीर (पृ० २३७ )  
पाइली बल ( पृ० १६ ) , कैठरी ( पृ० ७ ) , परिपुल , पुरति ( पृ० २२ ) , गालक ( पृष्ठ २२६ ) , सरबल ( पृष्ठ २१६ कद ६२६ ) , बीज ( १७६ कद ५२७ ) , समरी ( पृष्ठ १७६ ) माती ( पृष्ठ १७० कद ५०२ ),

ग्वार, घूँ, घावरि, होरिये, नाच, बसन, तिहारि, गात, विहोइ,  
बाँचना, पातो, दीठि, कवम्मा, कसाध, जनत, कसोम, कगस्त,  
कन्तगति, कन्त, उड़ींग, उनमद, कंहुस, पीस, पूत, पहीचक, पीन,  
मीतर बादि ।

### "परमानन्द सागर" में प्रयुक्त ब्रज भाषा के शब्द

कैसाकि कवि के जीवन वृत्त के सन्दर्भ में प्रकाश  
होता या हुआ है कि कवि का वयस्क कालीन अवस्था का प्रायः पूरा समय  
ब्रज क्षेत्र में ही व्यतीत हुआ था और उनका यह जीवन काल महाप्रभु तत्स-  
माचार्य जी द्वारा प्रदत्त दीक्षा से पूर्णतः प्रभावित था । महाप्रभु स्वयं  
ब्रज भाषा काव्य के मूल प्रेरक थे । अतः परमानन्द दास जी के समस्त  
काव्य जीवन का ब्रज प्रदेश को भाषा एवं उसकी सभी मान्यताओं का पि  
पर उनका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था । इसके अतिरिक्त स्वयं कवि को ब्रज  
क्षेत्र के प्रति प्रगाढ़ प्रेम भी था । यही कारण है कि कवि की समस्त  
रचना ब्रज भाषा के शब्दों से व्याप्त है । उसमें इन्हीं शब्दों द्वारा ब्रज  
भूमि के जन-जीवन का पथुरतम गायन कृष्ण और राधा तथा गौप-गौपियों  
के परिप्रिय में किया है । परमानन्दसागर के अन्तर्गत ऐसे पावनमयी शब्दों के  
कतिपय उदाहरण निम्न प्रकार हैं :

कह्यौ, ललन, महतारी, वारी, पाँती,  
मीरी, गाँव, कन्हारै, न्हवाय, हूँ है, जेथे, गारी, झुमत्त, धी,  
देसौंगी, मैया, चलावत, पहुँचो, बहोरि, सिधारन, ज्वाइँ, पिराँकी,  
ढपडौत, दोहनी, लरिका, टेस्ता, कुकुफा, बोलिगी, होलिगी, खोले,  
किलोलेगी बादि ।

### परमानन्द सागर में विदेशी शब्दों का प्रयोग

साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य पर सामाजिक क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं का परिवर्तन का प्रभाव व्यवस्थित होता है। इन परिवर्तित परिस्थितियों में भारतीय साहित्य के परिवर्तित चित्र भारतीय साहित्य में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते दिखाई पड़ते हैं, हमारे कवि तथा साहित्यकारों की रचनाओं में इसके स्पष्ट चित्र विन्मिश्र हुए हैं। अष्टशायी कवियों की रचना काल के समय देश में मुसलमानों का स्थायित्व था। अतः भारतवर्ष में फारसी राज्यभाषा के सिद्धान्त पर आलम था। दिल्ली और आगरा तो इस भाषा के प्रमुख केन्द्र थे। फलस्वरूप फारसी, उर्दू और तुर्की भाषाओं के शब्द इन साधारण की भाषा की सामान्य बोली के अन्तिम वर्ग बन चुके थे। अतः मुरदास, परमानन्द दास, नन्ददास आदि महान् कवि की रचनाएँ भी इन शब्दों के प्रयोग से अछूती न रह सकी। इस प्रकार तत्कालीन कवियों की सभी रचनाओं में इन शब्दों का हल्का प्रयोग हुआ। परमानन्द सागर में प्रयुक्त वैदेशिक शब्दावली इस प्रकार है :

खलात, बाजूस, नाव, गुहार, दनामे, गरीब निवाजे, बिरादर, जानमिलिगे, हस्तार (शुद्ध हस्तार), विदेश, बिगीये, निशात, दीवान, फीज, कल्ल-दल्ल, फारहात, बिरली, पीक, लसम, गुँसिया, सैक, कीर, जिया, ख्याल, नाहक, मख्दूल, गुरुफ, हवाल, सहनार, गनी, बख्शे सासा, लुच, जेगी, तागी, ताफता, जमासी, छरल्ल, दगा, दाग, दफ्तर, पीज, मजासी, सौर, सेहरा, सहल, सीदा, बिरलाज, मल्ल, मैदान, लाज आदि।

### परमानन्द सागर में प्रयुक्त अन्य उप-भाषाओं के शब्दों का प्रयोग

परमानन्द सागर की भाषा का स्वरूप कन्नौजी है। कन्नौजी मूलतः ब्रजभाषा की ही उस बोली मात्र है। इसलिए परमानन्द सागर की रचना में ब्रज भाषा के विकसिततम रूप का वांछित है। कन्नौजी भाषा भी इस समय तक एक स्वतन्त्र भाषा का पद प्राप्त कर चुकी थी। अतः उनकी भाषा में कन्नौजी, फैजाबी, राजस्थानी, मातवी आदि भाषाओं के शब्द भी मिलते हैं। इन सभी भाषाओं में कन्नौजी भाषा के शब्दों की वृद्धि पायी जाती है। 'सागर' में कन्नौजी भाषा के कतिपय प्रयुक्त शब्द निम्नलिखित हैं :

कीनी, लीनी, बीनी, खारी, खी, हडि ,  
किहि, चुक्कारि, बनत, उगार , अकस्त, उवर्यो , बीमा, बीसर, खाली  
गलक , टूटूहू, जानक , फीनी , दोहिलो, वरिह, विलुग, डेग , बटाऊ,  
रहसि , सरिका, लटवा, सनुपारह , सखरि , जाउव, साउव, पाउव,  
बेहो, देहो, परिहो आदि ।

### बुन्देली भाषा के शब्द

बेहै, बेहै, देहै, नसेहै, फगुवा ते गारी न  
देहै, रंगना माझ बेहै है ' आदि शब्द तथा मिश्रित पदों का प्रयोग  
मिलता है।

कतिपय प्रसंगों में फैजाबीय भी पाया जाता  
है। 'स्थान' शब्द की जगह 'स्थान' आदि ऐसे शब्द हैं जिनमें फैजाबी  
य पाया जाता है।



### भारतीय भाषा के शब्द

बाघी, बाघी, हमरी, राती, हाती,  
बिराहा, चुंदरी, बिदिया आदि ऐसे प्रमुख शब्द हैं जिनका प्रयोग परमानन्द  
दास जी ने गद्यावली में निःसंकोच रूप से किया है, परन्तु इन शब्दों के  
प्रयोग की विशेषता इस बात में है कि इन शब्दों के प्रयोग से भी उनकी  
रचना उसी अपनी सरलता, सहजता के धरे में ही निबद्ध रही है। अर्थात्  
भाव निरूपण में कहीं भी कृत्रिमता का समावेश नहीं हो सका है।

### परमानन्दसागर में देशज शब्दों का प्रयोग

‘देशज’ शब्द का निर्माण ‘देश + ज’  
दो शब्दों के मिल से हुआ है। देश शब्द का अन्विष्टार्थ देश अथवा राष्ट्र ‘ज’  
शब्द का जन्म से है। इस प्रकार ‘देशज’ का शाब्दिक अर्थ देश में ही  
जन्म लेने से है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि यह वह शब्द है जिनका  
उद्भव एवं विकास देश में ही हुआ। इनके उद्भव एवं विकास में विदेशी  
हस्तक्षेप कदापि नहीं होता है। वास्तव में ये शब्द अपनी ही भाषा के  
बोलचाल शब्द होते हैं। जिनमें कि अपनी सम्यक्ता एवं संस्कृति की वात्सा  
निवास करती है। परमानन्द सागर में देशज शब्दों की सूचन मरफार हुई है।  
कतिपय प्रमुख देशज शब्दों के उदाहरण निम्नलिखित हैं :

विहाल, वीथि, विन्दुका, छिठीना, राती,  
रतियाँ, रिना, मोढ़े, क्वात, वारीगत, सीछ, क्लार, हुलसी, कीरी,  
क्वाऊँ, डराहनी, उक्कत, सेती, बीट, बीसर, लोढ़ा लोढ़ी, क्लार,

कौंधा, गावि, हाक, गीधि, ज्वरी, कौटा, कौफ, कुम्करा,  
ठगौरी, डोटा, निहौर, पुरह, पाहनी, विक्रानी, रांगल, मलहार,  
लरिका, उबरी, छटरी, सटि, छवतवा आदि ।

परमानन्द सागर में प्रयुक्त कतिपय क्रियापदों के उदाहरण

ब्रज भाषा के क्षेत्र में वर्तमान काल की क्रिया  
प्रत्ययकारान्त ही जाती है। परमानन्द सागर में इस प्रकार की क्रियाओं  
के उदाहरण निम्नलिखित प्रकार से वर्णित हैं :

कहत, चलत, करत, मका, फिरत, पैत,  
लेत आदि । ऐसे ही क्रिया शब्द स्त्रीलिङ्ग में प्रत्ययकारान्त ही जाते  
हैं। परमानन्द सागर में इनका रूप इसप्रकार है :

बिहरति, निखरति, निहारति, छवारति,  
झुझति, पैति, लहतति, कहति आदि ।

कतिपय स्थलों पर रेकारान्त क्रियाएँ वर्तमान  
काल में इस प्रकार प्रयोग मिलती हैं :

बावे, लावे, भावे, जावे, लीवे, विलीवे  
आदि ।

वोकारान्त क्रियाओं का प्रयोग इस प्रकार  
के शब्दों द्वारा मिलता है :

वारौ, लावौ, लागी, हुनावौ, नावौ,  
मातौ आदि ।

लड़ी बीली, जय के भविष्यत् काल की  
छिया पद, कधी, बुन्देली कादि छिया पदों के उदाहरण सम्बन्धित  
भाषाओं के प्रयोगों में प्रस्तुत किये जा चुके हैं।

### परमानन्द सागर की भाषा में समास शब्द एवं सामासिक पदावली

परमानन्द सागर की भाषा में समास एवं  
सामासिक शब्दों का भरपूर प्रयोग मिलता है। कतिपय प्रमुख शब्द निम्न  
प्रकार के हैं :

#### समासिक शब्द

#### समासिक शब्द

धूरि- धूरि- बहु

पीत पट

नोत-बसन

जय व निता

मम जल

पूरन चंद

बदन-सुधा-निधि

पीताम्बर

भाग्य पुरुष

नन्द नन्दन

जलद कीट

बातक वृन्द

उदर दाम

का लिंदी तट

विश्वेश्वर

लोहा सागर

भुव मंडल

गिरधर लाल

पद्मनाभ

गोपविश

रत्न वसन

भाव-समागम

महा पतित द्विज

क्यासि क्यासि

इन्द्र धनु

### परमानन्द सागर की भाषा में शब्दों का निजी प्रयोग

परमानन्द दास जी ने अपनी भाषा की प्रसंगा-  
नुकूल बनाने के लिए शब्दों को तोड़ मोड़ कर सममाने ढंग से व्यवस्था की है।  
परमानन्द सागर में इस प्रकार के शब्द निम्न प्रकार से अभिव्यक्त हैं :

अद्भुत , बरीखी, बनियाँ, धनियाँ, दाड़ी,  
रनियाँ , धुर्य , पान्यौ , सलक ( शलाका ) , बैरी ( विलम्ब ) लिज,  
( लिजड़ी , लज्ज ( लज्जा , भंग , भदिया , ( भाद्रपद , रहसि ( हरजि,  
तनीयाँ , बराधक, छीयाँ, उज्जि ।

परमानन्द सागर में प्रयुक्त इन शब्दों की  
विशेषता इस तथ्य में है कि कवि के वर्ण्य विषय में कहीं भी यह शब्द  
भाववाचक के रूप में दृष्टिगत नहीं होते हैं।

निष्कर्षतः परमानन्द सागर की भाषा के  
कलात्मक संविधान के विषय में हम स्पष्टतः कह सकते हैं कि परमानन्द  
सागर की भाषा कलात्मक दृष्टि से पूर्णतः सक्षम एवं सशक्त भाषा है।  
उसमें प्रायः साहित्यिकता के सभी तत्वों का सुगमसुलभ उद्घाटन हुआ है।  
कवि ने राधा , श्रीकृष्ण विषयक सभी वृत्तों की अभिव्यक्ति करने में उसी  
अपनी वृत्तु ज्ञान- कोण से तत्कालीन बहुभाषीय प्रचलित शब्दों को सुन्दरतम  
ढंग से संजोया है। कवि के ये बहुभाषीय शब्द उसके प्रगाढ़ शब्द भंडार ,  
विद्वत्ता एवं विशाल ज्ञान के परिचायक हैं। कवि ने अपनी भाषा में ब्रज  
प्रदेश की सन्ध्या , संस्कृति को बड़े ही मार्मिक ढंग से मनोरम सुनारी,  
लोकोक्तियाँ एवं सूक्तियाँ द्वारा संजोया है।

संदीप में हम कह सकते हैं कि परमानन्द सागर की भाषा विशुद्ध ब्रज भाषा के विकसिततम रूप के साथ साथ पूर्णतः पाधुर्य पूर्ण, पुष्ट-प्राक्त एवं सुष्ठु एवं संस्कृतमयी है। उसमें साहित्यिकता का पूर्णरूपेण निर्वाह मिलता है, जो कि एक सफल रचनाकार की रचना के अन्तर्गत होना अपेक्षित होता है।

कवि की भावामिव्यक्ति में प्रत्येक शब्द अपना एक विशिष्ट स्थान लिए हुए दिखाई देता है। कवि की रचना का प्रत्येक शब्द अपनी सुगंध का बोधता हुआ स्वर है। उसमें कवि की वात्मा विराजमान है जो कि पाठकों को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। कवि की काव्यमयी धारा एक ऐसा प्रवाह है जिसमें कि ज्ञान, क्षुराग, शृंगार एवं भक्ति की वाग्धारारें साथ साथ प्रवाहित होती रहती हैं।

### अष्ट अध्याय

#### परमानन्द सागर में शब्द शक्तियों का लीच्छ

शब्द, शब्द शक्तियों का परिचय, भेद, महत्त्व तथा विस्तार . परमानन्द सागर में शब्द-शक्तियाँ . परमानन्द सागर में शब्द शक्तियों का स्वस्म, परमानन्द सागर में त्रिभिधा शक्ति , परमानन्द सागर में लक्षणा शक्ति, परमानन्द सागर में व्यञ्जना शक्ति , परमानन्द सागर में कटु एवं व्यङ्ग्यात्मिका शक्ति का प्रयोग, वस्तु-वैशिष्ट्यार्थी व्यञ्जना तथा लक्षणा शक्ति का समन्वित रूप

### परमानन्द रागर में शब्द-शक्तियों का सीखन

#### शब्द, शब्द शक्तियों का परिचय, भेद, महत्त्व तथा विस्तार

#### शब्द परिचय

व्यारों के संयोजन से शब्दों का सृजन होता है, व्यारों और शब्दों के उद्घोषण में बिह्व, बीठ, सातु और ऊँठ आदि व्यारों का व्यवस्थित योगदान होता है। शब्दों की इसी व्यवस्थित प्रक्रिया से वाणी (वाक्य) का निर्माण होता है। वाक्य ऐसा फल-समूह जो पूर्ण व्यारों का वाक्य है वाक्य कहलाता है। वाणी मनुष्य के समस्त क्रिया क्षमताओं का आधार मान है, भाषण क्षमता में तौवाणी का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। यहाँ तक कि वाणी के ज्ञास में मनुष्य के समस्त कार्य व्यापारों में बड़ा व्यवधान उपस्थित हो जाता है। वाणी के अतिरिक्त विचारों के आदान प्रदान के लिए मनुष्य को लेख लेखी तथा लिख आदि के माध्यमों का सहारा लेना पड़ता है। इस प्रकार वाणी के मुक्त आधार शब्द हुए। इन्हीं शब्दों की लेखलेखी द्वारा साधारण मनुष्य से लेकर लेखक व्यक्त कवि, आदि अपने भावों एवं विचारों को व्यक्त कर आते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव जीवन में इन शब्दों का अपना महत्त्व होता है। साहित्यिक विषय से लेकर ज्ञान विज्ञान तक को समस्त ज्ञान में शब्दों की अपनी विशिष्ट भूमिका होती है। शब्दों की इस महत्ता एवं विवेचन के प्रसंग में कतिपय प्रमुख वक्तव्य इस प्रकार हैं।

#### बाबू गुलाबराय जी का कथन

शब्द अपने विस्तृत व्यारों में शब्दों का ही धौतक नहीं होता, वरन् उसके अन्तर्गत वाणी का समस्त व्यापार आ जाता है।

१- फल समूहों वाक्य व्यारों समाप्तों - मङ्गुणा (नारंग मट्ट) पृ० १

२- सिद्धान्त और व्यक्त - बाबू गुलाबराय पृ० २४८

### यजुर्वेद का लेख

साक्षात् ब्रह्म का स्वस्म माना गया है वह शब्द ही है। इसी शब्द तत्त्व की प्रतिभा सर्व भेदा कह कर भी पुकारा गया है।

भेदावधि बन्ने की आकाङ्क्षा प्रगट करते हुए यजुर्वेद के अन्तर्गत स्पष्ट शब्दों में यहाँ तक कहा गया है कि 'यां भेदा देवगणाः पितरश्चोपासते । तथा मामस्य भेदयान्मे भेदाविर्न कुरुस्वाहा' ।<sup>१</sup>

साधारणतः अक्षरों का संगठित रूप जो मुख से निःसृत होता है वह शब्द है जिसे यजुर्वेद में साक्षात् ब्रह्म का स्वस्म माना गया है। परन्तु साहित्य के अन्तर्गत शब्द वही है जिसमें व्यंज्य रस की साम्यता हो अर्थात् व्यञ्जान शब्द को ही शब्द रूप दिया गया है। क्योंकि साहित्य सृजन करने के लिए सार्वक शब्दों की विशिष्ट मूर्तिका होती है। किसी भी लेखक अथवा कवि को शब्द चयन योजना जिस प्रकार होगी उसी प्रकार के साहित्य का निर्माण संभव होगा, इस प्रकार किसी भी कवि अथवा लेखक को शब्द की सर्व प्रवृत्ति का ज्ञान होना अति आवश्यक होता है। क्योंकि जब तक प्रष्टा को यह ज्ञान नहीं होगा कि किस स्थल पर किस शब्द का प्रयोग उचित अथवा अनुचित रहेगा, तब तक उसके उचित साहित्य लेखन की अपेक्षा करना मूल हो होगी। अतएव शब्द की उसके व्यंज्य प्रवृत्ति का ज्ञान करना एक महान् साहित्यकार का परम एवं प्रथम कर्तव्य है।

### शब्द शक्ति

‘शब्द’ के विषय में संक्षिप्त विवेचन के



उपरान्त हम 'शब्द-शक्ति' के विषय में भी दो शब्द कहना आवश्यक समझते हैं। 'शब्द-शक्ति' और 'शब्द-वृत्ति' एक ही बात है, क्योंकि काव्यशास्त्रियों ने जिसे 'शक्ति' शब्द की संज्ञा दी है, उसी की व्याख्याओं ने 'वृत्ति' का रूप दिया है।

### शब्द-शक्ति के भेद

साहित्य दर्पणकार ने शब्द-शक्ति को तीन प्रकार से वर्णित किया है : वभिधा, तदाणा और व्यञ्जना ।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध काव्यशास्त्रकार मित्तारी दास ने भी शब्द की वही तीन शक्तियाँ का प्रतिपादन करी हुए जहाँ अन्य काव्य निर्णय में वभिधा शक्ति को पदवाचक की संज्ञा दी है :

पदवाचक इह सा साङ्गिक व्यञ्जक तीन विधान ।

साति वाचक भेद को पहिले करौ बतान ॥ १

शब्द-शक्ति के तीन प्रमुख भेद निम्नलिखित हैं :

### १- वभिधा

उद्भट ने वामन की एक कारिका की व्याख्या करी हुए वभिधा के बारे में लिखा है :

“ शब्द के अर्थ बोध में समर्थ व्यापार की

१- साहित्यदर्पण २ । ३

२- काव्य निर्णय- मित्तारी दास

वभिधान या वभिधा कहते हैं, वभिधा के दो भेद हैं :

१- मुख्य

२- गौण

‘शब्दानामभिधानं वभिधाव्यापारी मुख्यी गुणवृत्तिश्च ।’ १

यहाँ मुख्य शब्द का वभिप्राय वाच्यार्थ ( वभिधियार्थ ) है ‘गौण’ शब्द का वाशय सव्यार्थ है है।

वभिधा शक्ति ये वाचक- वाच्यार्थ

वाचक शब्द

जिस शब्द से मुख्य अर्थ अथवा संकेतिक अर्थ का ज्ञान होता है उसे वाचक शब्द कहते हैं। अर्थात् जिस शब्द का अर्थ वभिधा शक्ति द्वारा ज्ञात होता है वह वाचक शब्द कहलाता है। यह संकेतिक शब्द भी कहलाता है।

वाच्यार्थ

वाचक शब्द का वभिधा शब्द शक्ति द्वारा ज्ञात अर्थ वाच्यार्थ कहलाता है। वाच्यार्थ से वभिप्राय किसी शब्द का निश्चय अथवा साक्षात् संकेतिक अर्थ होता है। वाच्यार्थ की साक्षात् संकेतिक अर्थ मृत्यार्थ अथवा प्रसिद्धार्थ नामों से भी पुकारते हैं।

## २- लक्षणा

इदि जप्ता प्रयोजन के कारण मुत्थार्य की वाच्यता होने पर जित शक्ति के द्वारा मुत्थार्य से सम्बन्धित कर्तव्य कर्म लक्षित होता है वह लक्षणा शब्द शक्ति कहलाती है।

**लक्षक शब्द :** लक्षणा शक्ति द्वारा लक्ष्यार्थ का परिचय कराने वाले शब्दों को लक्षक वाचा लक्षणात्मक शब्द कहते हैं।

**लक्ष्यार्थ :** लक्षणा शक्ति द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म को लक्ष्यार्थ कहते हैं।

लक्षणा शक्ति के प्रसुत दो भेद होते हैं :

१- स्वा

२- प्रयोजनवती

## स्वा लक्षणा

जब मुत्थार्य इदि की उपस्थिति में लक्ष्यार्थ का ज्ञान कराता है, वही स्वा लक्षणा होती है। स्वा लक्षणा के ऊपर मुत्तावर और लोकोक्तियोंवार भाषा प्रयोग की जाती है जैसे- नारक का बाल होना ।

## प्रयोजनवती लक्षणा

जब मुत्थार्य प्रयोजन रखते हुए लक्ष्यार्थ का

१- मुत्थार्य वाधि तद्भवतो यथा न्यो धः प्रतीक्ये ।

स्वः प्रयोजनार्थं वाह्यी लक्षणा शक्तिरपि ॥ साध्य० २।५

ज्ञान कराता है। वहाँ प्रयोजनवती लक्षणा होती है। जैसे- यमुना में मन्दिर है, 'यहाँ' 'यमुना' शब्द का वाच्यार्थ 'यमुना नदी' है, लक्ष्यार्थ यमुना का तट है। यहाँ वक्ता का प्रयोजन मन्दिर की शोभा लीन्दर्य आदि है। प्रयोजनवती लक्षणा के अन्य भी भेदोपभेद हैं।

### ३- व्यञ्जना शक्ति

व्यभिधा और लक्षणा दोनों शब्द शक्तियों के अर्थ प्रस्तुति के पश्चात् जब शब्द का दूसरे अर्थ की व्यञ्जना बोध हो उसे व्यञ्जना शब्द शक्ति कहते हैं।

#### (अ) वाचक शब्द

जो शब्द व्यञ्जना शक्ति द्वारा व्यङ्ग्यार्थ की व्यभिच्यक्षित करता है, उसे वाचक शब्द कहते हैं।

#### (ब) व्यङ्ग्यार्थ

व्यञ्जना शक्ति द्वारा व्यभिच्यक्षित अर्थ की व्यङ्ग्यार्थ कहते हैं। इसे प्रतीयमानार्थ ध्वन्यर्थ भी कहते हैं। इसके दो प्रमुख भेद हैं :

१- शाब्दी

२- वाची ।

इन दोनों के भी भेदोपभेद हैं।

शब्द के मुख्य अर्थ का सार्वत्रिक अर्थ की परिचायक शक्ति व्यभिधा शक्ति के नाम से जानी जाती है तथा जो शब्द

इसके मुख्य अर्थ का पीतक होता है, उसे 'वाचक' कहते हैं। इस तथ्य को हम इस वाक्य से स्पष्ट कर सकते हैं : 'रास्ते में 'गधा' बोल रहा है' इस कथन में 'गधा' का साक्षात् सांकेतिक अर्थ यह है जिसका कि 'वाचक' शब्द 'गधा' है। यदि इसी शब्द का प्रयोग हम इस प्रकार करें कि वह लड़का तो बिल्कुल गधा है तो इस वाक्य में 'गधा' शब्द वाचक नहीं माना जाएगा और न उसका वह साक्षात् सांकेतिक लोकप्रचिद अर्थ ही माना जाएगा। इस वाक्य में 'गधा' शब्द का अर्थ अधिक 'मूर्ख' के रूप में माना जाएगा। इस वाक्य में 'गधा' का अर्थ बसा-चात् (वपरीका) सांकेतिक है। इसके साथ ही 'गधा' शब्द के वास्तविक अर्थ में भी परिवर्तन ही जाता है। अतः यहाँ इस वाक्य में लक्षणा शक्ति का अस्तित्व स्थापित ही जाता है और उस वाक्य के 'वाचक' शब्द के स्थान पर 'लक्षक' शब्द का प्रयोग किया जाएगा। साथ ही जिस शब्द के द्वारा लक्ष्यार्थ का ज्ञान होगा उसे लक्षणा कहा जाएगा।

उपर्युक्त वाक्य में पीढ़ा का परिवर्तन कर दें और उसे इस प्रकार करें कि तुम्हारे घर वाले तो गधे हैं और सदा गधे ही रहेंगे। तो इसका अभिप्राय यह होना कि कालान्तर में घर का पक्ष हीनत्व है। क्योंकि उस घर में सभी लोग मूर्ख हैं। इस प्रकार 'गधे' शब्द का यहाँ विशेष अर्थ प्रकट कर दि है, इसी विशेषार्थी वाक्य में व्यंजना शक्ति मानी जाएगी।

भारतीय काव्य शास्त्रियों ने इन तीनों शब्द शक्तियों - वेष्टा, कारण, कार्य देश, काल आदि के आधार पर

१- मुख्यार्थवाधे तथ्योऽपि रुदितोऽपि प्रयोजनात् ।

अन्यो वर्गो लक्ष्यैकत्वा लक्षणाशेषिता क्रिया ॥

- काव्य प्रकाश २१६

हम अभी निर्दिष्ट विषय में हन्ही तीनों शक्तियों के प्रयोग, प्रभाव, विस्तार आदि के विषय में विवेचन करेंगे ।

### परमानन्द सागर में शब्द शक्तियाँ

परमानन्ददास जो के काव्य में हमें तीनों ही शब्द शक्तियाँ ( अभिधा , सदाणा, व्यञ्जना ) का प्रयोग मिलता है। परन्तु इन शब्द शक्तियों के प्रयोग की विशेषता इस बात में देखने की मिलती है कि कवि कहीं भी इनके प्रयोग में चेष्टा रत दिखाई नहीं देता है। यही कारण है कि इन शब्द शक्तियों के प्रयोग में हमें कवि की रचना में सर्वत्र ही सरसता, सहजता, एवं स्वाभाविकता के दर्शन होते हैं। कवि की रचना में कहीं कहीं तो ये तीनों शब्द शक्तियाँ कवि की भावाभिप्रेयक्ति के साथ साथ एक एक होकर नैसर्गिक विधारा के रूप में प्रकट होती हैं। परिणामस्वरूप परमानन्दसागर में शब्द शक्तियों का प्रयोग जम्तकाखादी कवियों की जम्तकृत होती है नितान्त प्रयत्न ही दिखाई देता है। कवि की रचना समकालीन कवियों की रचना होती की तुलना में शब्द शक्तियों के प्रयोग की दृष्टि से बागे नहीं जा सकी है तो बहुत मोठे मो नहीं रह गयी है।

जहाँ तक अभिधा, सदाणा और व्यञ्जना तीनों शक्तियों के प्रयोग के क्षेत्र का विषय है, परमानन्द सागर में अभिधा और सदाणा का जितना वर्णन हुआ है, उतना व्यञ्जना का नहीं, व्यञ्जना शक्ति का प्रयोग केवल कुछ ही कटु भावों के चित्रण में हुआ है जहाँ कि

गौपियों ने यलोदा से जमीमनोन्मादों की कृष्ण के प्रति प्रकट किया है। परमानन्द सागर में अभिधा वीर लक्षणा शक्तियों के प्रयोग चित्रों का आश्रय होने से पदे पदे हमें उस सहजानुभूति के माधुर्य युक्त चित्र मिलते हैं जिनके पाठक पत्र मुग्ध हो जाते हैं। इस प्रकार के चित्र अधिकतर माता की अभिलाषा , अभिसार, गौधी प्रेम, पछिमा, शृंगार के पद, बास लीला , मुस्ली के पद , उरहाने के पद , रास के समय के पद आदि प्रसंगों में मिलते हैं। अर्चना शक्ति के उदाहरण चित्र हमें ' गौपियों के विरक्त के पद , ' अभिसार , ' उरहाने के पदों ' में देखने को मिलते हैं।

#### परमानन्द सागर में शब्द शक्तियों का स्वरूप

प्रस्तुत प्रकरण में हम क्रमशः इन शक्तियों के प्रयोग, सौन्दर्य का विवेचन करेंगे। इस क्रम में हम सर्वप्रथम परमानन्द सागर में निहित अभिधा शक्ति का विवेचन करेंगे।

#### परमानन्द सागर में अभिधा शक्ति

परमानन्द सागर में अभिधा शक्ति का प्रयोग अधिकतर अनुभूत्यात्मक वीर वर्णनात्मक प्रसंगों में ही किया गया है। कति-पृष्ठात्मक प्रकरणों में अभिधाजन्य वाचक, अर्थ की प्रधानता तो स्वाभाविक रूप से मिलती ही है, इसके साथ ही साथ सभाव- प्रसंगों में भी वाच्यार्थ की भाषा का पूर्ण रूपण निर्वाह हुआ है। जहाँ तक प्रतिपाद्य के व्याख्यात्मक प्रकरणों का प्रश्न है उनमें भी अभिधा शक्ति की प्रधानता मिलती है। नाम्नीय विवेक तथा सार- निरूपण में भी अभिधा शक्ति का ही विशेष

प्राधान्य रहा है। इस अभिधा शक्ति के प्रयोग में कवि दृष्टि प्रदर्शनकारी न होकर स्रष्टावृत्ति के चित्रण की ओर स्वाभाविक रूप से बनी रहती है। इसी तथ्य - निरूपण का विकास पूर्णतः परमानन्द सागर में सहज हो मिल जाता है। परमानन्द सागर का कवि फुलतः भवत है, अतः भक्ति भावना से प्रेरित होकर सहज चित्र हो 'सागर' में चित्रित हुए हैं। उनमें विषय-वैविध्य की इतना ध्यान नहीं मिला है। और न ही एक भवत कवि के इसकी विशेष अपेक्षा ही की जाती है। 'सागर' के रत्नाकार का ध्यान तो वही छष्ट देव 'श्रीकृष्ण' और देवी 'राधा' आदि के लीला गायन द्वारा अपनी भक्ति की पिपासा कोलान्त करना था। अतएव कवि की काव्य-दृष्टि श्रीकृष्ण के वात्सल्य वर्णन, लीला, वियोग, रूग्णार आदि वर्णनात्मक और भावपूर्ण प्रकरणों में अभिधा शक्ति की ओर हो केन्द्रित रही है। इन प्रयोगों में कवि ने बड़ी कुठरी एवं पार्थिव व्यंजना बड़े ही सुन्दर शब्दों में की है। पार्थिव स्थलों में प्रयुक्त शब्दों की अभिधा शक्ति द्वारा कवि की उन्नतता तो इतनी आकर्षक है कि वे पाठकों के हृदय को छू लेती हैं। परन्तु वर्णनात्मक वर्णनों में कतिपय स्थलों पर अभिधा का रूप नोच भी ही गया है।

परमानन्द सागर से उद्धृत अभिधा शक्ति के कतिपय उदाहरण निम्नलिखित हैं :

अभिधा शक्ति का अनुभूत्यात्मक उदाहरण-

ब्रज में हीत हुलाहत भारी ।

आनन्द केवल ग्वाल सब नाचत पैत परस्पर तारी ।



नन्दराय के भवन में वासत वानन्वित ब्रज नारी ।

पुनः जन्म सुनि हरस भयो है परमानन्द बलिहारी ॥ १

उक्त पद में वभिधा शक्ति का अनुभूत्यात्मक प्रयोग स्पष्ट रूप से दिखायी दे रहा है। पद की प्रथम, द्वितीय पंक्ति में 'ब्रज' शब्द है तथा 'ग्यात' वाचक शब्द अधिकृत कथ्य कैपरिभाष्य है। इसी प्रकार तृतीय पंक्ति में 'ब्रज नारी' वाचक शब्द में अधिकृत कथ्य की शक्ति का भाव निहित हो रहा है। 'ग्यात वात' तथा 'ब्रज' नारियों तथा समस्त 'ब्रज' में वानन्द की अनुभूति होने के कारण पद के शब्दों में अनुभूत्यात्मक वभिधा शक्ति के भाव प्रदर्शन की पूर्ण क्षमता द्रष्टव्य है।

पद में पुनः-जन्म के अवसर पर कवि ने ब्रज में नृत्य एवं गायन के उत्पन्न प्रकृत्यता के वातावरण का वर्णन किया है, कतः पद के शब्दों में वर्णनात्मक वभिधा शक्ति का भाव प्रस्तुत करने की भी पूर्ण क्षमता दिखाई देती है।

वभिधा शक्ति के अन्तर्गत वर्णनात्मक सौन्दर्य का उदाहरण-

रथिक शिरोमनि नैदनदन ।

रसमय रूप कृप विराधि गोप कपू उरु सोतल नैदन ।

नैननि में रह जितवनि में रह वातनि में रह टात म्पु न पम्पु ।

०

०

त्याम धाम हर रथिक उपासित प्रेम प्रसाह सु परमानन्द पत ॥ २

१- परमानन्द सागर पद ६

२- " पद १४३

सब भाँति हबोली कान्ह को ।

नन्द नन्दन वाचन हबोली मुल हवि पीरी धुपात को ।

सत्क हबोली सितक हबोली पाग हबोली सुवान को ।

०

०

परमानन्द प्रभु नेन हबोली सुख हबोली सुमान को ॥

### परमानन्द सागर में लक्षणा शक्ति

परमानन्द सागर में लक्षणा शक्ति का प्रयोग मुहावरे और लोकोक्तियों के माध्यम से हुआ है। साधारणतया लक्षणा शक्ति का विकास एवं प्रयोग इन्हीं मुहावरे, लोकोक्तियों, सूक्तियों आदि के अन्तर्गत में देखी जा सकती है। लक्षणा शक्ति के प्रयोग से रचना के अर्थ में नूतन, वैदग्ध्य, विचित्रता का समावेश हो जाता है तथा इसी के द्वारा कवि अमूर्त का मूर्त विधान प्रस्तुत करने में समर्थ होता है। फलस्वरूप अभिव्यञ्जना का औन्दर्य निरर उठता है। कबीरों के विेषण विपर्यय के प्रयोग तथा भाषा के मानकीकरण में कवि लक्षणा शक्ति का प्रयोग करता है। स्वयं लक्षणा द्वारा उसके अर्थ को अभिव्यक्त होती है।

परमानन्द सागर के अन्तर्गत वर्णनात्मक चित्रों के प्रस्तुतीकरण में जितना आधुनिक अभिधा शक्ति का है, उतना लक्षणा शक्ति के चित्रों का नहीं है। परमानन्द दास ही नहीं अपितु समस्त ब्रह्म-साधो कवि अपने प्रतिपाद की सफ़लता और स्निग्धता पूर्ण चित्रण में अभिधा शक्ति के धरे में ही अधिकाधिक रूप से बंधे रहे हैं। उनमें अभिधा शक्ति के प्रयोगों की अपेक्षा लक्षणा शक्ति के प्रयोगों का उतना प्राचुर्य

नहीं है। परमानन्द सागर में भावों के मानकीकरण और विशेषण विपर्यय के प्रयोगों की न्यूनता के कारण लक्षणा के शक्ति के प्रयोगात्मक चित्र भी कम हैं। परमानन्द सागर में जहाँ साक्षात्कार प्रयोगों के व्यक्तकार का प्रत्यक्ष है, वह हमें न सुहावरी के रूप में हो अधिक मिलता है। यद्यपि लक्षणा शक्ति के मुख्य चित्र परमानन्दसागर में कम है, परन्तु पूर्णतः क्भाव नहीं है। कवि ने जो प्रस्तुत भाषा के माध्यम में जहाँ भी लक्षणा शक्ति का प्रयोग किया है, वह साहित्यिक दृष्टि के पूर्णतः कृष्ट है, एवं चिन्तकता के गुण से सुभक्त है। कवि की इस प्रकार की रचना पाठकों तथा श्रोताओं की एक विशिष्ट प्रकार की स्तानुभूति तक पहुँचा देती है। परमानन्द सागर में प्रतीकात्मक वर्णन कला भी कवि का उद्देश्य नहीं था। परन्तु विभिन्न शब्दों, क्रियापदों, विशेषण और विशेष्य आदि के प्रतीकात्मक प्रयोगों द्वारा सज्जित और गति पूर्ण चित्र प्रस्तुत करने में 'सागर' का कवि पूर्णतः सक्षम दिखाई देता है। परमानन्द सागर में क्रिया पदों विशेषण तथा विशेष्य आदि शब्दों के लक्षणात्मक चित्र तिष्ठतिस्ति हैं :

कपल नयन बिन और न भावै वह निच खना कान्ह कान्ह रट।  
 रोदन करि नैन गवाये बिलस बदन ठाढ़े जीवति घट ।  
 तुमरे पास बिन वृथा जात है मेरे उरब धरे कैन घट ।

नंद गोप सुत जाहिमितहुने सबहि हौंहिमी सीस सकल लट ॥  
 दुर्लभ देह काढ़े सबहि पुन बातें बिसरी मलिन मये पट ।  
 परमानन्द प्रभु जबहि बिसरि गयो हमरी तुम्हरी लेल जसुन वटनि ।

उपर्युक्त पद की तृतीय पंक्ति में 'उरब धरे

कंचन घट ' का लक्ष्यार्थ उरीनों के उन्नतकसावपूर्ण एवं सुन्दरता को जोर है। परन्तु केवल ' कंचन घट ' शब्दों का शाब्दिक अर्थ स्वर्णित घड़ा से है, परन्तु क्षुब्ध पंक्ति में प्रयुक्त ' सोस ससुत लट ' शब्द योजना विरहिणी गौफिका की व्यञ्जनात्मक कलक तथा तृतीय पंक्ति में ही प्रयुक्त ' उरज धरे ' शब्द गौफिका से सम्बन्ध स्थापितकर देते हैं। इस प्रकार ' कंचन घट ' शब्दों में लक्षणा शब्द शक्ति का सफल प्रयोग मिलता है।

देखी नाईं भोजन इस भरे दीऊ ।

नंद नंदन वृषभान नंदिनी हीह परे है जोऊ ॥

सुरंग चुनरी त्यागजु की भोजन है इस भारी ।

गिरधर पाग उपरना भीज्यो या हवि ऊपर बारी ।

बात ही बात डीह भयो भारी ललितदिक् समुत्तारी ।

दीऊ मिलि भगल मानत नाहीं सही सब झूठ बचारी ॥

तब मोहन हारे गिर नास हंसो सकल ब्रज नारी ।

परमानन्द प्रभु यह विधि क्रीदत या सुख की बलिहारी ॥११

प्रस्तुत पद में पूर्ववत् पद की वीर कवि का लक्ष्यां ' इस भरे ' शब्दों से राधा के दोनों उरीनों की व्यञ्जना करता है। ' इस भरे ' शब्दों का शाब्दिक अर्थ इस युक्त फलों से है, परन्तु यहाँ पद की तृतीय पंक्ति में उद्घोषित नंदनंदन वृषभान नंदिनी शब्दों की व्यञ्जना ' इस भरे दीऊ ' शब्दों का रहस्योद्घाटन कर देते हैं, इस प्रकार ' इस भरे दीऊ ' शब्दों में लक्षणा शक्ति का पूर्ण भाव परिलक्षित

होता है। इस की छावनी पंक्ति में 'हैंसी उल्लस प्रस नारी' शब्दों से पद में चित्रोपमता का सुन्दर समावेश पाया जाता है।

तत्प्राणा शक्ति के सुहावरेदार शब्द-योजना के रूप में अन्य उदाहरण

अनत जाप चीगुनी ले हों नैन सुसा हुकान दे । १

'परमानन्द स्वामी' मन मोहन कटके नैन की कौर ॥२

चितवनि तहाँ जहाँ नन्दनन्दन सब से लियो मन काही । ३

परमानन्द प्रभु या जाहे को देस निकासो दिलाऊ ॥४

परमानन्द प्रभु या जाहे को कीजिए मुँह कारी ॥ ५

पद- पंक्ति सं० चार में कवि के द्वारा 'जाहे को देस निकासो दिलाऊ' तथा 'जाहे को कीजिए मुँह कारी' में मानवीकरण कर्तकार के परिप्रेक्ष्य में शक्ति तत्त्वार्थ के विधान का विकास मिलता है जो कि वास्तविक जगत् में सम्भव है। कतः निर्विष्ट रचना पंक्तियों में तत्प्राणा शक्ति का समुचित संविधान हो सका है।

विशेषण और क्रिया-पदों में निहित तत्प्राणा-शक्ति के भाव सौन्दर्य का चित्रण अन्य उदाहरणों से द्रष्टव्य है :

चार कपोलन की फलक ।

हरि को मुल रूपल भँस लागति नहीं फलक ॥

१- परमानन्द सागर पद ६६

२-                   ..                   १६७

३-                   ..                   ३६६

४-                   ..                   ३२७

५-                   ..                   ३२८

कुमकुम की तिलक बन्नी कूटिल निविह कलक ।  
 मोर कुट्ट बन्धिका सीस पे मासिज की डलक ॥  
 त्याम सुन्दर देखन की वावत पिय की ललक ॥  
 परमानन्द स्वामी गोपाल नैन के ललक ॥ ९

प्रस्तुत पद- रत्ना में सागति नहीं फलक कूटिल  
 निविह वादि विशेषण और छिया पदों में लक्ष्यार्थ सौन्दर्य ऐसा फनी-  
 मुग्धकारी चित्र प्रस्तुत करता है जो कि व्यक्त के विकेन्द्रित अवधान को  
 सहज ही अपनी ओर केन्द्रित कर लेता है। इस प्रकार की शब्द- रत्ना संपूर्ण  
 पद में लक्षणा शक्ति का ही परिपोषक है ही साथ ही सफ़्त पद में  
 जायोपान्त कीतुल्य व्यंजना में भी पूर्णतः उत्तम है।

परमानन्द सागर में व्यंजना-शक्ति

काव्यात्मक- काया के अन्तर्गत व्यंजना शक्ति  
 का विकास पद्य अभिव्यंजनाओं के प्रयोग में किया जाता है। रास एवं पद्मसुर्य-  
 गुरा प्रधान व्यंजना शक्ति का प्रयोग विशिष्ट प्रसंगों में देखी की मिलता  
 है। जहाँ रागात्मक वृत्तियों का चित्रण हुआ है। कवि दृष्टि रास, पद्म  
 तथा कटु स्थलों की ओर गयी है। प्रतिपाद के विदग्ध स्थलों में बाल लीला,  
 मास लीला, राधा कृष्ण के अनुरागात्मक प्रकरण 'उराने के पद'  
 वादि ऐसे प्रसंग हैं जिनमें व्यंजना के मर्मस्पर्शी चित्र मिलते हैं। कवि की व्यंजना  
 के ये चित्र कवि की 'सूर' के बराबर लफ़र खा कर देते हैं। मास लीला  
 तथा उराने के पदों में व्यंजना शक्ति के उदाहरण चित्र द्रष्टव्य हैं :

१- परमानन्द सागर पद ५३६

कलौदा वरजत काहे न माह ।

भाज कौरि दहो सब लायी बातें कहीं न जाह ।।

हाँ जो गहँ ही तरिह जाएँ जेहि जगिनि मैं जाह ।

दूध दहो को कीच मची है दूर ते देखी कन्हाह ।।

तब अपने कर ही कहि के ही तुमही मैं ते जाह ।

परमानन्द भाग्य गोपी की प्रगट प्रेम निधि पाह ।। १

प्रस्तुत पद है की द्वितीय वीर चतुर्थ पंक्ति में विशेष अर्थ की व्यंजना हुई है, 'बातें कहीं न जाह' तथा 'दूध दहो को कीच मची है' शब्द योजनावी द्वारा गोपिकाओं ने भाव-गाम्भीर्य तथा विशिष्टता का साक्षात् परिचय कलौदा को कराया है, परन्तु गोपियों के यह वचन कृष्ण के प्रति प्रेमासक्ति के वातावरण में ही सुनरित हुए हैं।

उरणने के फाँँ से उड़्युत निम्नलिखित पद में मधुर भाव की ध्वनि का सुम्फन एक गोपी के स्वर में :

तेरे ही लाल भरी माख लायी ।

भरी दुफरी सब झूँ पर दँदोरि जब ही उठि जायी ।

०

०

परमानन्द रानो तुम बरजी फूत कौली ते ही जायी । २

विरह के कौकी प्रसंग ऐसे हैं जिनमें परमानन्द दास जी की व्यंजना शक्ति का स्वर ध्वनित हुआ है। उसी प्रकार कृष्ण

मधुरा गमन , गोपिन के विरह के प्रसंग में भी कवि ने व्यंजना के सहारे जीके भाव भीने तथा आकर्षक चित्र संजोये हैं। यथा-

ब्रज की बीरे रीत भई ।

प्रातः समय जब नाहिन सुनियत, घर घर चलत रहै ॥

ससि को फिर तरनि सम लागत, जागत निसा गहै ।

उद्भट भूम मकर केतल की वाग्या हीत नहै ।

वृन्दावन की भूमि भाँस्ती, ग्वालिनह हाँडि दहै ।

परमानन्द स्वामी के बिहारे, विधि कहूँ और ठहै ॥ १

कवि ने सम्पूर्ण ब्रज-जीवन का चित्र प्रीकृष्ण की अनुपस्थितिजन्य परिस्थितियों में इस प्रकार चित्रित किया है, मानों स्वयं कवि ने वह अनुपस्थितिमय व्यंगित ब्रज जीवन का चित्र अपनी आँखों से देखा हो । कवि के वर्णन में व्यंजना की शक्ति हमें पद की द्वितीय पंक्ति के शब्दों में तब देखने की मिलती है जबकि घर घर में अब रहने की ध्वनि सुनाई नहीं देती । उसके विपरीत अब नीख और निराश्रयमय वातावरण में निस्तब्धता की ध्वनि अन्तर्निहित है। पद की तृतीय पंक्ति में गोपियों की विरह व्यंजना की उत्कृष्टतम स्थिति का चित्र सामने आ जाता है। रात्रि की विरह वेदना गोपियों के निशा-शयन पर भी अपना आधिपत्य स्थापित करने में सफल हो जाती है। चन्द्रकिरणों से विरह वेदना को उज्ज्वल कर देती है। कवि ने चतुर्थ पंक्ति में अपनी व्यंजना की मूलतः ठीक से संजोया है। गोपियों का म-वासना से ग्रस्त तो कृष्ण की उपस्थिति में भी रहती थी । परन्तु उस समय वह वासनारं वानन्द की श्रोत थी और अब कामरूपी नृपति की लाजावों का रूप ही परिचित



ही गया है। कवि के इस प्रकार के कथन में विरहजन्य विषमताओं के संकेतों का चित्रण हुआ है।

कृष्ण की अनुपस्थिति में गोपियों के शैथिल्य-  
मय जीवन की एक अन्य भाँकी व्यंजना शक्ति के सन्दर्भ में इस प्रकार है :

व्याकुल बार न बाँधत छूटे ।

जब ते हरि मधुरी सिधारे उर के हार एत सब टूटे ॥

सदा कनकनो विलस वदन अति यहि दंग रहति स्तिनोना

छूटे ।

विरह विहाल सकल गोपी जन उभरत मनहुँ बटकूटन छूटे ॥

जल प्रवाह लीचन ते बाढ़े वचन सोह कन्यन्तर छूटे ।

परमानन्द कहीं हुत कासों जैसे चित्र तिसी मति टूटे ॥१

उक्त पद रचना में कृष्ण वियोग से व्यक्ति  
विरहिणी गोपियों के केशों और आभूषणों की अस्तव्यस्तता विच्छिन्नियों  
को वेदनामयी दशा को कहणावस्था की मनःस्थिति तक पहुँचा देती है।  
कवि के इस प्रकार की व्यंजना विशेष के चित्रों की परमानन्द सागर में  
कमो नहीं है। कवि व्यंजना शक्ति के प्रयोगों में पूर्णतः उत्तम है।

परमानन्द सागर में कुछ सर्व व्यंग्यात्मिका शक्ति का प्रयोग

परमानन्द सागर में व्यंग्यात्मिका शक्ति के  
उदाहरण चित्र हमें गोप गोपियों के कपीकथन , गोपिकाओं के यशोदा  
से कथन और स्वामिनो जी की उत्कृष्टता आदि के कथनों में दृष्टिगत

होते हैं। कवि ने इस प्रकार के चित्रों में कटूवित्तियों का भी समावेश मिलता है। 'परमानन्द रागर' के कतिपय प्रमुख व्यंग्यात्मिका और कटूवित्तियों के सम्बन्धित उदाहरण इस प्रकार हैं :

मनावत हार परी भरी पालें  
तु बट ते पट होति नहि राधे उन मोहि लैन पठाई ।  
राजकुमारी होय सी जाने के गुरु सीत विलाई ॥  
नंद नंदन की छाँड़ि महासम अपनी रार बढाई ॥  
ठोड़ी हाथ के चली दुलिका, तिखी मोहि चढ़ाई ।  
परमानन्द प्रभु कहंगो दुलैया तो बाग की जाई ॥१॥

प्रस्तुत पद की द्वितीय पंक्ति कीछ अक्षर योजना 'तु बट ते पट होति नहि राधे उन मोहि लैन पठाई' में व्यंग्यात्मिका शक्ति का प्रयोग हुआ है तथा तृतीय पंक्ति में 'राजकुमारी होय सी जाने' शब्द रचना कटूवित्तियों को गौतन करती है। पंक्तियों का व्यंग्यार्थ स्पष्ट है। राधा से दूती राधा को कृष्ण से मिलने के लिये निवेदन कर रही है। पंचम पंक्ति में राधा के जानाकानो कहे पर दूती राधा से व्यंग्य स्वरूप कटू व्यंजना में अपने भावोद्घातन करती है :

सफ़ी कहि गर नैक लड़ी रहि बापुन बेठि रखी रो ।  
० ०  
जोवन माती फिरत ग्यालिनी हैं भरे लाल ठगियौ रो ॥२॥  
तुम बटपटे मनोहर नागर हम अछोर पति मोरी ।  
० ०  
परमानन्द प्रभु प्रेम जानि के तमकि कँवुकी लौली ॥ ३ ॥

- 
- १- परमानन्द दास पद ४०२  
२-        "        पद ४०३  
३-        "        पद ३५९

उक्त पंक्तियों की प्रकृत भाव- भूमि में व्यंग्या-  
त्मिका शक्ति के मोहारी एवं आकर्षक प्रयोग की व्यंजना हुई है।

वस्तुवैशिष्ट्यायों व्यंजना तथा लक्षणा शक्ति का समन्वित रूप

मैं अपनी मन हरि लीं जोर्यो ।

हरि लीं जोरि सब न लीं तोर्यो ॥

०                      ०

परमानन्द सब लोग हसन है लोक वेद तिनका लीं तोर्यो।१

पद की उपर्युक्त दोनों पंक्तियों में नायिका  
अपनी प्रणयभावना को किस प्रकार विरोधाभास के रूप में सपहन-मपहन  
के वाक् वृत्त में चपलतापूर्वक अपनी सखी से कह रही है। जैतिम पंक्ति में  
लोकोक्ति के सुन्दर समावेश होने के कारण लक्षणा शक्ति का भी सफल  
प्रयोग हुआ है। एक भक्त कवि के वर्णन में इसप्रकार की लक्षित साहित्यिकता  
अवश्य ही प्रशंसनीय है।

माखनलीला जलंग से व्यंग्यात्मिका शक्ति का  
एक आकर्षक चित्र इस प्रकार है :

गवासिनि तोपे ऐसी क्यों कहि जायी ।

मेरे घर घर जाव स्यामधन ताही ते दीस लगायी ॥

घर की माखन धूध न भावे तेरी दह्यो क्यों लायी ॥

बारि डारि कोटि तीसी तिरिया की निनि मेरी

लात सिजायी ॥

कटुक वक्त्र सुनि ग्वातिनि डौली हरि सौ शेष बढायी ।  
परमानन्द प्रभु बतारु अटकी घर की काज बिसरायी ॥१॥

पद में बाणीपान्त व्यंग्य एवं कटुता का  
वातावरण बना रहता है। परन्तु इस प्रकार की बातों के मूल में कुराग  
मयी भावना अपरोक्ष रूप से अन्तर्निहित है :

गोपाल तेरी मुखी हौ मारी । २

तुम पै कौन दुहावे गया ॥ ३

जिय की न जानत हौ पिय लफनो गरज के हौ गालक ।  
मुहु मुसकाय ललचाय जाय दिग हरत परायी मन नाहक ॥  
कपटो कुटिल नेह नहीं जानत हल सौ फिरत घर घर के रह  
साहक ।

ये दर्द निर्दोष त्याग मन सुन्दर परमानन्द उर साहक ॥ ४

गिरिधर सब हौ लम की बाकी ॥ ५

उपर्युक्त सभी व्यंग्यात्मक चित्रों में प्रेमासक्ति  
की वृत्ति मृदुलता एवं कम्पनीयता की भाव भूमि में कवि के कथानक में कितनी  
सौन्दर्य एवं गाम्भीर्य के दर्शन होते हैं। गोपियों के इन मृदु व्यंग्यात्मक

१- परमानन्दसागर पद १४६

२-        ..               ३५२

३-        ..               ७०२

४-        ..               ६५८

५-        ..               ६५६

मृदुल एवं मार्मिक उक्तिगणों में वाणी के विन्यास में कवि ने अपना हृदय निकाल कर रख दिया है। कवि की इस प्रकार की रचना में एक विशिष्ट बात यह देखने की मिलती है। गोपिकारं कृष्ण के कटु एवं व्यंग्यात्मक ढंग से सब कुछ कह लेती हैं, परन्तु इसके साथ वह अपने बाराध्य से परे भी रहना नहीं चाहती हैं। दूसरी बात यह है कि इस प्रकार की रचना कहीं भी विशिष्टता नहीं आने पायी है।

परमानन्द सागर में ध्वनि ( व्यंग्यार्थ )

सम्बन्धी कतिपय प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित हैं : परमानन्द सागर के अन्तर्गत अभिधामूला ध्वनि के उदाहरण के रूप में इस ध्वनियों और कर्त्तकार ध्वनियों के जोड़ों पर ध्यान है। इस और कर्त्तकारों के प्रकरण में उनका विवेचन किया जा चुका है। परन्तु फिर भी इस और कर्त्तकारों से सम्बन्धित कतिपय प्रमुख ध्वनियों के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं। इस ध्वनि और कर्त्तकार ध्वनियों के उदाहरणों के अतिरिक्त परमानन्द सागर में गुणीभूत व्यंग्य के उदाहरण भी मिल जाते हैं। गुणीभूत व्यंग्य के अन्तर्गत वाच्य सिद्धयव्यंग्य का एक प्रमुख उदाहरण द्रष्टव्य है :

मेरी मन गीविन्द लीं मान्यौ ताते और न भिय भावे ।  
जगत सीमत यह उत्कंठाकोऊ ब्रजनाथ मिलावे ॥  
बाढ़ी प्रीति जान उर अन्तर नान कपल चित दीनी ।  
कृष्ण विरह गोकुल की गोपी घर ही में बन कीनी ॥  
हाँडि बहार विहार सुख यह और न चाहत काऊ ॥  
परमानन्द बसत है घर में बैसि रहत बटाऊ ॥ १

प्रस्तुत पद में रस- ध्वनि ( वर्तलक्ष्य-ध्वनि )

वर्तकार ध्वनि तथा वाच्य सिद्धय व्यंग्य का समन्वित रूप दर्शनीय है। सर्व-  
प्रथम हम रस ध्वनि अथवा वर्तलक्ष्य ध्वनि की आभा पर दृष्टिपात करेंगे।  
पद में बालम्बन विभाव कृष्ण और वाच्य गोपी है। कृष्ण के चरण कमलों  
के प्रति प्रेम उदोपन विभाव, मिलने की आतुरता, अन्य प्रभाव, बटाऊ  
की ही स्थिति आदि अनुभाव तथा उत्कंठा संचारी भाव है। इस सम्पूर्ण  
प्रसंग से गोक्षुल की गोपी के हृदय से बतिसय प्रणय की ध्वनि ही निकलती  
है। इस प्रकार यहाँ रस- ध्वनि है। समस्त पद विप्रलम्भ शृंगार का प्रेष्ठ  
उदाहरण है।

पद की तृतीय पंक्ति में अंकित 'चरन कमल'

में रूपक वर्तकार होने के कारण वर्तकार ध्वनि का भी संचरण मिलता  
है।

पद की चतुर्थ पंक्ति में कृष्ण विरह वाच्यार्थ

है और घर हा में वन व्यंग्यार्थ रूप का बोधक है। 'कृष्ण विरह'  
इतना उत्कृष्ट रूप धारण कर चुका है कि गोपी को घर वन अर्थात् निजंत  
स्थान सदृश्य लग रहा है। विरहावस्था में गोपी को निजंतता का अनुभव  
घर ही में प्रतीत हो रही है। इस प्रकार उसके विरह की पुष्टि घर ही  
में वन व्यंग्यार्थ से ही रही है। जैसा कि विरहवास्था में होना स्वाभाविक  
होता है। अतः वाच्यार्थ का व्यंग्यार्थ अवश्य ही पोषक रूप बनकर निर्वाह  
कर रही है। वाच्यार्थ की व्यंग्यार्थ द्वारा पोषक होने के कारण ही यहाँ  
वाच्यसिद्धयव्यंग्य की पुष्टि ही रही है।

### रस-ध्वनि का अन्य उदाहरण

पेरी मन छर्यो दुहुँ जोर ।  
 सुन्दरबदन मुकुट की सोभा प्रवनन मुखी घोर ।  
 तब हौं न बिभवन से निकली हरि जाये इहि जोर ।  
 मृदु मुखिकाय बँक अवलोकनि सर्वहु तीनी जोर ।  
 हौं बहूँ समुझाय रही ये कहूँ बस नाहिन मोर ।  
 रही उपनार दासपरमानन्द बिन नागर नंद किछोर ।

विरह की स्मृति की फलक में गौपी की  
 संयोगात्मक अवस्था तथा संदिग्धावस्था कसहायावस्था का मिश्रित वर्णन  
 कवि ने एक ही पद में कितने कौशल से किया है जो कि प्राप्तिनीय है। बाल-  
 म्भन , बालय, अनुभाव, विभाव्यादि की उपस्थिति में पद से विप्रलम्भ शृंगार  
 रस ध्वनि निरुक्त रही है। अतः पद में रस ध्वनि का उत्कृष्ट विधान मिलता  
 है।

### वर्तकार- ध्वनि का उदाहरण

कहाँ वे तब के दिनन के दिन ।  
 जब गोपाल गोकुल में रहते सुन्दर बम्हूज नैन ।  
 जबपि रास गोप गोपी कुल नव गोधन के ठाट ।  
 रघुब्रज विनु सकल संपति सुख र अमृता के घाट ।  
 र कृष्ण विनु सबही दोस्तु है चन्द हीन जैसे रति ।  
 परमानन्द स्वामी के बिहारे देख कल कौति ॥

प्रस्तुत पद में रूपक, उपाग की समन्वित कटा

कर्तवीय है। कतः फल रचना में अलंकार ध्वनि का निर्वाह हुआ है।

रसवीर अलंकार ध्वनियों में कवि की रचनाईं  
जैसे रसों की वैसे अलंकारों में ध्वनित हुईं। इन ध्वनियों के चित्रों से  
परमानन्द सागर मरा फटा है।

इस प्रकार के उदाहरणों से पता चलता है  
कि परमानन्द सागर के पृष्ठ कलेवर में ध्वनि शक्ति का उत्कृष्ट विधान  
मिलता है। इस ध्वनि शक्ति के अन्तर्गत कवि की रचना अधिकतर रस  
ध्वनि तथा अलंकार ध्वनि के अन्तर्गत अधिक विकसित होती दीस पड़ती  
है। कहीं कहीं सन्दिग्ध प्राधान्य ध्वनि तथा कतिपय स्थलों में तुल्य प्राधान्य  
अव्यय का रंग भी मिल जाता है। परन्तु इन ध्वनियों का जना बाहुल्य  
नहीं है। यही कारण है कि हमने परमानन्दसागर में बहुवर्त्ति सर्व प्रसृत  
ध्वनियों के विषय में ही स्फाश डाला है। जिन पर कि कवि दृष्टि अधिक  
रही है।

परमानन्द सागर में शब्द शक्तियों का अध्ययन  
करने से निष्कर्ष हम में हम कह सकते हैं कि उसकी पृष्ठत भाव धूमि में जहाँ  
वर्णन की रसमयी धारा प्रवाहित हुई है। वहाँ अभिधा शक्ति का सुन्दर  
प्रयोग मिलता है। नायिकाजी की वचन विदग्धता में रति भाव की अव-  
स्थिति से जहाँ पर स्वात्मिक स्थलों में प्रेमी हृदय की विवशता के चित्र उप-  
स्थित किये हैं। वहाँ कवि ने अनुराधाधारण में प्रवृत्ति मुहावरों तथा लोकोक्ति  
पूर्ण भाषा का सहारा लेकर लक्षणा शक्ति के बोलते चित्र प्रस्तुत किये  
हैं। यथा- "माधौ परि नहीं लोके सही" गोपी प्रेम की स्वात्मिक  
लक्षणा शक्ति की अभिव्यक्ति में कवि ने कविवर बिलारी की तरह सागर  
में सागर मर दिया है।



गोपियों के प्रति यशोदा की कटुवित्तियों और व्यंग्यपूर्ण चिन्तों में कवि ने व्यञ्जना शक्ति का प्रयोग किया है। कवि के इस प्रकार के चित्रण में उनका वास्तव्य फूट पड़ा है। गोपी, यशोदा इस प्रकार के वाक् वाच्य में नारी हृदय का पूर्ण पारखी बन बैठा है। व्यंग्य दुर्बल व्यक्तित्व का वाक् वस्त्र होता है। दुर्बल व्यक्तित्व में प्रतिशोध करने की शक्ति नहीं होती है। अतः वह अपने इसी व्यंग्यात्मक वस्त्र से अपने हृदय की कसक को मिटा लेता है। परमानन्ददास की गोपियाँ भी इस प्रकार के व्यंग्य वस्त्र का कृष्ण के साथ प्रयोग करने में चुकती नहीं हैं। उनके जात्म वसन के प्रस्फुटित कूठे व्यंग्यात्मक स्वर- 'जिय की जानत ही पिय अपनी गरज के ही गारक' कवि ने इस प्रकार के वर्णन में गोपियों के हृदय की पूर्णरूपेण हलकर कहने का प्रसर प्रदान किया है। परिणामस्वरूप परमानन्द सागर में व्यञ्जनाओं का संयोजन सबल बन पड़ा है। व्यञ्जना के इन प्रयोगों में उनकी भाषा में शक्ति सरसता तथा संजीवता का सामंजस्य हुआ है। फलस्वरूप परमानन्दसागर में युगानुरूप व्यञ्जना का निदर्शन ही सका है।

समष्टि रूप से हम कह सकते हैं कि परमानन्द सागर के अन्तर्गत, ध्वनि शक्तियों शब्द शक्तियों के परिधिष्य में हास्य चिनोद, व्यंग्य, उपात्म्य, बाल लीला आदि ऐसे प्रसंग वर्णित हैं। जिनमें कृशु तत्वों के चित्रांकन में वभिधा शक्ति विषय, चित्रांकन और भाषाभि- व्यक्तित्व में लक्षणा तथा व्यंग्यात्मक और कटुवित्तियों में व्यञ्जना शक्ति का सफल चित्रण मिलता है।

## परमानन्द सागर में रीति, गुण, वृत्ति, कौक्षिति

### सम्बन्धी वैशिष्ट्य

#### १- रीति- वृत्ति का सास्त्रीय स्वरूप, भेदादि

काव्यशास्त्र के अन्तर्गत 'रीति' और 'गुण' में अत्यधिक पारस्परिक सम्बन्ध रहा है। यहाँ तक कि यह दोनों काव्य सत्त्व सम्बन्धीन्यायगत ही वर्णित हैं। अतः इनके मुख्य अस्तित्व की जानकारी प्राप्त करने हेतु इस विषय रूप में हम सर्व प्रथम रीति के व्युत्पत्तिपरक अर्थ एवं स्वरूप आदि का विवेचन प्रस्तुत करते हैं :

#### रीति शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ

'रीति' गम्यते नैति रीतिः ' अर्थात् गमन करने का मार्ग जिसके द्वारा गमन किया जाय, उत रीति कहते हैं। काव्यशास्त्र के अन्तर्गत 'रीति' शब्द साधारणतः मार्ग शब्द का ही अर्थ न लेकर, काव्य- सरणि, काव्य मार्ग, काव्य, काव्य- वत्सल आदि के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है।

'रीति' शब्द के अर्थ निरूपण में भारतीय वाचार्यो ने पुष्प पुष्प धारणाएँ प्रस्तुत की हैं :

वाचार्य वामह ने 'रीति' को 'काव्य' की संज्ञा दी है।

वाचार्य दण्डी ने 'रीति' को मार्ग और वत्सल कहा है।

उद्भट ने 'रीति' को 'वृत्ति' के नाम से अभिहित किया है।

आचार्य वामन, रुद्रट, राजशेखर तथा विश्वनाथ ने इसे 'रीति' ही कहा है।

आनन्दवर्धन इसे 'संघटना' कहते हैं तथा बा० भोज इसे 'पन्थ', 'मार्ग', तथा 'रीति' भी कहते हैं।

आचार्य मम्मट जीर जगन्नाथ 'रीति' को 'वृत्ति' वीर 'रीति' दोनों नामों से सम्बोधित करते हैं। आचार्य वामन ने 'रीति' को काव्यकी आत्मा कहा है।

उपर्युक्त सभी नामों में 'रीति' का ही विशेष प्रवृत्त रहा है।

### रीति का स्वरूप

आचार्य वामन के अनुसार 'रीति' विशिष्ट पद-रचना को कहते हैं। पदों की रचनाओं में जो विशेषता उत्पन्न होती है उसके जन्मदाता गुण होते हैं। 'गुण' काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों को कहते हैं। 'रीति' काव्य अर्थात् शब्दार्थ (रूप-काव्य-शरीर) की 'आत्मा' को माना है। वामन के अनुसार केवल पद-रचना को ही 'रीति' नहीं कहा जा सकता। जब तक कि वह गुणों से परिपूर्ण न हो।

‘ रीति ’ शब्द का सम्बन्ध केवल शब्दगत सौन्दर्य से न होकर अर्थगत सौन्दर्य से भी होता है।

वानन्दवर्धन के अनुसार संघटना गुणों पर बाधित है, जो कि रसानिबध्यवित्त का साधन मात्र होती है। वासन के विचार में रीति ( पर- रत्ना ) पर गुण बाधित रहती है। रीति उन्हीं के द्वारा सिद्ध होती है।

श्वर भोजराज ने अपनी शृंगार प्रकाश में ‘ रीति ’ को ध्वन विन्यास रूप बताया है। कुत्तक ने ‘ रीति ’ के स्थान पर मार्ग शब्द का प्रयोग करते हुए कहा है कि कवि के प्रस्थान करने का मार्ग अर्थात् उसकी रत्ना होती को कहा है। उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि ‘ रीति ’ के स्वल्प निर्धारण में वाचार्थ एक मात्र नहीं हैं।

समग्र रूप में ‘ रीति ’ का सर्वमान्य स्वीकृत रूप निम्नलिखित है :

“ रीति ” एक बाहरी तत्त्व है जो समासों पर बाधित है। रीति को गुणों के बाधित माना गया है। रीति काव्य की की संस्था के सदृश्य है। रीति काव्य की आत्मा है। रीति एक मार्ग अर्थात् रत्ना का प्रकार है, न तो वह काव्य की आत्मा है और न ही रसानिबध्यवित्त से उसका कोई सह सम्बन्ध होता है ( राजशेखर- भोज ) । रीति रत्ना के रूप में रसानिबध्यवित्त का एक साधन मात्र है ( वानन्दवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ ) ।

### रीति के भेद

रीति के भेदों के विषय में भी आचार्य एकमत नहीं हैं। आचार्य भाष्य और दण्डी 'रीति' के दो भेद मानते हैं- वैदर्भ और गौड़ीय । भाष्य ने वैदर्भ, गौड़ीय के अतिरिक्त पाँचाली रीति का अस्तित्व निश्चित किया है। रुद्रट और विश्वनाथ ने भाष्य द्वारा निश्चित रीतियों के अतिरिक्त लाटीय ( लाटिका ) आदि की वृद्धि की और नीलराज ने उक्त चारों के अतिरिक्त खन्तिका और मागधी भी की और वृद्धि की है। आनन्दवर्धन ने कुमावा, मध्यमसमासा और दीर्घ समास केवल तीन को माना है।

कुन्तक ने सुकुमार, विचित्र और माज्यम की उद्घोषणा की है। उद्भट और मम्मट ने उपमागरिका, पठुणा और कौमला (ग्राम्या ) इन्हीं तीन को स्वीकार किया है।

'रीति' के स्वल्प-भेद का विषय अत्यन्त ही विषम और विवादास्पद रहा है। क्योंकि किसी आचार्य ने रीति के दो भेद माने हैं तो किसी ने तीन । इस व्यापक विषय की कल्प-स्थिति को हम संक्षिप्त रूप में केवल दो रीति सम्मत सिद्धान्तों का विवेचन करेंगे :

१- वाचन का रीति- सिद्धान्त

२- आनन्दवर्धन, मम्मट और विश्वनाथ-सम्मत रीति विषयक दृष्टिकोण ।

आचार्य दण्डी और भाष्य ने रीति- भेद गुणों के आधार पर किया है।

वाचार्थे दण्ठी के समान वाचार्थे वाप्स ने भी रीतिर्यों की गुणों से सम्बद्धता स्थापित करते हुए गौड़ी रीति की लौक गुण तथा कान्ति गुण, पाँचाली रीति की माधुर्य गुण तथा वैदर्भी रीति की दस गुणों से सम्बन्धित माना है। वाप्स ने वैदर्भी रीति की दोषों से वस्पष्ट सर्वगुण शुष्कित बीर घोणा के स्वर सदृश्य रचना बताया है। यह वाणी क्षम मधुर स्वर का श्रोत है। सदृश्य में वसूत वृष्टि वर्ता है।<sup>१</sup> वैदर्भी रीति की माधुर्य गुणयुक्त कौमलकान्त भावनाओं की अभिव्यक्ति का एक साधन माना गया है। माधुर्य गुण का अस्तित्व शृंगार कल्पना आदि रसों में होता है।<sup>२</sup>

### १- वैदर्भी रीति

वैदर्भी रीति के अन्तर्गत पद- रचना गुणों से सम्बन्धित होती है। यह दस गुण निम्न प्रकार से द्रष्टव्य हैं :

१- लौक गुण

२- प्रसन्नता की अभिव्यक्ति - प्रसाद गुण

३- कौमल रचनाओं में ( शैल्य गुण )

१- (अ) वस्पष्टा दोषमाह्वानिः समग्रगुणशुष्कता ।

विषज्योस्वर लोभाभ्या वैदर्भी रीतिरिष्यते ॥

(ब) सति वक्तारि सत्पर्यं सति शब्दानुशाले ।

अस्तिनन्त विना ये परिश्रवति वाह्मण्यु ॥

(स) जानन्वयत्यय च कर्णं पर्यं प्रपाता ।

केतः सतामपृत वृष्टिरिव प्रविष्टा ॥ - का०शु० १:२:११:२१

२- शृंगारे विप्रलम्भास्ये कल्पनी च प्रकर्णवत् ।

माधुर्यमाश्रयति यस्ति यस्तज्जाधिर् मनः ॥ ध्वन्या० २, ८

४- पद जिस शैली से प्रारम्भ हो उसी मार्ग शैली से उसकी समाप्ति होने पर सन्तता गुण होता है।

५- रचना पद में जारीत जारीत होने से उपाधि गुण होता है।

६- पद में पुष्पकपदता के कारण पादुर्य गुण होता है।

७- कौमलात्मक के कारण संकुमार्य गुण होता है।

८- वर्णन की विवृतता में उदात्ता का गुण होता है।

९- पदों की उज्ज्वलता में कान्ति गुण पाया जाता है।

१०- पदों की स्पष्ट एवं व्यञ्जना में व्यञ्जित का गुण होता है।

वैदर्भी रीति पूर्ण रचना में उपर्युक्त सभी गुणों का समावेश कतिपय कवियों की कतिपय पद रचनाओं में हो देखी को मिलता है। किसी भी रचना में इन गुणों का संख्या में न्यूनता होने पर भी वैदर्भी रीति का अस्तित्व स्वीकार किया जा सकता है।

## २- गौड़ी रीति

पद- रचना के अन्तर्गत शब्द-गत बीज गुण का समावेश होने पर गौड़ी रीति का साधुभाव होता है। इसके साथ साथ पदों की उज्ज्वलता के कारण शब्दगत कान्ति गुण भी होता है। इस प्रकार इस रीति में 'बीज' और 'कान्ति' दोनों का अनुबन्ध होता है।

### ३- पाँचाली रीति

रत्ना में शब्दगत माधुर्य और लौकिक गुण होने पर पाँचाली रीति लीजी है।

### पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों की रीति ( शैली ) सम्बन्धी सम्मति

भारतीय काव्यशास्त्रियों की रीति सम्बन्धी विनाशकारकों के निष्कर्ष स्वल्प कम कह सकते हैं कि रत्ना, वर्ण-योजना, संघटना आदि 'रीति' के ही पर्याय हैं। पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों में 'रीति' के स्थान पर स्टाइल बर्णात् शैली का प्रादुर्भाव हुआ जो कि भारतीय 'रीति' के ठीक अर्थ में समता नहीं रखता है। इसके समानार्थी बनने की क्षमता तो अवश्य रखता दृष्टिगत होता है।

भारतीय वाचार्थों की तरह पाश्चात्य काव्य-शास्त्री भी इस सन्दर्भ में एक मत नहीं हैं :

### १- स्लेटी के वित्सार

स्लेटी ने तीन शैलियों का प्रतिपादन किया है :

- १- सरल- सरल
- २- विचित्र
- ३- मिश्र

इन तीनों में से स्लेटी ने मिश्र शैली को सर्वोत्कृष्ट स्थान दिया है। सरल शैली को भी उपयोगी बताया गया है। विचित्र को उन्होंने निम्न स्तर की शैली माना है। उस निम्न स्तरीय शैली को उन्होंने ग्रामीण वर्ग तथा



बच्चों की रुचि के लिए ठीक बताया है। प्लेटों की शैली के तीनों रूप भारतीय वाचार्थ कुन्तक की छुट्टी, विविध और मध्यम नामक काव्य मार्गों के सम्मिलन रख सकते हैं।

### २- वस्तु के अनुसार

वस्तु शैली के दो प्रमुख गुण मानते हैं।

स्पष्टता और वीर्य ( विषयव्यक्तिता ) प्रमुख भेद दो बताये हैं :

१- साहित्य शैली २- विवाद शैली । विवाद शैली के दो उपभेद किये हैं : १- संवाद की शैली २- न्यायालय की शैली ।

### ३- केन जान्मन

शैली का प्रमुख गुण प्रसाद को मानते हैं,

उत्सव प्रमुख दोष उत्सव विलम्ब होना है। इसके अनुसार शैली के चार भेद हैं- संक्षिप्त, संश्लिष्ट, विशिष्ट तथा सर्वज्ञ ।

### ४- वर्णसंघर्ष

काव्य में सहज भाषा के प्रयोग पर बल

दिया है जो कि ग्राम्य जीवन में विहित होती है।

### ५- मधुर जानल

जानल उदात्त शैली पर जोर देते हैं। काव्य

का विषय और शैली दोनों में उदात्तता होनी चाहिए ।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि ' रीति '

काम्य शैली एक ऐसी नियोजित शैली है, जिसका प्रयोग विषयानुसार

होने पर ही उपयोगी होता है। यदि ऐसा नहीं होता है तो वह निरर्थक योजना मात्र निष्क्रिय है। इसका सम्बन्ध रचनाकार की क्षमता एवं योग्यता से होता है।

भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टि में रीति  
हैली तीन प्रमुख तत्त्वों पर केन्द्रित होती है :

- १- उपयुक्त शब्द-योजना
- २- विषयानुसृत पद रत्ना और
- ३- स्पष्ट अभिव्यक्ति

इन्हीं गुणों में अन्य सभी गुणों का समावेश एवम हो जाता है।

२- रत्नों के बाजार पर रीति का स्वरूप

---

( वानन्दवर्धन, मम्मट तथा विश्वनाथ द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्त )

वानन्दवर्धन ने ' रीति ' को संघटना  
( सम्पत् संघटना = रत्ना ) कहा है। उन्होंने संघटना का कार्य  
गुणों के बाजित रखकर उस की अभिव्यक्ति करना माना है।

मम्मट के अनुसार निश्चित वर्णों का उस  
सम्बन्धी कार्य-व्यापार वृत्ति ( रीति ) कहताता है।

विश्वनाथ ' रीति ' को पद संघटना कहते

---

१- वृत्ति निकटवर्णांगता उस विषयी व्यापार ॥

हैं। काव्य में इसकी स्थिति शारीरिक वर्णों के समान मानती है। इसी रूप में वह रस का उपकार करती है।<sup>१</sup>

रीतियाँ तीन मानी गयी हैं :

१- वैदर्भी

२- गौड़ी

३- पाँचाली

इन तीनों का सम्बन्ध क्रमशः माधुर्य, जीज और प्रसाद गुणों से है। इनके अनुसार तीनों रीतियों के लक्षण निम्नलिखित प्रकार से वर्णित हुए हैं :

१- वैदर्भी रीति

माधुर्य गुण के वर्णों से व्यञ्जित रसना को वैदर्भी रीति कहते हैं जो कि शृंगार, करुण आदि कोमल रसों का संचार करती है। मम्मट इसको उपमागरिका वृत्ति भी कहते हैं।

२- गौड़ी रीति

जो रसना जीज गुण से युक्त होती है तथा रौद्र, वीर, रस का उपकार करती है, उसे गौड़ी रीति कहते हैं। मम्मट इसे पुरुषणा वृत्ति भी कहते हैं।

३- पाँचाली रीति

जो रसना माधुर्य और जीज गुणों से युक्त हो तथा अन्य गुणों के वर्णों से भी युक्त हो उसे पाँचाली रीति कहते हैं। मम्मट ने इसको कोमलावृत्ति की संज्ञा दी है।

१- पद संघटना रीतिः किं संस्था विशेषणम् ।

रत्नादीनामुपकर्षी ॥ साद० प० ६, १

## २- गुणों की शास्त्रीय पृष्ठभूमि : स्वल्प स्व भेदादि

“रीति” की तरह गुणों का स्वल्प भी साहित्याचार्यों के लिए विवाद का विषय बना रहा है। कभी गुण की रीति के जाति माना जाता रहा तो कभी रीति को गुणों के जाति माना गया कभी गुण और वर्तकारों में भेद समझा गया। कभी शब्दार्थ का धर्म माना गया तो कभी उस का। इस प्रकार गुणों के निष्पन्न में अत्यन्त मतभेद रहा है। ऐतिहासिक में हम तीन प्रसिद्ध मनीषी वानन्दवर्धन, पद्मसूत और विश्वनाथ द्वारा मान्य गुणों के प्रमुख सजाणों का विवेचन करना ही उपयुक्त समझते हैं :

- १- तीनों गुण (वीर, प्रताप, माधुर्य) उस के उस प्रकार से धर्म हैं जिस प्रकार तीर्थ जादि गुण आत्मा के धर्म हैं, गुण जंग हैं तो उस वीर हैं।
- २- उस रत्ना के अन्दर गुण की स्थिति अविकल रूप से विद्यमान रहती है। नीरस रत्ना गुण रहित होती है।
- ३- गुण रत्ना में रसोत्कर्ष करते हैं।
- ४- गुण प्रसूतः उस के धर्म हैं, उसके साथ ही वे गीण रूप में शब्दार्थ के भी धर्म होते हैं।

भरत से लेकर विश्वनाथ तक गुण का यही रूप रहा। भरत और दण्ड ने प्रकारान्तर से गुण की शब्दार्थ का धर्म निश्चित किया। वासन ने श्री रूपस्य रूप से माना है। परन्तु वासन की

‘रिति’ काव्य की आत्मा बिना दस गुणों के न हो ही सकती रहा उनका मत है। आनन्दवर्धन ने गुण की विशिष्टता के लिए उसे रस का धर्म माना है। तथा गुण को रस के जाहित माना है।

हमारे विचार से गुण रस का ही धर्म है।

### गुणों के प्रकार

गुणों के प्रकार के विषय में भी आचार्य एक मत नहीं है। भरत के अनुसार गुणों की शब्दार्थ का धर्म स्वीकार करने वालों ने गुणों की संख्या दस निश्चित की है।

गुणों की दस संख्या मानने वाले आचार्य भरत, दण्डी, वासन, वाग्भट प्रथम, द्वितीय तथा जयदेव प्रमुख हैं।

गुणों की रस का धर्म मानने वाले आनन्दवर्धन माधुर्य, जीव , प्रसाद तीन गुण मानते हैं।

कुत्तिक ने गुणों की संख्या दस : मानी है।  
संख्या इस प्रकार है : १- वीरित्य २- धीमाग्य ३- माधुर्य ४- प्रसाद ५- लावण्य ६- अमिवात्य ।

मोजराज जीर विमानाथ ने गुणों की संख्या

१- श्लेषः प्रसादः समता समाधिः माधुर्य मौजः पद संशुमार्यम् ।

अर्वात्य च व्यभितरुदात्ता च कान्तिरस काव्यस्य गुणा दशैते ॥

- नाट्या० १७, ६६

२४ मानी है। इन्होंने भारत के दस गुणों के बतिरिक्त १४ और माने हैं, जो इस प्रकार हैं। उदात्ता, कीर्तित्य, प्रेयः, सुशब्दता, सौन्दर्य, नाम्नीय, विस्तर, संक्षेप, संक्षिप्ता, भाविता, गति, रीति, उचित और प्रीति परन्तु इन गुणों का पावर्ती वाचार्थ ने अनुसरण नहीं किया ।

अब हम संक्षेप में भारत और दण्डी सम्मत दस गुणों का तथा इसके पश्चात् वाचस्पत्य के तीन गुणों का विवेचन करेंगे :

१- श्लेष- जिस रचना में ऐसे पद श्लेष व्यवस्था में हों और कभीष्ट वर्ण समूह से परस्पर सम्बद्धता रखी है, वहाँ श्लेष गुण होता है।

२- प्रसाद - जिस रचना में ऐसे सहज शब्दों का प्रयोग हो जिससे सहज ही वर्ण का बोध हो । वहाँ प्रसाद गुण होता है।

३- समता - कर्तार की गुण एक दूसरे के समान होने पर समता गुण माना जाता है।

४- समाधि - उपाय और कर्तारों से सुशो-  
भित कभीष्ट वर्ण का संयोजन होनेपर समाधि गुण माना जाता है।

५- माधुर्य - वाचार्थ दण्डों के अनुसार -  
रस युक्त ही मधुर है। अतएव शब्दों तथा वर्णों विनयों में भी रस होने पर माधुर्य गुण की ध्येयता होती है।

६- जीध- जानाये दण्डी के अनुसार- रत्ना ये सगास को उल्लिखता जीध कहलाती है।

७- सौकुमार्य- दण्डी के अनुसार- जहाँ प्रायः कठोर अक्षर न हों, वहाँ सुकुमारता गुण होता है।

८- उर्थव्यक्ति - दण्डी के अनुसार, वह रत्ना जिसमें वर्ण जीध के तिर ( सहृदय को अपनी ओर है ) कुछ न जोड़ना पड़े ।

९- उदात्त (उदार) - जिस रत्ना के पद जाने पर किसी उन्नत गुण की प्रीति हो ।

१०- कान्त ( कान्ति ) - जो सारे जगत् को प्रिय है, वही कान्त है, क्योंकि लौकिक वर्ण का वह प्रतिक्षण नहीं करता । वह साधारण वर्णन में भी मिलता है।

जानन्दवर्धन, मम्मट और विश्वनाथ की सम्प्रति में गुणों के प्रकार

गुण को त्रिवर्ग का पर्याय निश्चित किया गया है। अतः जिस की वशाओं के बारे में भी प्रसंगवश परिचित होता उपेक्षित है। विभिन्न रत्नों के वर्णन में पाठ्य जयवा सामाजिक के जिस की तीन दशहर होती हैं- दृति, दोषि, और व्याप्ति इनकी त्रिवर्ग कहा जाता है।

१- दृति : जिस को जाड़ दता को दृति कहते हैं।

२- दोषि : जिस की वति पवित्रता एवं विस्तृत वरा की दोषि कहते हैं।

३- व्याप्ति : चिः की व्याप्ति एवं विकासमय स्थिति की जानकारी ने व्याप्ति कहा है।

उक्त तीनों जानकारों ने गुण तीन प्रकार के माने हैं :

१- माधुर्य

२- बीज

३- प्रसाद

१- माधुर्य गुण

जन्मा में चिः की दृष्टि एवं बाह्यवर्णमय रूप जिसमें वृत्तःकरण प्रवृत्ति दशा तक पहुँच जाय उस प्रकार उत्पन्न आनन्द की माधुर्य गुण की संज्ञा दी है।

यह गुण संयोग शृंगार, वियोग, करुण और शान्तियों के लिए उत्कर्षवर्धक माना गया है। माधुर्य गुण की व्यञ्जना के लिए ह- वर्ण के सभी वर्णों, र और फलम वर्णों के संयोग से बने शब्द तथा लम्बे समास युक्त वाक्यांश निश्चित माने गये हैं, जो विषय वस्तु बीज गुण के लिए स्वीकार्य है। वही माधुर्य गुण के लिए वर्जित मानी गयी है।

२- बीज गुण

बीज गुण का सम्बन्ध हृदय की चिः वृत्ति व्यञ्जना कहा दीक्षा सेहीता है। यह गुण वीर, वीमत्स, एवं तीव्रता

१- (क) बाह्यवर्णमय माधुर्य शृंगार दृष्टिकारणम् ।

करुणो विप्रसन्ने तन्मन्ते नातिशयान्वितम् ॥ का० प्र० ६८, ६९

(ख) चिःप्रवीणमययाह्लादी माधुर्यमुच्यते ।

संयोगे करुणो विप्रसन्ने शान्ते धिक् श्रमात् ॥ सा० द० ८, २, ३



के वर्णों में अधिक उत्कर्षवर्द्धक होता है। इस गुण युक्त रत्ना के पठन-पाठन से मन में उर्मी और उत्साह का संवरण बना रहता है। इस गुण में लम्बे समास होती हैं। इसके व्यंजन वर्ण ट, ठ, ड, ढ, श, ञ हैं।

### ३- प्रसाद गुण

प्रसाद का शाब्दिक अर्थ प्रसन्नता है। रत्ना का वह वैशिष्ट्य जिसकी वजह से हम जितनी शीघ्रता से पूर्ण सामोप्य स्थापित कर लेते हैं। उसी को शास्त्रीय शब्दों में 'प्रसाद' कहते हैं। प्रसाद गुण सम्पन्न रत्ना के सुनने से ही हृदय में आनन्द की वृद्धि होने लगती है। इसके व्यंजन सरल एवं सुबोध पद होने के कारण अर्थ की प्रतीति सरलतापूर्वक होने लगती है। यही कारण भी है कि यह गुण सभी रत्नों की सभी रत्नाओं में ही अवस्था है।

भाचार्य द्वारा प्रयुक्तः उपरोक्त तीन (माधुर्य, बीज, प्रसाद) गुणों को ही त्रिकार किया गया है।

रीति- वृत्ति का शास्त्रीय स्वरूप एवं गुणों के साथ उसका सम्बन्ध

साहित्याचार्यों के रीति, वृत्ति एवं गुणों की विचारधाराओं से परिचित होने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि शास्कारों ने रीति और वृत्ति के बीच कोई विशेष अन्तर स्थापित नहीं किया है। फिर भी 'रीति' और 'वृत्ति' और गुण के विषय में विद्वानों की जो विचारधाराएँ प्रचलित नहीं हैं, वह इस प्रकार हैं। जैसा कि रीति विषयक प्रकरण में विवेचन किया जा चुका है, 'रीति' का शाब्दिक अर्थ सही अथवा किसी विषय की कहने का ढंग है। पश्चात्य विद्वानों ने भी 'रीति'

शब्द का स्पष्ट अर्थ 'रीति' ही निश्चित किया है। भारतीय वाचार्थों में सर्वप्रथम एवं सर्वोपरि श्रेष्ठतम स्थान वाचार्थ वामन ने इस 'रीति' को ही दिया है। उन्होंने काव्यालंकार सूत्र में 'रीति' की व्याख्या 'विशिष्ट-पद-रचना - रीति' अर्थात् विशिष्ट पद रचना ही 'रीति' है। दूसरे वाचार्थ विश्वनाथ ने वामन के उक्त कथन को पुष्टि अपनी साहित्यदर्पण में इस प्रकार की है :

पद संघटना रीति एव संस्थाविशेषतत् ।

उपकर्त्री रसादितां साधुः स्थाञ्छतुर्विधा ॥ २

अर्थात् जिस प्रकार सम्पूर्ण का प्रत्यक्ष के संगठित रूप से शरीर का सौन्दर्य बदन और उसके अस्तित्व का प्रदर्शन होता है उसी प्रकार काव्य में अनुसूत पदों की संघटना से स्वीकर्ण होता है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि 'रीति' वह शब्द संघटना है जिसके सहारे कवि अपने अनामिक अर्थ को पाठकों के हृदय में स्थापित कराता है। अर्थ स्थापन की इस प्रक्रिया में वाचार्थ वामन ने रीति का सम्बन्ध गुण से विशेषगुणात्मा कह कर स्पष्ट किया है। अर्थात् गुणों से पद संघटना में विशेषता उत्पन्न होती है। इस प्रकार रीति के विषय में निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि गुण, रीति के स्वाधीन अर्थ है, गुणों की अतुल्य स्थिति मैत्री शब्द संघटना की जाती है उसे ही 'रीति' कहते हैं। प्रमुक्तः रीतिर्वा तमे मानो गयी है- वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली ।

'रीति' के संदिग्ध विवेचन के पश्चात् अब हम 'वृत्ति' के विषय में भारतीय वाचार्थों के विचारों की प्रस्तुत

१- काव्यालंकार सूत्र १, २, ७

२- साहित्यदर्पण ६ : १

करना अभीचीन समझते हैं।

जानन्दवर्मा ने 'वृत्ति' को व्याख्या इस प्रकार प्रस्तुत की है : 'व्यवहारो हि वृत्तिरित्युच्यते' अर्थात् व्यवहार ही वृत्ति है। आचार्य रुद्रट ने समास युक्त पदों को लीटना को ही वृत्ति को उद्गा दी है। आचार्यों के इन कथनों ने 'रोति' और वृत्ति के साम-जस्य को एक ही परिधि में निबद्ध कर दिया है। आचार्यों ने 'वृत्तियों' के दो भेद निश्चित किये हैं :

१- कर्मवृत्ति ( नाट्यवृत्ति )

२- शब्द वृत्ति

कर्म वृत्ति के दोष हैं - कौशिको, भास्ती, वासटो और सात्वतो वृत्तियों को रखा गया है। कर्म वृत्ति के अन्तर्गत उप्तागरिका, पुरुषा एवं कौमला वृत्तियों को निरूप किया गया है। सम्पट ने रीतियों और वृत्तियों में एक सम्बन्ध निश्चित किया है। वे उप्तागरिका को वैद्यों पुरुषा की गीढ़ी तथा कौमलावृत्ति को पाँचाली रीति मानते हैं। यह वृत्तियाँ भी रीतियों की तरह गुणों के सम्पर्क से काव्य में स्वीकृति करती हैं।

उप्तागरिका 'का सम्बन्ध माधुर्य गुण युक्त वर्णों से, पुरुषा वृत्ति का सम्बन्ध वीज गुण की व्यंजना करने वाले वर्णों से इसी प्रकार कौमला वृत्ति का सम्बन्ध माधुर्य, वीज और प्रसाद दोनों से अर्थात् गुण त्रयो से स्पष्ट होता है। कौमलावृत्ति माधुर्य और वीज गुणों से युक्त व वतिरिक्त वर्णों वाली होती है। अतः इसका सम्बन्ध माधुर्य, वीज के साथ ही साथ प्रसाद से भी वतिरिक्त वर्णों के कारण होता है। इसी प्रकार कर्मवृत्ति के अन्तर्गत जाने वाली कौशिको ,

सात्वती०, नास्ती और बाह्यती चारों वृत्तियों में क्रमशः शृंगार और शास्य, वीर, रौद्र और वदभुत, कृष्ण और वदभुत, वीर, रौद्र और वदभुत रूप की विशिष्टता को निश्चित किया गया है। रीति और वृत्तियों के पारस्परिक क्रोध को विद्वानों ने अन्तिम रूप से स्वीकार नहीं किया है। क्योंकि साहित्य के इन दोनों ही उपादानों में क्रोध एतद्दूर भी सूक्ष्म दृष्टि से भेद है। रीतियों का नामकरण, वर्गीकरण पेश या प्रान्त के ( विदर्भ, गौड़, पांचाल ) आदि के नामों के आधार पर किया है, परन्तु वृत्तियों के विभाजन में यह आधार नहीं रहा है। इनका आधार गुण रहे हैं। परिणाम-स्वरूप रीतियाँ गुणों से सम्बन्धित होकर भी रचना के वास्तविक कथना सूत्र पदा को अधिक प्रभावित करती हैं। जबकि वृत्तियाँ रचना के सूक्ष्म, बौद्धिक पदा तक को संस्पर्श करती हैं। क्योंकि वृत्तियों का सम्बन्ध विषय की वस्तु तथा उसके उत्पन्न व्यञ्जहार से हैं। रीतियों और वृत्तियों का यह अन्तिमत्व काव्य में रस का उत्कर्ष करता है। आनन्दवर्धन ने गुण को रस के आश्रित माना गया है। शीघ्रता गुण के आश्रित है और सद्गुण के आश्रित भी माना है। पंडित राज रा कदा है कि दुस्सादि चिह्नवृत्तियाँ रसों द्वारा प्रयोज्य होती हैं, अर्थात् रसों में हृति आदि चिह्नवृत्तियों की प्रयोज्यता विद्यमान रहती है। छंदों छंदों में रसों में इन वृत्तियों को उभारने की शक्ति होती है। इस प्रकार रीति और वृत्तियों के महत्व को आचार्यों ने इन सूत्रों में स्वीकार किया है :

‘वृत्तियोजनादयमातरः सर्वं सर्वजागव काव्यान् वृत्तयोपातकाः

कृताः ।

अर्थात् सर्व काव्य, नाट्य दोनों ही जननी मात्र स्वीकार किया है।

### सप्तम अध्याय

#### परमानन्द सागर में रीति, गुण, वृत्ति, वञ्चोक्ति

#### सम्बन्धी वैशिष्ट्य

रीति- वृत्ति का शास्त्रीय स्वरूप, भेदादि  
 पारश्वत्य काव्यतास्त्रियों की रीति(शैली)  
 सम्बन्धी सम्पत्ति, गुणों की शास्त्रीय पृष्ठभूमि :  
 स्वरूप एवं भेदादि, रीतिवृत्ति का शास्त्रीय  
 स्वरूप एवं गुणों के साथ उसका सम्बन्ध, परमानन्द  
 सागर में गुण रीति वृत्ति सम्बन्धी विन्यास,  
 परमानन्द सागर में वीर, गुण परमजावृत्ति,  
 ( गाँधी रीति ) का विन्यास, परमानन्द  
 सागर में माधुर्य गुण उपमापदिका वृत्ति ( वैदर्भी  
 रीति ) का विन्यास, परमानन्द सागर में प्रवाद  
 गुण कौमलावृत्ति ( पारिवाली रीति ) का विन्यास,  
 परमानन्द सागर में वञ्चोक्ति सम्बन्धी वैशिष्ट्य  
 ( वञ्चोक्ति का अर्थ ), परमानन्द सागर में  
 वञ्चोक्ति के उदाहरण चिह्न ।

### परमानन्द सागर में गुण-रीति-वृत्ति सम्बन्धी विन्यास

किसी पूर्व में गुण-रीति-वृत्ति प्रकरणों में इन काव्य तत्वों के विन्यास में विवेक किया जा चुका है कि काव्यसाधियों ने रीति वृत्ति और गुण के पारस्परिक सम्बन्ध होने की उद्घोषणा की है। इन वाचार्थों के विवेक में यह स्पष्ट हो चुका है कि समस्त रीति, वृत्तियाँ मूल रूप में तीन गुणों ( माधुर्य, वीर्य, एवं प्रसाद ) से सम्बद्ध हैं। अतः प्रस्तुत प्रकरण में ' परमानन्द सागर ' के अन्तर्गत हम रीति-वृत्ति एवं गुणों का समग्र रूप से अध्ययन करेंगे कि ' सागर ' में कवि की इन काव्यार्थों के प्रति कैसी प्रवृत्ति रही है। किस काव्य तत्व का कवि ने कहाँ तक तथा किस रूप में किया है और उसे उसमें कहाँ तक सफलता मिली है।

' परमानन्द सागर ' कवि की प्रकृतः मन्त्रिपरक रचना संग्रह है। इस मन्त्रि, विनयपूर्ण रचना के अन्तर्गत कवि ने तोला पुरुष शीकृष्ण के सन्नि सौन्दर्य तथा माधुर्य मन्त्रि की रस-स्निग्ध भावनाओं के अनैकानेक चित्र प्रस्तुत किये हैं। कवि ने इस प्रकार के चित्रण में मधुरावृत्ति की प्रधान रूप में प्रयुक्ति किया है। कवि की माधुर्यमयी प्रभावशील रीति अथवा उपमागहिका वृत्ति का सौन्दर्य सन्निहित होता है। वीरगुण पूर्ण रचनाओं में गीढ़ी रीति, पराध्या वृत्ति का विन्यास मिलता है। इसी प्रकार प्रसाद गुण युक्त उद्भावनाओं में पाँचाली रीति अथवा कोमलावृत्ति का अति दृष्टिगत होता है।

परमानन्द सागर में जहाँ तक गुणों के विवेक का प्रश्न है वहाँ हमें कवि की दृष्टि माधुर्य गुण, प्रसाद गुण को और अधिक केन्द्रित रही है, उसमें वीर गुण पूर्ण प्रसंगों का उतना बाहुल्य नहीं

है, परन्तु बीजपूर्ण रचनाओं का नितान्त अभाव भी नहीं है। सामान्यतः देखा जाय तो बीजस्वी रचना के लिए कवि के पास विविध विषय का अभाव ही माना जा सकता है, क्योंकि कवि मूढतः भक्त है, अतः इस भक्ति भाव से बीज प्रीत रचना में बीज का समावेश, माधुर्य, प्रसाद भाव की अपेक्षा कम ही हो सकेगा। परन्तु जहाँ भी कवि ने बीजपूर्ण रचनाओं का विवेचन किया है, उसमें कवि किंचित् मात्र भी अपनी भावामिर्व्यक्ता में उदासीन नहीं दिताई पड़ता है। माधुर्य गुण के प्रयोग में तो कवि ने अपनी मधुरिमा का सागर ही उद्घुल दिया है। कवि की यह मधुरिमा शब्दगत और अर्थात् दोनों प्रकार से ही विशेष समशील बन पड़ी है। यही बात प्रसाद पूर्ण पदावली में दृष्टिगत होती है। कवि की इन गुणों से युक्त रचनाओं से कवि की भक्ति एवं ज्ञान तथा साहित्यिक सूक्ष्म का पता चलता है। कवि की इस प्रकार की रचनाएँ उसकी भक्ति और तक ही सीमित नहीं रहती हैं, बल्कि उसे कुल कवि कोटि में उत्कृष्ट स्थान तक पहुँचाने की सामर्थ्य रखती हैं।

निदधन्विह परमानन्द सागर का कवि अपनी रचना-कोश में काव्यांगों के प्रयोग विवेचन में पूर्णतः सशिम है।

अब हम परमानन्द सागर में काव्यांगों का क्रमशः वास्तविक स्वरूप देखने का प्रयास करेंगे, कि 'सागर' में इनका किस प्रकार निर्वाह किया गया है।

१- परमानन्दसागर में बीज, गुण पहचानावृत्ति, (गोड़ी रीति) का

विन्यास :

परमानन्दसागर ही नहीं बल्कि समस्त कृष्ण

भवत कवियों को इस- विनय काव्योपासना में जीवन्मयी तत्त्वों को कम स्थान मिला है। क्योंकि इन कवियों की दृष्टि श्रीकृष्ण लीला वर्णन में अधिकारिणी रही है। लीला वर्णन में कवि दृष्टि वात्सल्य, शृंगार और शृंगार के संयोग, विरह गुण वर्णन की ओर जितनी रही है, उतनी वीर, रौद्र इस लुप्त वर्णनों में नहीं रही है। जीव गुण की व्यवस्थिति वीर, रौद्र एवं पूर्ण वर्णनों में मिलती है। कृष्ण- काव्य में ऐसे प्रसंग वर्णन कम पाए जाते हैं जिनमें कि वीर, रौद्र एवं पूर्ण वर्णनों का उद्-पादन हुआ है। परमानन्द सागर भी इस कथन का अपवाद नहीं है उसके वृत्तगत्त भी ऐसे प्रसंग कम ही देखने को मिलते हैं। इन्द्रमान भंग, गोवर्धन लीला प्रसंगों में कतिपय पद अवश्य ऐसे हैं जिनमें वर्णनात्मक पद लीला में जीव गुण का भाव मिलता है। उदाहरणार्थ इन्द्रमान भंग प्रसंग से उद्धृत एक पद इस प्रकार है :

गोवर्धन धरती धरती भी बारी कन्हैया ।  
 दधि ज्वलत फल फल लै सुख पुखा मैया ॥  
 विप्र बोति बरनी करी दीनी बहु मैया ।  
 ग्वाल बाल पायन परी गोपी छित बलैया ॥  
 नैव मुपित मम कुलधि कीरति जुग जुग मैया ।  
 परमानन्द ब्रज राति लियो लेखत लखिया ॥ १

अनुरक्त रचना में श्रीकृष्ण के इस कलौकिक काव्य के प्रति यहीदा गोपिणी एवं ग्वाल बालों की मनोदला का भाव मोना चित्रण मिलता है। यह रचना में रोतापूर्ण कृत्य प्रदर्शन के कारण उत्साह स्थायी भाव की भाव भूमि में वीर एवं कीर्तिव्यक्ति है। अतः



बीज गुण की पुष्टि अवश्यम्भावी है। यद्यपि कवि इस प्रकार की रचना की प्रत्येक वैधित्य के लन्दर लक्ष्यगत बीज प्रदर्शन कम दिताई देता है। परन्तु उस की उज्ज्वल भाव भूमि निःसन्देह पद में कान्ति भाव होने से गौड़ी रीति के दर्शन कराने में सक्षम प्रतीत होती है।

हन्द्रमान मंग के पद से उद्धृत एक अन्य पद :

गौपी ग्वास फुलल लागे चल तिहारी राखी हू ।  
बावर बुरि बुरि गाऊन लागे भली होय लो माली हू ॥  
हन्द्र कोष हम ऊपर कीनी मेघ समूह फटाये हू ।  
सुखसाधार बरक्त केना पर रिपु समान उटि धाये हू ॥  
जि हरषी हौ नाथ तिहारी हंसि हंसि कल्ल सुरारी हू ।  
कनायास हन जो कायी पर्वत लिगो उतारी हू ॥  
सात बीस बफा लो कीनी मधवा रूखी विस्माई हू ।  
परमानन्द कही गौपी जन केरी केतु बजाई हू ॥ १

प्रस्तुत रचना पद रौद्र रस की पुष्कभूमि में शोकपूर्ण के क्लेशक कार्य की सम्पन्नता का सफल चित्रण प्रस्तुत करता है। हन्द्र कोष प्रदर्शन में रौद्र रस की अवस्थिति का वातावरण विराजमान है। हन्द्र कोष के परिणाम से रचना में गौय गौपिणी के मन में मय व्याप्ति का वातावरण बना हुआ है। पद की कही वैधित्य में कृष्ण के द्वारा बीता पूर्ण कृत्य-प्रदर्शन ही उका है। यिज्जे पद में बीज गुण की विविधव्यक्ति कही जा सकती है। पद की उच्चिर्गत वैधित्य में लक्ष्य-गत-बीज भी मिलता है, जो गौड़ी रीति की परिचायक है।

बीजपूर्ण व गौड़ी रीति के कुछ अन्य उदा-  
हरण गौर्धन लीला के पदों से इस प्रकार हैं :

कोप किया ब्रज माँह प्रलय के भेष हुआये ।  
बहरी जाय निर्दक देहीं बजे बहाये ॥  
महा पीर बरसा मर्ष बस्त प्रह्वि सपीर ।  
कह्यो गोप ब्रज राज लौं अब कैसे रहि धीर ॥ १

गौर्धन नर पर धरनी पीर वारे कन्हैया ।  
वधि बखत फल प्राप्त ते मुज बरका मिया ॥

०

०

बलदाऊ कुल्हो फिरे जग सीत्यों रे मिया ।  
परमानन्द जानन्द मैं ब्रज बजत दीययो ॥ २

उक्त " इन्द्र पान भंग " तथा " गौर्धन  
लीला पदों के बीजपूर्ण वर्णनात्मक शैली के अतिरिक्त काव्यात्मक स्थलों  
में प्रच्छन्न प्रयुक्त शैली और तत्सम बहुत माणा विषयक पदों की भी  
गौड़ी रीति की फटावली में रखा जा सकता है। इन स्थलों में वृष्टि की  
परमणुता बर्णों की कटुता के कारण नहीं मानी जा सकती है। इनमें  
प्रवाद तत्त्व का जनाव होने के कारण ही ऐसा समझ है। वीर, भयानक,  
वीरपुत्र आदि रत्नों के संश्लिष्ट वातावरण में संपटित हुए वृष्टि का पूर्ण  
प्रकृति प्रदर्शन होता है।

१- परमानन्द सागर पद २७२

२- .. पद २२१

## २- परमानन्द सागर में माधुर्य-गुण उपमागरिका वृत्ति

### ( वैदर्भी-रीति ) का विन्यास

माधुर्य गुणों व्यक्क वर्णों से संघटित होने के कारण इस गुण को माधुर्य गुण कहते हैं। जो गुण परमाणावृत्ति के लिए आवश्यक होते हैं वे गुण इस उपमागरिका वृत्ति के लिए आवश्यक नहीं माने जाते हैं। यही कारण है कि सम्पूर्ण कृष्ण काव्य में अपनी मधुरिमा के कारण उपमागरिका कव्या वैदर्भी रीति का साम्राज्य सा दिखाई देता है। इस वृत्ति में कवि हृदय का माधुर्य सतित पर योजनाओं के रूप में देखने को मिलता है। माधुर्य गुण उनकी भाषा का प्रधान गुण रहा है। परमानन्दसागर में इस वृत्ति के अन्दर संस्कृत के संयुक्ताक्षरों का प्रयोग कम हुआ है। फलस्वरूप उनकी पर- योजना में वैदर्भी रीति की प्रधानता रही है।

गुणों की दृष्टि से भी 'परमानन्द सागर' में माधुर्य गुण ही प्रधान रहा है। गुण को हम किसी भी साहित्याचार्य की कसौटी पर कस कर लें, गुण को हम दण्डी और वासन के शब्द, अर्थ के धर्म रूप में निश्चित करें अथवा आनन्दवर्धन के सिद्धान्त के अनुसार 'गुण' को 'रस' के जातिरूप में स्वीकार करें, दोनों की ही सिद्धान्त कसौटियों पर 'परमानन्द सागर' एक माधुर्य गुण प्रधान काव्य के रूप में देखा जायेगा। आचार्य मम्मट और विश्वनाथ गुणों का स्पष्ट सम्बन्ध वर्णों से मानते हैं। अर्थात् माधुर्य युक्त वर्णों से ही माधुर्य युक्त रचना में माधुर्य गुण का समावेश संभव होता है। इस प्रकार हम परमानन्द सागर की वर्ण योजना को इस वृत्ति के अन्तर्गत ही पाते हैं। उसके अन्दर किञ्चित्

मात्र भी कर्ण कट्ट वर्णों का प्रयोग हूँ निकालना संभव प्रतीत नहीं होता है। 'परमानन्द सागर' में यह माधुर्य सम्बन्धित, व्यंग्यत दोनों ही स्पर्श में प्रतिपाद को कोमल कान्त प्रभावती में देखी की मिलता है। कवि का इस प्रकार का माधुर्य नियोजन पहलू वर्णों के निबोध करने के पश्चात् कोमल वर्णों तथा पैरव वर्णों की आवृत्ति की ओर इसके साथ साथ वर्ण-पैरव, वर्ण संगति स्वर पैरव के संगम के द्वारा संभव हो सका है।

'परमानन्द सागर' के अन्तर्गत हमें शृंगार, कल्याण, शान्त, वादि रसों के प्रयोगों में इस वृत्ति का सौन्दर्य मिलता है।

परमानन्द सागर में माधुर्य गुण, उपमाग-  
रिक्तावृत्ति (वैदर्भी रीति) के कतिपय प्रमुख उदाहरण इस प्रकार हैं :

गोपित के विरह के पद से-

हरि धेरी लोला की सुधि आवै ।  
कपल नैन मन मोहन मूरति के मन मन बिभ बनावै ॥  
कबहुँक निविद्ध तिमिर बासिन्त कबहुँक फि ज्यों गावै ॥  
कबहुँक सँभ्रम 'बवासि' 'बवासि' कहि जंग हितिमिल उठि  
धावै ॥

कबहुँक नैन मंद उर अन्तर मनि पाता पहिरावै ।  
मृदु तुलुका नि केँ अवलोकनि चाल खोली भावै ॥  
रक बार बाहि पितहि पूषा करि एँ कै विहरावै ।  
परमानन्द प्रभु स्वाम व्यान करि ऐसे विरह गवावै ॥ १

कैलाकि माधुर्य गुण के प्रकरण में स्पष्ट किया जा चुका है कि चित का दृष्टि रूप, वास्तव मय स्थिति, जिसमें कि हृदय द्रवित अवस्था तक पहुँच जाये ऐसा वानन्द विशेष माधुर्य गुण कहलाता है। यह गुण शृंगार के संयोग- वियोग, कल्पना, शान्त रसों में होता है।

प्रस्तुत पद रसना में श्रीकृष्ण के वियोग में एक गोपीकी विरह विदग्धता का मार्मिक चित्रण हुआ है। कृष्ण वियोग में अन्तर्करण की द्रवित अवस्था स्पष्ट दिखाई देती है। उसकी मनीषा एक क्षण विनिवृत्त हो गयी है। प्रेमी की प्रवृत्त स्मृति में प्रेयसी की इस प्रकार की कल्पना होजाना स्वाभाविक है। उसके प्रत्येक क्रिया कलाप के फल में प्रेमाग्नि सुलगती दिखाई दे रही है। इसके साथ साथ कबहुँक सबूदों की बावृत्ति भी वर्णन देती भी सक्षित है। क्लृप्तप्रकार पद रसना में वैदलों रीति वचना उपमागणिका वृत्ति तथा माधुर्य गुण का सौन्दर्य निहित है।

माधुर्य गुणसुक्त 'गोपीसु' प्रसंग के उद्धृत उदाहरण

जब नन्दलात नयन भरि पड़े ।

एक टक रही संसार न तन की मोहन मूरति पड़े ॥

०

०

मुभता माल राखति उर ऊपर कितर सखी की रहि लौर ।

परमानन्द निरखि सोभा जब वनिता छारति कृन लौरि ॥९

माधुर्य गुण सुक्त वनिवार -

जब तैं प्रीति ख्याल की कीनी ।

ता दिन ते भरे हन नैननि ते कहू नौद न लीनी ॥

सदा रहति चित्त चाफ च्छूयी हो बीर न श्छु सुहाय ।  
 मन में करत उपाय मिलन हो छै विचारत जाय ॥  
 परमानन्द प्रभु पोर प्रेम को काहु हो नहि करिये ।  
 जैसे व्यथा मुक बालक को बपौतन मन रहिये ॥१९

## १- परमानन्द सागर में प्रसाद गुण की मलावृत्ति ( पाँचाली रीति )

### का विन्यास

साहित्य में हीन में ' प्रसाद ' का अर्थ प्रसन्नता है। यह प्रसन्नता जब हमें किसी रचना के अवलोकन करने से ही उसके अर्थ तक का ज्ञान करा देती है तो वह काव्यशास्त्र के अन्तर्गत प्रसाद गुण के नाम से जानी जाती है। काव्यप्रकाशकार ने प्रसाद गुण के द्वारा चित्र में एक साथ अर्थ के प्रकाश की " " जैसे धूम में अग्नि का प्रकाश तथा खच्छर कपड़े में जल की जगमगाती जामा के समान बताया है। अर्थात् प्रसाद गुण एक साथ चित्र में अर्थ प्रकाश करता हुआ व्यापक रूप से समा-विष्ट हो जाता है। इस प्रकार प्रसाद गुण के अन्तर्गत ' विकासकत्व ' का गुण पाया जाता है। इसी ' विकासकत्व ' की विशेषता अन्तर्गत गुण के कारण अन्य दोनो गुणों की अपेक्षा ' प्रसाद गुण ' का प्रसारण हीन भी अधिक व्यापक है। इस व्यापकता के परिणामस्वरूप प्रसाद गुण का सम्बन्ध भी प्रायः सभी रसों से स्थिर हो जाता है। जबकि बीच बीर माधुर्य गुण केवल वः रसों से ही मूल्य मूल्य सम्बन्धित दृष्टिगत होते हैं। काव्यकार अपनी रचना की अर्थ-स्पष्टता प्रसाद गुण की संयोजना से ही प्रकट करता है। अतः हम कह सकते हैं कि किसी भी महाकवि की कृति प्रसाद गुण की अनुपस्थिति में सफल एवं उत्कृष्ट रचना कहलावे ही संशय

नहीं हो सकती । ' परमानन्द सागर ' इस दृष्टि से निश्चय ही एक सफल और उत्कृष्ट रचना कहने योग्य है, क्योंकि जो- जो हमें उसकी विषय वस्तु में सरलता, सुबोधता परिलक्षित होती है। कवि की भाषा में सर्वत्र ही प्रसाद पूर्ण प्राकृतता की कामना देखने योग्य है। दूसरे शब्दों में हम यह कहें कि परमानन्द सागर में शब्दार्थ सम्बन्धी सरलता और सुबोधता ही महाकाव्य की सर्वोपरि निधि है, जो बलिजयी कित नहीं होगी ।

जहाँ तक ' परमानन्द सागर ' में प्रसाद गुण के प्रयोग विकास का प्रश्न है वहाँ वात्सल्य और सत्य नाम युक्त पदों में प्रसृत रूप से दृष्टिगत होता है। अनुपुत्यात्मक क्रूरणों में भी प्रसाद गुण और कोमलावृत्ति का प्राधान्य रहा है। प्रसाद गुण के अन्तर्गत सत्य, समास रहित शब्द पतावली के रूप में रचना का गुण होता है। प्रसाद गुण की इसप्रकार की ऐसी मधुरावृत्ति की मधुरता और परुणावृत्ति की कटुता से परि तथा भाषाभिव्यक्ता की स्वाभाविकता के सम्मिश्रित रहती है। विषयवस्तु के वर्णन की अकृत्रिमता इस पवित्रासी रीति तथा कोमलावृत्ति का प्रधान गुण माना जाता है। यही कारण है कि ' परमानन्द सागर ' कीकृष्ण के दास और किशोर सीताजी में कोमलावृत्ति तथा प्रसाद गुण का ही प्रकार प्रभाव तरित होता है। सरलता, कोमलता इस रीति के विशिष्ट गुण होने के कारण इस रीति में प्रायः तद्भव शब्दों का प्रयोग प्राकृत्य रहता है। इस गुण, रीति के अन्तर्गत कवि दृष्टि सरल, सुबोध एवं अति प्रचलित व्यावहारिक शब्दों के प्रयोग करने में लगी रहती है।

सरलता तथा शब्द वर्ण-योजना का निर्वाह करना पवित्रासी रीति के विषय शीघ्र के अन्तर्गत माना जाता है। वर्णनात्मक

तथा कुमुद्यात्मक प्रयोगों में भी कोमलावृत्ति, प्रसाद गुण तथा पांचाली रीति का पोषण मिलता है। इन प्रयोगों में विशेष रूप से श्री जन्माष्टमी की बधाई के पद, विनय के पद, बाल लीला तथा किलौर लीला आदि के पदों की उपाहरणमुक्त प्रस्तुत किया जा सकता है।

श्री जन्माष्टमी की बधाई के पद

प्राट भी हरि श्री गोकुल में ।

नाचत गोपी गोप परस्पर वानन्द प्रेम भरे हैं मन में ॥

गृह गृह से गोपी सब निकलीं कनक धार धर हास्य में ।

परमानन्द दास की ठाकुर प्राट नन्द क्रीडा के घर में ॥१॥

उक्त रचना के भवण मात्र से ही उसकी पूर्ण व्यंग्यमय्यक्ति ही जाती है। इस व्यंग्यमय्यक्ति से श्रोता की श्रीकृष्ण के जन्म होने का त्वरित ही ज्ञान ही जाता है। साथ ही तत्सम्बन्धित गोप गोपियों के पारस्परिक वाक्तावपूर्ण क्रिया कलापों का भी सहज ही ज्ञान ही जाता है। इस प्रकार की व्यंग्यमय्यक्ति निःसन्देह प्रसाद गुण की संपोषिका है। रचना की भावामिव्यक्ता का विकास कृत्रिम रूप से कोमल वर्णों विकास के द्वारा होने के कारण पांचाली रीति जैसा कोमलावृत्ति से परिपुष्ट है। पद- रचना की विशेषता हमें कवि द्वारा भगवान् कृष्ण जन्म की उद्घोषणा के रूप में देखने की मिलती है तथा रचना में कहीं भी विद्वष्टता के दर्शन नहीं होते हैं। इसी प्रकार के अन्य पद निम्नोक्त हैं :

१- परमानन्द सागर पृष्ठ ४ पद ६



बास लीला के फर्ी से

श्रीरुत कान्त कनक वागिन ।

विज प्रतिविम्ब विलोकि मिलि धावत फरन की  
परशविन ।

फरन धावत प्रमित हीत तब उलटि लाल बँह हास ॥

परमानन्द प्रभु की यह लीला निरक्त कुमति हैसि  
मुलकावन ॥१

निष्कर्षतः हम कह सकती हैं कि परमानन्द सागर की सम्पूर्ण दीष्टना माधुर्य प्रभाव गुणों तथा तत्सम्बन्धित रीतियों वृत्तियों से परिपूर्ण है उसके विकास-प्रयोग में जीव गुण का उतना हाथ नहीं रहा है। विनय, पवित्र भावनामयी कवि-हृदय के लिए उसकी अपेक्षा भी नहीं थी। परन्तु फिर भी प्रयोगानुसृत बीस्ता पूर्ण कृत्यों के वर्णन में जीव गुण से समाविष्ट रत्नारं 'सागर' में अवश्य ही मिल जाती है। कवि की इन गुणों से आच्छादित रत्नारं कहीं भी विलसित-साध्य कव्या दुर्लभा के धीरे में निबद्ध नहीं दिखाई देती। कवि के चाहे किस प्रयोग की लेकर उसे चाहे वह बाल लीला वर्णन का ही कव्या अभिचार का उत्कृष्ट भाव का ही कव्या विनती माहात्म्य का उसमें वाणी का माधुर्य भक्तकता है।

रत्ना की इस सरलता एवं सुबोधता ने इन फर्ी की कवना माधुर्य का दिया है कि कवि की पधुरिमा एवं माधुर्य गुण सुखत जीव फल सुखत ईश से प्रातःकाल बन्दना के रूप में गायें

जाते हैं। कवि के इस प्रकार के भक्ति भाव व्यक्त विन मानस फटल पर  
 हा जाते हैं और जोता स्वयं स्व ईठ से उनकी प्रसिध्दय नित कर वानन्द  
 सागर में डूब जाता है। माधुर्य गुण के अन्तर्गत कवि का विप्रलम्भ शृंगार  
 युक्त एक पार्थिक एवं भक्तिपूतक पद उदाहरणार्थ प्रस्तुत है :

ब्रज के विरही लोग विगारे ।

विन गोपाल ठी से ठाढ़े बलि दुबल तन हारे ॥

मात यहीदा की निहास निरख सभ्र सेवारे ।

बी कीउ कान्ह कान्ह कहि बोलत बसियत बल

कारे ॥

यह मधुरा काजर की रत्ता बी निकटे सी कारे ।

परमानन्द स्वामी बिनु ऐसे की वेदा बिनु तारे ॥१

### परमानन्द सागर में वक्रोक्ति सम्बन्धी वैशिष्ट्य

परमानन्द सागर में वक्रोक्ति सम्बन्धी

वैशिष्ट्य विवेक से पूर्व 'वक्रोक्ति' काव्य तत्व के अर्थ स्वरूप आदि से  
 परिचित होना आवश्यक है।

### वक्रोक्ति का अर्थ

वक्रोक्ति सिद्धान्त के प्रवर्तक कुन्तक के अनुसार  
 वक्रोक्ति काव्य की जीवित आत्मा है। परन्तु पाखण्डी बालार्थी ने कुन्तक  
 के इस कथन का प्रतिपादन नहीं किया ।

वाचार्थ मानव वक्रोक्ति की वृत्तिशयीक्ति का ही पर्याय मानते हैं और वक्रोक्ति की उत्पत्तिकां का एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक तत्त्व स्वीकार करते हैं। उन्होंने वक्रता की शब्दगत और व्यंग्यगत दोनों रूपों में निश्चित किया है। यही दोनों प्रकार की वक्रतार काव्यार्थ को सम्यक् कर देती है।

वाचार्थ मीरराज ने 'वक्र वचन' की ही काव्य रूप माना है और उन्होंने इसकी तीन रूपों में स्वीकार किया है, वक्रोक्ति, रङ्गोक्ति और स्वभावोक्ति इस प्रकार वक्रोक्ति सिद्धान्त विद्वानों में बहुचर्चित विषय बनारहा। वृत्त में वृत्तक का वक्रोक्ति सम्बन्धी सिद्धान्त और भेदादि की ही महत्व प्रदान किया गया जो निम्न प्रकार है।

स्वरूप  
-----

जो काव्य तत्त्व किसी कथन में अप्रत्यक्ष उत्पन्न कर दे उसी को वक्रोक्ति कहते हैं। इस प्रकार किसी भीवाधार पर वक्रोक्ति एक विशिष्ट रचना है।

भेद  
---

वृत्तक ने वक्रोक्ति के प्रसुक्तः ३ः भेद माने हैं :

- १- वर्ण-विन्यास-वक्रता
- २- फ-पूर्वाद-वक्रता
- ३- फपरार्ध वक्रता

४- वाच्य-वृत्ता

५- प्रकरण वृत्ता

६- प्रान्थ वृत्ता

एव इः के भी कौन-कौनसे निश्चित किये गये हैं।

### १- वर्ण विन्यास वृत्ता

जो वृत्ता वर्णों के विन्यास पर आधारित होती है। उसे वर्ण विन्यास वृत्ता कहते हैं। अनुप्रास और यमक के भेदों को समतुल्यता भी समाविष्ट हो जाती है। यह वृत्ता भी इः प्रकार की होती है।

### २- पद पूर्वार्द्ध वृत्ता

जहाँ प्रतिपादिक तथ्या धातु से सम्बद्ध वृत्ता हो, वह पद पूर्वार्द्ध वृत्ता कहलाती है। इसके ११ भेद माने गये हैं।

१- लङि वैचित्र्य वृत्ता

२- पर्याय वृत्ता

३- उपकार वृत्ता

४- विशेषण वृत्ता

५- ध्वनि वृत्ता

६- प्रत्यय वृत्ता

७- वागम वृत्ता

८- वृत्ति वृत्ता

६- भाव वक्रता

१०- लिंग वक्रता

११- क्रिया वैचित्र्य वक्रता

### ३- फल-पराद वक्रता

फल्यय की विविधता के उत्पन्न वक्रता की फलपराद वक्रता कहते हैं। यह ३ प्रकार की होती है :

१- काल वक्रता

२- कारक वक्रता

३- संख्या वचन वक्रता

४- पुरुष वक्रता

५- उपसर्ग वक्रता

६- प्रत्यय वक्रता

### ४- वाच्य वक्रता

प्रमुक्ताः कर्माधिकारी को वाच्य वक्रता कहते हैं। इसके अन्दर उपमा, उदात्त, उत्प्रेक्षा आदि कर्माधिकारों के उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

### ५- प्रकरण वक्रता

प्रकरण का अन्विष्टावय है। प्रबन्ध काव्य का कोई भी कर्माधिकारी प्रयोग। प्रबन्ध के एक पैर ( पैर ) की वक्रता प्रकरण वक्रता कहो जाती है। यह ६ प्रकार की होती है।

(१) पात्र प्रवृत्ति वक्रता- ( पात्रों द्वारा भावपूर्ण स्थिति की उद्भावना ) जिसमें पात्रों के चरित्र का उत्कर्ष हो ।  
 (२) उत्पाद्य कथा वक्रता । (३) उपकार्योपकार भाव वक्रता- जहाँ प्रासंगिक कथाएँ एक दूसरे का उपकार करती हैं। अन्ततः प्रमुख कार्य का उपकार करें । (४) वाच्य वक्रता - एक ही विषय की बार बार वाच्य होने पर भी नवीनता प्रतीय हो । (५) प्रासंगिक प्रकरण वक्रता - अर्थात् किसी विशिष्ट प्रकरण का पनीहारी वर्णन जैसे कामायानी में लज्जा वर्णन, धाकेत में उर्मिला विरह वर्णन । (६) प्रकरण रस वक्रता अर्थात् रोजक प्रसंगों का वर्णन- जैसे- अल शीड़ा , विप्रलम्भ शृंगार रस का वर्णन, रास शीड़ा । (७) अवान्तर वस्तु वक्रता अथवा उपप्रधान किन्तु सुन्दर प्रसंग की उद्भावना द्वारा कथावस्तु की सिद्धि । (८) नाटकान्तर्गत नाटक वक्रता अथवा गमार्क । (९) मुक्त छंद्यादि विनिवेश वक्रता अथवा विभिन्न प्रकरणों की परस्पर अन्विति ।

#### ६- प्रबन्ध वक्रता

प्रबन्ध वक्रता है तात्पर्य महाकाव्य, सण्डकाव्य नाटक आदि में है। इससे सम्बन्धित कविकीशत प्रबन्ध वक्रता कहलाता है। इसके छः भेद होते हैं।

- १- मूल रस परिवर्तन
- २- प्रकरण विच्छेद पर कथा समाप्ति
- ३- कथा विच्छेद अर्थात् कथा के मध्य में ही किसी अन्य कार्य द्वारा प्रधान कार्य की सिद्धि ।
- ४- नायक द्वारा कीक वाचुर्णगिक कर्तव्यों की प्राप्ति ।

५- प्रधान कथा का पौलक नाम

६- कथा साम्य अथवा एक कथा है सम्बद्ध  
विलक्षण प्रबन्धत्व ।

कृत्तिक के अनुसार उपरोक्त भेदोक्तियों के  
अन्तर्गत काव्य में निहित सभी प्रकार का बाह्य, आन्तरिक सौन्दर्य व्यक्त  
हो जाता है। गुण, रीति, वृत्ति, रस, वर्तकार, ध्वनि, कारक, उपसर्ग,  
प्रत्यय, प्रबन्ध काव्यादि सभी कुछ समाविष्ट हो जाता है। यथा-

(१) वर्ण विन्यास वक्रता - अनुपास, यमक  
आदि शब्दालंकार, उपागणिका, वैदर्भी रीति आदि ।

(२) वाक्य वक्रता - उपमा, रूपक आदि  
वर्णालंकार तथा वर्तकार ध्वनि ।

(३) पर्याय वक्रता - परिकर और उसके  
समान धर्मी वर्तकार ।

(४) उपहार वक्रता- सदाश शब्द सक्ति  
तथा रूपक तथा रूपातिशयोक्ति के समकथा वर्तकार ।

(५) रुढ़ि वैचित्र्य वक्रता - अर्थान्तर-  
लुब्धक वाक्य- ध्वनि और अत्यन्त तिरस्कृत वाक्य- ध्वनि ।

(६) अपभ्रंश वक्रता - ध्वनि के काल,  
कारक, वचन, उपसर्ग, निपात आदि ।

(७) प्रकरण वक्रता- प्रकरणगत ध्वनि ।

(८) प्रबन्ध वक्रता - प्रबन्धगत ध्वनि

(९) वस्तु वक्रता- स्वभावोक्ति वर्तकार अथवा  
कवि शिक्षा के अन्तर्गत वर्ण्य विषय ।

### परमानन्द सागर में वक्रोचित के उदाहरण चित्र

कुन्तक द्वारा प्रतिपादित वक्रोचित सिद्धान्त के वृत्तगत प्रायः सर्वप्रकाश इति फलदायी कथावत वरितार्य होती है। क्योंकि कुन्तक ने वक्रोचित के अनेकों भेदोपभेद निर्धारित किये हैं। जैसा कि अभी पूर्ववत् प्रकरण में उन पर प्रकाश डाला गया है। उनके इन अनेकों भेदों में एक वृत्तकार, शब्द जन्तु गुण आदि बहुत कुछ काव्यांग समाविष्ट हो जाते हैं। इन काव्य तत्त्वों के उदाहरण चित्र हम इन्हीं एक, वृत्तकार, शब्द जन्तु, रीति, गुण आदि के प्रकरणाँ में परमानन्द सागर से उद्धृत कर चुके हैं। वतः यह काव्यांग जिन वक्रोचितयों में वृत्तभूत हो जाते हैं, उनकी कहीं दोहराना आवश्यक नहीं होगी। यहाँ हम परमानन्द सागर के इन्हीं उदाहरणाँ की तत्त्वान्वित वक्रोचितयों के वृत्तगत प्रस्तुत करना चाहेंगे जिनका कि हम अभी तक अपनी पूर्ववत् प्रकरणाँ में विवेकन नहीं कर चुके हैं। सर्वप्रथम पदपराङ्ग वक्रता के वृत्तगत उसके एक भेद प्रत्यय वक्रता का उदाहरण परमानन्द सागर से उद्धृत है।

#### प्रत्यय वक्रता

कुन्दर वाउ नन्द वृ के वृत्त पगनिर्या ।

कटि पर वाउवन्द वृत्ति मनीनी भीतर फलस्त तनिर्या ।

वास गोपाल वाहिने मेरी लोहत चरन पगनिर्या ।

परमानन्द वास के प्रसू की यह वृत्ति कहत न पनिर्या ॥१

प्रस्तुत रचना में ' पगनिर्या ' में वा ' पग-  
निर्या ' में भी वा प्रत्यय होने के कारण प्रत्यय वक्रता का सौन्दर्य द्रष्टव्य है।



### प्रत्यय वञ्चता का एक अन्य उदाहरण

बदरिया तू किं ब्रज पै दौरी ।

बसल०तु०कि०ब्रज०दे०दौरी०॥

बसल बाल सलमान लागी विघ्ना सित्यौ बिहौहरी।

रही जु रही जाहु घर बपी हस पावत है किहौरी ।

परमानन्द प्रभु सौ बयौ जीवै जाकी बिहुरी जोरी ।१

०

०

०

पतियाँ वाचैहु न आवैं ।

देखत जैक नैन जल प्रे के गद्गद प्रेम जावै ।

०

०

मन प्रेम बलन प्रेम पद वैकुण्ठ परमानन्द मन मान्यौ ॥ २

उपरोक्त पदों के प्रथम शब्दों 'बदरिया'

में 'या' तथा पतिया में भी या प्रत्यय के कारण प्रत्यय वञ्चता लक्षित है।

### वाच्य वञ्चता के उदाहरण

वाच्य वञ्चता, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षादि

वर्णकारों की प्रतिच्छाया में मिलती है।

जान मैं जिय रही ज्यों वामिनी ।

नंद कुँवर के पाँखे ठाढ़ी सोलत राधा वामिनी ॥

१- परमानन्द सागर पद ५३८

२- .. पद ५३६

बाल दत्ता वपौ रंग लेख सख सुहावै जागिनी ।

परमानन्द स्वामी रस भीने प्रेम मुदित गब जागिनी ॥१॥

स्पष्ट है कि सुन्दर बवनी विपुल सुदृढ वर्ण वाली, जो कृष्ण की प्रकृति  
 'राधा' बादलों के समान वर्ण वाली श्रीकृष्ण के पार्श्व पक्ष में इस प्रकार  
 दिखी हुई है जैसे बादलों में विपुल दिखी रहती है। उपमा, और रूप के  
 परिशिष्ट में पद- रचना में वाक्य-वृत्ता का समुज्ज्वल रूप दर्शनीय है ।

इसीली भाँव तेरी सातगिरिधर मानौ चढ़ी कमान ।

देख रूप ठगौरी लागी लीचन मनसिब जान ।

० ०

परमानन्द स्वामी रति पति नायक पैटत ही बभियान ॥२॥

उत्प्रेक्षा वर्तकार की पृष्ठभूमि में पद की प्राम  
 पंक्ति में श्रीकृष्ण की सुन्दर प्रकृतियों रचना में चढ़ी हुई कमान की कल्पना  
 की है। कवि ने प्रकृतियों के लिए कितनी सुन्दर उत्प्रेक्षा का संज्ञा किया है।  
 इस उत्प्रेक्षा से पद-वाक्य रचना में वाक्य-वृत्ता का जायोजन संभव हो सका  
 है।

इसी प्रकार परमानन्द सागर में उपमा उत्प्रेक्षा  
 रूपादि के अन्तर्गत वाक्य वृत्ता के अनेकों चित्र भी पड़े हैं। जब हम प्रकरण  
 वृत्ता से कतिपय प्रमुख उदाहरणों की प्रतिवक्षाया में वपौ कवि की रचना  
 कौशल का दिग्दर्शन करने का प्रयास करेंगे ।

### प्रकरण वृत्ता

जैसाकि प्रकरण वृत्ता के विषय में वर्णन किया

१- परमानन्द सागर पद ७४७

२- .. पद ७४८

जा चुका है कि प्रकरण कछुता ६ प्रकार की होती है। कतः हम "सागर" में जिनका कि निर्धार वयसा वायीज मिलता है उन्हीं के कतिपय विष उदाहरणमुखी प्रस्तुत करते हैं।

#### उपकार्योक्ति का भाव-वक्रता

देसी नौपाल धु की लीला ठाटी ।

धुर प्रजापिक कबख पूर्व है जमुपति हाथ लिये लु बाटी ॥

ये सब ग्वाले प्रकट कहत है स्याम मनीहर लार्ह माटी ।

कवन उधारि नीतर देखी जिनुवत रूप वैराही ॥ १

प्रस्तुत रचना कई प्रारंभिक कथाओं का सफल संग्रह है, जिसमें कवि का मुख्य उद्देश्य प्रीकृष्ण की विराट् लीला प्रदर्शन करना है। कतः मूल कथा प्रीकृष्ण की विराट् लीला है। लु कता की सिद्धि के लिए कवि ने बालकृष्ण द्वारा "पृथिका का पक्षण" की कथा, धुर प्रजापिक द्वारा कबख करने की कथा, ग्वाले बालों का वायीज बादि कई प्रसंगों का संयोजन मूल कथा की सिद्धि के लिए किया है। यह सभी प्रसंग अन्योन्य रूप से एक साथ लु प्रकार गुम्फित किये हैं जिनसे मूल कथा की पूर्णतः सिद्धि हो जाती है। कतः उपकार्योक्ति का भाव वक्रता है।

#### एक अन्य उदाहरण

बाकों गुम कीकार कियो ।

तिन के कोटि विष्ण हरि टारे कमदान भगतन दियो।

बहु समदान दियो प्रकलादे सबही निरंक जियो ।

निकले लै फारै नरहरि बाहुन राति लियो ।

हुवाँला जैरीण सतायी ली पुनि सत गयी ।  
 परतिम्या राखी मन पीछन पुनि उनही पे पठयी ।  
 मृतक भये हरि लखे खिवाये दृष्टि हू बभूत पियी ।  
 परमानन्द भक्त वस के सब उपमा कौन बियी ॥ १

प्रस्तुत पद में कवि की मूल दृष्टि भगवान् श्रीकृष्ण के भक्त वत्सल रूप का चित्रण की वीर रही है। भगवान् श्रीकृष्ण के इस गुण के प्रदर्शन हेतु कवि ने प्रह्लाद, जम्बरीण, हुवाँला आदि कथा प्रसंगों का समन्वित आश्रय किया है। यह सभी प्रसंग मिलकर श्रीकृष्ण के इस पुनीत महान् गुण का प्रतिपादन करते हैं। अतः उपकार्योकारु भाव ब्रह्मा है।

परमानन्द सागर में उपकार्योकारु भाव यह चित्रणों की कोई कमी नहीं है।

भाव प्रसूति- ब्रह्मा के उदाहरण

मेधा मोहि ऐसी बुतलिन भावै ।  
 जैसी यह काहु कि छिठौनियाँ लनक लुनक घर आवै ।  
 कर फलान लखत लखौं बपौकर लै मोहि बिसावै ।  
 कर बँत पट बोट बाबा की ठाढ़ी स्वार हुरावै ।

०

०

परमानन्द प्रभु की बातें सुन जानन्द उर न समावै ॥ २

प्रस्तुत पद रत्ना राधा, कृष्ण के प्रेम एवं प्रसाद प्रणय का परिचय प्रस्तुत करती है। रत्ना के अन्तर्गत प्रमुख पात्र बाल

श्रीकृष्ण प्रथम बार ही 'राधा' की देकर अपनी माता यशोदा से अपनी प्रणय वसिताभा की सुन्दर ढंग से व्यक्त करते हुए उचित होती है। रचना में कवि ने श्रीकृष्ण की प्रवृत्ति के अनुसार चित्रण करने में कमाव कर दिया है। कवि ने बालक की जिज्ञासा एवं अभिरुचि का बाल मनोवृत्ति के अनुसार ही किया है। इसी व्यंश में कवि पाव-प्रवृत्ति-वृत्ता के चित्रण में सफल प्रतीत होता है। कवि उस प्रकार की रचना में पूर्ण मनोवैज्ञानिक बन बैठा है।

इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण यह

प्रकार है :

जाऊंगी वृन्दावन मेंटोमी गोपाल ।

देखौंगी नैन भरि त्याग समाते ॥

कालिंदी तट चारत धनु ।

संग सखा बजावत मृदु वेनु ॥

०            ०

परमानन्द म्रु विभुवन पाल ।

सीता सागर गिरधर साह ॥ ९

श्रीकृष्ण की राधा के प्रति जो विलस्य प्रणय प्रवृत्ति है और उसकी कवि ने जिस सुन्दरतम ढंग से संजीया है वह प्रणय भावना राधा की कृष्ण के प्रति भी किंचित्मात्र कम नहीं है। राधा की इसी प्रकार की प्रणय प्रवृत्ति का ज्वलन्त उदाहरण कवि ने हमारे सामने प्रस्तुत किया है। कवि ने कृष्ण की प्रणय-भावना की जिस नाटकीय

दंग से प्रस्तुत किया है उसी प्रकार राधा की प्रेममयी भावना को भी ऐसी ही नाटकीय दंग से प्रस्तुत किया है। इस प्रकार राधा की कृष्ण से मिलने की प्रवृत्ति को उसके मनोमुक्त चित्रण किया है। कतः रचना में पाद-प्रवृत्ति वक्रता का सफल निर्वाह मिलता है।

### प्रकरण सप्त-वक्रता

प्रकरण सप्त वक्रता में जल-श्रीहा, रास, श्रीहा, विप्रलम्भ रूंगार सप्त सम्बन्धों का विप्रर्ण का चित्रण किया जाता है। परमानन्द सागर में इस प्रकार के चित्र 'स्नान यात्रा के पद' नाव के पद' मल्हार के पद' विरह के पदों में विपुल मात्रा में देखी जा सकती हैं। इन चित्रों में कवि राधा, कृष्ण, गोप, गोपियों की पारस्परिक क्रिया कलापों के बड़े ही सरल, सजीव एवं भाव भरी चित्र देखीये हैं। इनमें से कतिपय प्रसुत रचनाओं का स्वरूप निम्नीयत है।

स्नान यात्रा के पदों में

कल गोपाल जमुना जल श्रीहा ।

धुर नर कुर धर्मि भये देखत विरह गर्ह तन मन जिय पीडा ।

०

०

निराला सरल कलाकृति सौभा बरक्त स्वर्ति द्वंद जल पीती ।

परमानन्द वसन मन गोपी मस्तक मनि गोविंद मुख जीती ॥ १

लास की शिखर है ब्रज बाला

जमुना जल उदलता बहू दिवसैं संसत हंसवत गवाल ॥

बाँह जोरी फिरत परसपर पीत रूप मनि मात ।  
परमानन्द प्रभु तुम निखीवी नंद गोप के तात ॥ १

उपसृत दोनों पत्नी की रत्नाओं में श्रीकृष्ण गोप, गोपियों के पारस्परिक हास-विलास करते हुए कल झीड़ा के चित्र प्रस्तुत किये हैं। इस प्रकार दोनों रत्नाओं के प्रकरण में संपूर्ण व्यंजना हास्य के कारण प्रकरण इस प्रकार है।

नाव के पत्नी से

बैठे धन श्याम सुन्दर खेत से नाव ।  
जाज सती मोहन संग स्नान की दाव ॥  
बसुना गभीर नीर बलि तरंग लोल ।  
गोपि प्रतिकूल लागे मोठे प्रभु बोल ।  
पथिक हम क्षीर तुम लोचिर उतराई ।  
बोच धार माँझ रोकि मित्र ही मित्र हुताई ॥  
हरष ही श्याम सुन्दर राक्षिष पद पास ।  
याहि मित्र मिल्यो चाहि परमानन्द दास ॥ १

नाव के माध्यम से कवि ने राधा, गोपियों के कृष्ण मिलन के चित्र को अत्यन्त सजीव रूप दिया है। गोपियों स्वयं पथिक बनकर कृष्ण की स्नानहार रूप में उतराई देने की बात कह रही हैं। उधर कृष्ण उस नाव को बीच पल्लधार में घुसा, घुसा कर पत्नी विलास कर रहे हैं। इस प्रकार बीच धार में नाव से की देखकर गोपियाँ अपना डर प्रकट करती हैं जो कि स्त्री की कोमल भावनाओं का प्रतीक है। इस प्रकार

पूर्ण रचना में मनोहारी रस व्यंजना का स्वरूप दर्शनीय है। रस विलास का सबसे अधिक उत्कृष्ट विधान और क्या हो सकता है, यह विनारणीय तथ्य है। इस प्रकार पद में प्रकरण रस-वक्रता का सौन्दर्य स्पष्ट है। इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण :

जमुना जल खेत हैं हरि नाथ ।

केव जलो वृणमान नन्दिनी सब स्नान की दाव ॥

०

०

सुन के बचन राक्षिा दीरी जारि कंठ लफटाती ।

परमानन्द प्रभु इवि अवलोकित विष्णुभी हरिता पानी ॥१

प्रस्तुत पद का वर्णन उक्त पद की भाँति है

कतः इसमें भी प्रकरण रस वक्रता का भाव सुललित हुआ है।

मल्हार के पदों में -

हरि कस गावत जलो ब्रज हुंदरि नदी जमुना के तीर ।

लौचन लोल बाँह जोटीकर प्रवनन फलकत वीर ॥

०

०

तब ते चोर हरि नन्द नन्दन बड़े कदम्ब की छाँह ।

परमानन्द प्रभु वर के व की उपम कियी है मुरारि ॥२

हरि के यकसी गीत मल्हार गायोहुँ गोपियाँ  
जमुना तट परजा रही हैं। स्नान करने के लिए गोपियाँ जमुना में प्रविष्ट करती

१- परमानन्द छागर पद ७४१

२-                    पद ८००



हैं। उधर कृष्ण उनके चौर हरण कर कदम्ब पर चढ़ जाते हैं। इस प्रकार के प्रेम-व्यापार के प्रकरण में प्रकरण एक वक्रता के ही दर्शन होते हैं।

इसी प्रकार एक चौर पद -

देखी ब्रज नाथ हमारी बानी ।  
नातस रंग विरंग होयगी कई विरियाहिम मानी ।  
ब्रज के लोगकहा कहिं देख परस्पर नागी ।  
सरे चतुर हरि ही कन्धरगत रैन परी कब बागी ॥  
उक्त मूल कवन के लागे बीच खनन की धामी ।  
परमानन्द प्रभु दीबिर काहेन प्रेम भुंगि पागो ॥ १

प्रस्तुत पद में गोपियाँ कृष्ण से अपनी वस्त्रादि प्राप्त करने की प्रार्थना की कितने सुन्दर एवं मार्मिक लयों में व्यञ्जित कर रही हैं। रज्जो रचना के पारंगत कवि ने इस रचना में ऐसा वर्णन प्रस्तुत कर दिया है। मानों स्वयं उस स्थल पर कवि अपनी जानों से उस प्रेम बन्धु दृश्य की देख रहा हो। वर्णन की सरसता, सजीवता ने रचना में वैशिष्ट्य उत्पन्न कर दिया है। पद में इसी सरसपूर्ण व्यञ्जना के प्रकरण एक वक्रता की बहिर्व्यक्ति की है।

सारङ्गितः परमानन्द रागर में प्रकीर्तित  
वैशिष्ट्य उत्पन्न मनोहारो ढंग से व्यञ्जित हुआ है। इस प्रकीर्तित वैशिष्ट्य में वर्णन की सरसता, सजीवता एवं मार्मिकता की मृदुल तथा वस्तुमयी वृष्टि हुई है। कवि ने गोप-गोपियों एवं राधा-कृष्ण की युगत लीलाओं

के भाव भीने चित्र वर्णित किये हैं। इन वर्णनों में प्रेम की पीठी कसक हृदय की भावुकता, वाणी के हास-विलास के साक्षात् दर्शन होते हैं। इन वक्रोक्ति पूर्ण चित्रों में कवि ने प्रारंभिक कथाओं से लेकर प्रेम-विलास के नए नए चित्र वर्णित किये हैं। प्रारंभिक कथाओं में वर्णन में कवि के पौराणिक ज्ञान का परिचय मिलता है। वक्रोक्ति के वर्णन में कवि ने अपनी कल्पना के सुष्ठु एवं प्रोज्ज्वल रूप से जो चित्र प्रस्तुत किये हैं। उनमें साहित्यिकता का समावेश मिलता है। यद्यपि इन वर्णनों में कवि की सत्य दृष्टि इस ओर नहीं रही है। कहने का वास्तव यह है कि कवि की रचना केवल गीत गीतियाँ बल्कि राधा कृष्ण की लीलाओं की अपने पूर्ववत् बल्कि समकाल कवियों के कथन की पुनरावृत्ति मात्र ही नहीं है, बल्कि उनकी रचना की वात्सा में साहित्यिक तत्वों का समावेश है, वर्णन में सरलता सुमधुरता है तथा संपूर्ण ब्रह्म जीवन की उत्कृष्ट भाँकी है।

### अष्टम अध्याय

#### कल्पना : शास्त्रीय विवेचन

परमानन्द सागर में कल्पना विवेचन

प्रतीक शास्त्रीय विवेचन

परमानन्द सागर में प्रतीक योजना

दोष शास्त्रीय विवेचन

परमानन्द सागर में दोषों की अवस्थिति

सौन्दर्य : शास्त्रीय विवेचन

परमानन्द सागर में सौन्दर्य विवर्णन

बिम्ब शास्त्रीय विवेचन

परमानन्द सागर में बिम्ब विधान

परमानन्द सागर में वाचनात्मकता

परमानन्द सागर में दार्शनिकता

### कल्पना : शास्त्रीय विवेचन

#### कल्पना का अर्थ

भारतीय काव्यशास्त्र में प्रतिभा को कवि-कर्म का प्रेरक माना गया है तथा प्रज्ञा को ही प्रतिभा कहा गया है।

भारतीय काव्यशास्त्र में कल्पना की प्रतिभा के ही सम्पूर्ण स्थान दिया है। इस प्रकार कल्पना वह शक्ति है जिससे कवि नवीन सूत्र तथा नवीन रूप व्यापार विधान की समता प्राप्त करता है। कैरिह-<sup>१</sup>युग में लीगियस कल्पना की विम्बों की प्रेरणा शक्ति स्वीकार करते हैं। प्रसूत वे विम्ब की कल्पना उचित मानते हैं। वेब्सटर ने भी कल्पना को चित्र-विधायिनी शक्ति के रूप में स्वीकार किया है।

कल्पना के विषय में डा० कुमार विमल का कथन इस प्रकार है, "एक अर्थ में कल्पना वस्तु सम्मिकर्ष के सामान्य प्रभावों को सुरक्षित रखती है, और दूसरे अर्थ में कल्पना वस्तु सम्मिकर्ष के मानसिक प्रभावों से निम्ति विम्बों को संश्लेषित कर उन्हें सशुद्ध प्रकार के संयोजन प्रदान करती है। इस दूसरे अर्थ की कल्पना ही कलावैशेष्य होती है।"

१- काव्य में उदात्त उत्पत्ति, अनुवादक डा० नगेन्द्र पृ० १६

२- वेब्सटर, न्यू वर्ल्ड डिक्शनरी ऑफ द कैरिहन लैंग्वेज कालेज,  
संशोधन पृ० ७२५

३- सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्व पृ० १०६

### कल्पना के कार्य

साहित्यिक दृष्टि से कल्पना के तीन कार्य स्वीकार किये गये हैं :

- १- परोक्ष वस्तुओं के बिम्बों का मानसिक पुनरा-  
वृत्तन
- २- बिम्बों का पुनः प्रत्यक्ष
- ३- बिम्बों के संकीर्ण से कला दृष्टि में योगदान

प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि कातरिज काव्य कृष्ण से कल्पना का महत्त्व स्वीकार करते हुए उसके इः कार्य मानते हैं :

- १- स्वयं विधान
- २- सारसंक्षेप
- ३- कव्याहरण
- ४- संस्मरण
- ५- संग्रहण
- ६- संगठन

जब कल्पना विभिन्न तत्त्वों में एकता स्थापित करती है तो उसकी इस प्रक्रिया को स्वयं विधान कहते हैं। जब वह वाच-  
स्पृक्षानुसार अन्य तत्त्वों से जोड़ तोड़ का सम्बन्ध स्थापित करती है तो  
उसकी इस क्रिया को कव्याहरण कहते हैं। स्मृति के आधार पर विगत  
कुसुमों पर बाधित बिम्बों की दृष्टि कला संस्मरण कल्पना का विषय  
होता है। विभिन्न वस्तुओं के विभिन्न उपादानों का संग्रहण कल्पना का  
उत्प्रेक्षकत्व है।

## कल्पना के भेद

कालरिज कल्पना के दो भाग मानते हैं :

१- प्राथमिक

२- गौण

गौण कल्पना को विधायिका तथा सुवनात्मक कल्पना भी कहते हैं। यही कल्पना काव्य का निर्माण करने में सहयोग देती है। प्राथमिक कल्पना को प्रत्यक्ष ज्ञान का मूल माना जाता है। द्वितीय कल्पना को कालरिज चेतन कहना मानते हैं और मनुष्य की सर्वांगीण शक्ति स्वीकार करते हैं, जो उसे छिपाती बनाती है। कालरिज कल्पना (इमेजी-नेशन) तथा विकल्पना (फैन्सी) में भेद मानते हैं। विकल्पना में संभावना की प्रधानता रहती है।

बार्डो २० रिचर्ड्स ने भी कालरिज के अनुसार कल्पना के पाँच वर्गों का उल्लेख किया है :

१- नीचर प्रत्यक्ष सम्बन्धित प्राणमय चिन्तन-विधान

२- वर्तकृत भाषा का प्रयोग

३- सहानुभूतिपूर्वक दूसरों की चिन्तन का प्रस्तुतीकरण जो विशेषतः उनके भावों की अभिव्यक्ति करता हो।

४- सामान्यतः अस्पष्ट भावों की सहयोजना

५- वैज्ञानिक रीति से उदाहरणों का स्मरण। ये कल्पनाएँ का निश्चित प्रणाली में निबन्धन भी कहा जा सकता

१  
६।

निष्कर्षतः कल्पना वह शक्ति है जो एक ओर दुरत्य तत्वों में स्वयं सम्पादन करती है, दूसरी ओर प्रत्यक्ष के सामान्य अनुभवों को नवीन सुणमा से संवीकर काव्य का विषय तैयार करती है। औद्यो के कवि कीट्स कल्पना को प्रकाशन तथा निर्माण दोनों में ही सहज मानते हुए कहते हैं, " कल्पना वनिवायतः यथार्थ से सम्पृक्त रहती है।<sup>१</sup> कल्पना के माध्यम से कवि अपनी रचना को उत्कृष्ट बनाने के लिए विम्ब, प्रतीक तथा उपमानों का प्रयोग करता है।

#### परमानन्द सागर में कल्पना विवेचन

परमानन्द सागर के अन्तर्गत हमें कवि की उत्कृष्ट कल्पना के बिना कौनों रसों में अन्तर्भूत होती दीत पड़ते हैं। यद्यपि कवि के रचना सम्बन्धी वैशिष्ट्य में हमें उसके कवि- व्यक्तित्व में कौनों गुण विलार देते हैं जिनके कारण कवि कृष्ण मय कवियों की श्रेष्ठता में कमर त्यागि प्राप्त करने को साम्ता रहता है। इन्हीं गुणों का विवेचन करते हुए अपने लोप प्रबन्ध ' कविवर परमानन्द दास और उनका साहित्य ' में प्रो० गोवर्धन नाथ हुक्ल ने इस प्रकार लिखा है,

" लोप में वे ' निर्गुण प्रीति ' के अमर गायक , भाव- सौन्द के बलित्व कवि हैं। उनका सूक्ष्म निरीक्षण, भाव प्रणता, कल्पना , अनुभूति, संगीतात्मकता तथा भाषा की सजीवता

१- प्रिन्सीपल्स ऑफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म पृ० २३६-२४३

२- सी०एम० वाउरा, रोमान्टिक इमेजीनेशनस, पृ० १५

मधुरता, सरलता, सुबोधता एवं सात्विकता सभी कुछ हिन्दी साहित्य की अपर सम्पत्ति है।

उक्त कथा से उनकी रचना के अन्तर्गत पाये जाने वाली विशिष्टता का परिचय मिलता है। परमानन्ददास की उक्त विशेषताओं में से अधिकांश विशेषता का अध्ययन हम अपनी ओष्ठ विषय प्रकरणों में कर चुके हैं और इन विशेषताओं का सत्यापन लौदाहरण प्रस्तुत किया जा चुका है। प्रस्तुत प्रकरण में हमें उनकी पद रचनाओं में कल्पना-तत्त्व का अध्ययन करना है। "परमानन्द दास" में कवि की उत्प्रेष्ट-कल्पना-तत्त्व के सुललित स्वर इस प्रकार हैं :

फांग उड़ाये के फाँ से

गुड़ी उड़ावन लागे बात ।

सुन्दर फांग बाँधि मनमोहन नाचत है मोहन के ताल ॥

कोऊ पकत कोऊ ऊँचन कोऊ बैस्त मैन बिताल ।

कोऊ नाचत कोऊ करत झुलाहत कोऊ बजावत सरी

करताल ॥ १

प्रस्तुत पद में कवि की कल्पना का साकार रूप दिखायी देता है। कवि ने अपनी कल्पना से ग्वाल वाली सक्ति मनमोहन के सुन्दर फांग उड़ाने का सबीब दृश्य उपस्थित कर दिया है। बाल सहाजो सहित बाल कृष्ण की स्त प्रवृत्ति का कवि की कल्पना में जो विकास मिलता है, उसने कवि को एक बाल मनोविज्ञान वैज्ञान का रूप दे दिया है। कवि के



इस प्रकार के चित्रण में कहीं भी कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते हैं। कवि की इस प्रकार की कल्पना के चित्रों में कवि किंचित् मात्र भी प्रकृत प्रभुत दिखायी नहीं देता है। कवि कलुषा पूर्ण चित्रों में कवि की कल्पना का सजीव रूप ब देखने को मिलता है। इस प्रकार कैकाल्यनिक एवं सजीव सीता वर्णनों की परमानन्दसागर में कमी नहीं है। कवि ने अपनी दृष्टिदेव की बाल और किशोरा-वस्था के ऐसे अनेक चित्र प्रस्तुत किये जिनमें कवि की कल्पना का उत्कर्ष दिखायी देता है।

शोकृष्ण की बाल- जीवन की कान्की का एक  
ऐसा ही उदाहरण द्रष्टव्य है :

हाल की भाँवे गुह नहि बरु धर ।

बीर भाँवे याँवे सँद क्वरिखा लाबी ब्या बन धर ॥

०

०

परमानन्द दास की ठाकुर पिल्ला लायी धर ॥ १

प्रस्तुत पद में कवि की कल्पना की महानता इस तथ्य में देखने को मिलती है कि कवि की कल्पना ब्रज जीवन के छोटे से छोटे अंशों को भी स्पर्श करने में नहीं झुकती । कवि की कल्पना ने बालक कृष्ण की खान- धान की ग्रामोण चीखों के प्रति अभिरुचि तथा पिल्ला के लेनि तक की बात प्रवृत्ति का निःसंकोच वर्णन किया है।

कवि ने अपनी चित्रण में अपनी कल्पना का ऐसा रूप प्रस्तुत किया है जिससे कवि की व्यंग्यवादी विचारधारा का कवि कहा जा सकता है।

कवि की कल्पना का पारस्परिक सौन्दर्य हमें उनकी उपमाओं, रूपों तथा उत्प्रेक्षाओं के अन्तर्गत दिखाई देता है। इन कल्पनाओं के प्रयोग में कल्पना का जो उन्नत रूप विकास देखने को मिलता है उसमें कविकी रसानुप्राति भी अत्यन्त सहज एवं नार्थिक दिखायी देती है। इसी प्रकार की सरसपूर्ण कल्पना का उदाहरण द्रष्टव्य है :

देखी माँह भीजत रस भरे दीऊ ।  
 नंद नंदन वृषभान नंदनी छोड़ परी है जोऊ ॥  
 धृंग धूनरी स्यामा ब्रू की भीजत है रस भारी ।  
 गिरधर पाग उपला भीज्यी या ब्रवि ऊपर वारी ।  
 बात ही बात छोड़ भयो भारी तलित्तादिक समुत्तारी ।  
 दीऊ मिलि भगस्त मानत नाही सखी सब बूंद क्यारै ।  
 तब मोहन सिस्तार हँसी सकत ब्रज नारी ।  
 परमानन्द प्रभु यह विधि छोड़त या सुख की बलिहारी ॥१॥

#### राधा कृष्ण और गोपियों की पारस्परिक

छोड़ा जवना मनोविनीत के उपक्रम की लेकर कवि ने अपनी सुजातम्भ कल्पना से केशव सरस एवं मनमोहक दृश्य प्रस्तुत किया है। कवि ने प्रथम वर्णित में वर्णित ' रस भरे दीऊ ' सब्दों से ही अपनी कल्पना शक्ति का सुन्दर एवं आकर्षक रूप प्रस्तुत कर दिया है। राधा के दोनों उरीयों को ' रस-भरे-दीऊ ' सब्दों के द्वारा तथा राधा और कृष्ण दोनों को ' रस ' कथात् जल ' भरे ' कथात् पूर्ण वर्णों के द्वारा कवि ने दोनों को जल में भोगने की भी सुन्दर कल्पना की है।

इस प्रकार कवि की कल्पना ने राधा-कृष्ण की युगत लीलाओं के अनेकों दृश्यरूपों को प्रस्तुत किए हैं।

गोपियों की कल्पना का चित्र कवि ने अपनी  
सुन्दर कल्पना के रंग से कैसा ज्वरीकृत कर दिया है। उदाहरण द्रष्टव्य है -

पुन्दावन क्यों न मये हम मोर ।  
करत निवास नीवधम ऊपर निरक्त नंद किशोर ॥  
क्यों न मये बँसी कूल सजनी जधर दीवत धन मोर ।  
क्यों न मये गुजावन बेली रक्त स्यामजू की वीर ।  
क्यों नये मकराकृत कूलत स्याम प्रियन भफफकीर ।  
‘परमानन्द दास’ की ठाकुर गोपि के चितवीर ॥ १

गोपियों की इच्छा कल्पना और प्रेम तत्त्व के  
सम्बन्धित रूप का हृदय-क्षेपण वर्णन और क्या हो सकता है। जैसा कि ‘परमानन्द  
सागर’ की उक्त रचना में वर्णित है।

‘परमानन्द सागर’ में राधा और कृष्ण के  
बाल, किशोर लीला से सम्बन्धित तथा संयोग और वियोग के ऐसे वीर उदा-  
हरण मिल जाते हैं जिनमें कवि की उत्कृष्ट कल्पना विधान के दर्शन होते हैं।  
गोपी भाव के चित्तों में भी कवि की कल्पना साकार हो उठी है। कवि की  
सुन्दर कल्पना का विकास सर्वाधिक रूप से ‘बाल लीला’ वर्णन में अधिक  
देखी जा सकती है। ‘परमानन्द दास’ की कल्पना ने बाल लीला वर्णन  
में बाल कृष्ण के क्रिया कलापों की वीरों प्रकार से अभिव्यक्ति की है। यथा-

बरी हन मोर की भाँति देख नाचत गोपाला । २

१- परमानन्द सागर पद ७६६

२- .. पद ७६८

किसी भी कवि की रचना में उसकी कल्पना की विशेष भूमिका होती है। कवि का ज्ञान्तरिक व्यक्तित्व जयवा उसकी प्रतिमा जितनी उत्कृष्ट होगी कल्पना भी उसकी उतनी ही महान् होगी। 'परमानन्द सागर' में कवि की इस महान् और बलवती कल्पना के पद-पद दर्शन होते हैं। रचना में इस प्रभावपूर्ण कल्पना के कारण कवि की कल्पना का धनी ही कहा जायेगा। 'सागर' में कवि ने जिस बहुरंगी कल्पना का सुन्दर प्रासाद सजा दिया है उसमें कृष्ण विषयक विविध लीला सभी जीव गुलदस्ती लंबीये हैं। जिनसे कवि का काव्य सभी प्रासाद सौन्दर्यमय ही उठा है। कवि की रचना में उसकी कल्पना की महानता हमें उसकी वास्तविक जयवा स्वाभाविक पृष्ठभूमि में दिखाई देती है।

जहाँ तक कल्पना के उद्देश्य के बारे में बात है रचना विशेष में कवि की विशिष्ट प्रतिमा उसकी रचना के सौष्ठव में उद्देश्यही होती है। उसकी काव्य मर्यादा उसकी काव्य प्रतिमा से निश्चित होती है। कवि को इस काव्य-संरचना में, काव्य प्रतिमा के अन्तर्गत उसकी विधाविका कल्पना का विशेष उद्देश्य होता है। गीण रूप में कवि की परिस्थितियाँ मान्यकारी भी उसकी रचनाओं में उद्देश्यही होती है। परम्परागत मान्यकारी और परिस्थितियाँ का भी प्रभाव हमें कवि की रचनाओं के अन्तर्गत दिखायी देता है। परन्तु काव्य-संयोजना में प्रमुख रूप से कवि जयवा रचनाकार तथा गीण रूप से अन्य परिस्थितियाँ उद्देश्यही होती है। 'परमानन्द सागर' में कवि का यह प्रमुख उद्देश्यही स्वल्प उसकी सुललित सजीव, मार्मिक, गमुर कल्पनाओं के रूप में दृष्टिगत होता है। कवि अपनी रचना में 'कल्पना तत्व' के उद्देश्य के निर्वहण करने में पूर्णतः सक्षम दिखायी देता है। परन्तु कवि की इस क्षमता में कल्पना तत्व गीण तथा अनुमति तत्व प्रधान रहा है।

## प्रतीक : शास्त्रीय विवेचन

### प्रतीक-योजना का स्वरूप

साधारणतः प्रतीक शब्द का प्रयोग कौन सी चीजों में किया जाता है। साहित्य के अन्तर्गत 'प्रतीक' शब्द का प्रयोग विशेष अर्थ का परिचायक होता है। साहित्यिक प्रतीक के विषय में विद्वज्जनों ने निम्नलिखित विचारधाराएँ प्रस्तुत की हैं :

डा० मणिन्द्र " प्रतीक एक प्रकार के वह उपमान का ही दूसरा नाम है, जब उपमान स्वतन्त्र न रहकर पदार्थ विशेष में रूढ़ हो जाता है तो वह प्रतीक बन जाता है। "

डा० कुमार विमल " जब एक ही शब्द या अप्रस्तुत किसी सम्पूर्ण अर्थ सम्बन्ध की व्यंजित करने की शक्ति वर्जित कर देता है, तब वह प्रतीक बन जाता है। "

वेब्सटर के अनुसार, " प्रतीक, सम्बन्ध वाचक परंपरा अथवा संयोग के आधार पर किसी अर्थ का संकेत करता है, सादृश्य उसके मूल में नहीं रहता, उसे प्रमुक्तः किसी वस्तु का मूल संकेत कहा जा सकता है। "

प्रतीक का सम्बन्ध मूलतः अर्थ व्यंजना से रहता है, परन्तु कभी कभी वाक्य तथा धर्म साम्य भी इसके मूल में रहते हैं।

१- काव्य विमल पृ० ७-८

२- सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्व पृ० २५६

३- वेब्सटर पीटर्स बार्ड विलियम टिनहास एन द लिटरेरी सिम्बल पृ० ६

प्रतीक के माध्यम से व्यंग्यनिव्यक्ति साधना की जाती है। जो अधिकतर रुढ़िगत होती है। प्रतीकों का सम्बन्ध- वैयक्तिक तथा जनसमूह दोनों से ही होता है। वाधुनिक कवियों के प्रतीक का रूप वैयक्तिक तथा व्यक्तितगत है।

काव्य के उत्तर्गत प्रतीक का प्रारम्भिक निर्माण बिम्ब तथा उपमान के रूप में होता है, यह बिम्ब तथा उपमान उन्ही व्यंग्य में रूढ़ होकर प्रतीक बन जाते हैं। इस प्रकार कभी कभी यह प्रतीक परम्परागत निर्मित होते हैं। परन्तु अधिकतर बिम्ब ही प्रतीकत्व प्राप्त कर लेते हैं। उदाहरणार्थ मीन और चातक परम्परातुसार स्त्री के प्रतीक माने जाते हैं। चायसी के पदमावत में प्रयुक्त 'शशि' पद्मिनी का प्रतीक माना है। इस प्रकार प्रतीक किसी विषय का प्रतिनिधित्व करता होता है। बिम्ब विषय के समग्र चित्र होते हैं। वे भावादि को पूर्ण कर पाठक के प्रति सम्प्रेषित करते हैं, जबकि प्रतीक का काम केवल उचित मात्र होता है। उसमें सान्द्रता अधिक तथा व्याफता अपेक्षाकृत कम रहती है। प्रतीक तथा बिम्ब कभी कभी एक दूसरे का रूप भी धारण कर लेते हैं।

निष्कर्षतः प्रतीक कवि के भाव लोक से सम्बद्ध वह शक्ति है जिससे वह सांकेतिक रूप में व्यंग्यनिव्यक्ति करता है। प्रतीक और बिम्ब परस्पर भिन्न होते हैं। प्रतीक निर्माण के मूल में अधिकतर परम्परा प्राप्त जातीय कलना रहती है जबकि बिम्बों का सृजन वैयक्तिक कल्पना से होता है। स्वनी भिन्नता होते हुए भी बिम्ब और प्रतीक निर्माण की प्रक्रिया में साम्य भाव दिखाई देता है, क्योंकि काव्यान्तर्गत बिम्ब ही सिद्धि कर प्रतीक ही जाता है।

### परमानन्द सागर में प्रतीक योजना

“ प्रतीक ” के शास्त्रीय विवेचन के पश्चात् अब हम परमानन्द सागर के कतिपय प्रमुख उदाहरणों की भावपूर्णता में ही उसकी अवस्थिति का विवेचन करेंगे :

रानी तेरे लाल शोकहा कहीं ।

०                      ०

हे कौन यह बड़ी देवता के ब्रता के समुद्र ।

परमानन्द दास को ठाकुर तिहूँ लोक को लै ॥ १

रत्ना की अंतिम पंक्ति में वर्णित तिहूँ लोक को लै में प्रतीकात्मकता है, क्योंकि “ लै ” शब्द श्रीकृष्ण का प्रतीक है जो कि “ तिहूँ लोक ” अर्थात् तीनों लोकों के आधार स्तम्भ है। वह शब्दावली हृदिगत उपमान से सम्बन्ध रखती है तथा पूर्णतः अर्थाभिप्रेयक्ति में समर्थ है। इस प्रकार प्रतीक के सभी लक्षण विद्यमान हैं ।

घन में छिप रही ज्यों दामिनी ।

नन्द कुँवर के पीछे ठाढ़ी सोहत राधा मामिनी ॥ २

कवि ने हृदिगत उपमान के परिप्रत्यक्ष में “ घन में छिप रही ज्यों दामिनी ” राधा को श्रीकृष्ण के पीछे छिपी मुद्रा में लड़ी होने का प्रतीक रूप में वर्णन किया है। इस प्रकार की प्रतीक योजना में कवि की कल्पना साकार होगयी है। उसकी प्रतीक योजना की यह विशेषता है।

जागो जानी मेरे जगत उजियारे ।

कोटि मदन वारीं मुसिकान पर कपल नयन विलम्ब के तारे ॥ १

रचना की प्रथम पंक्ति के ' जगत उजियारे '

शब्दों में प्रतीकात्मकता है जिसका प्रयोग श्रीकृष्ण के लिए किया गया है। श्रीकृष्ण स्वयं जग में प्रकाश हैं, जिनकी कि माता फोड़ा जगा रही हैं। वर्णन में मातृ-स्नेह कलकत्ता है। उस प्रकार कवि की प्रतीक योजना में हृदय की मार्मिकता व्यक्त है।

दिन दिन तोरन लागे नाती ।

पशुरा वस्त गोपात पियारी प्रेम कियो कठि हाती ॥

०

०

०

विरह बिधा जब जास लागी नंद भयो जब ताती ।

परमानन्द स्वामी के बिहारे मुसि गर्व जब ताती ॥ २

कवि ने विप्रलम्ब शृंगार रस के वर्णन में राधा को जिन अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की है। वह स्वभाविक है क्योंकि प्रेमी के वियोग में सुख देनेवाली चीजें दुःखायी प्रतीत होती हैं। इसी तथ्य का रहस्योद्घाटन करते हुए पद की श्रवणशील ' नंद भयो जब ताती ' में नंद दुःख का प्रतीक मान वर्णित है।

गोपी प्रेम की ध्वजा ।

जिन गोपात कियो बस जप्ति उर धरि स्वाम मुजा ॥

१- परमानन्द सागर पद ५६२

२- .. पद ५६२



सौँ कृतीन दास परमानन्द जी हरि सन्मुखार्ह । १

प्रस्तुत पद की प्रथम पंक्ति में कवि ने गौपी के प्रेम व्यापार का प्रकाशन 'ध्वजा' शब्द से किया है। अतः यहाँ ध्वजा शब्द श्रीकृष्ण के प्रति गौपी के पूर्ण एवं स्पष्ट प्रेम का प्रतीक है।

वै हरिनी हरि नोद न जाई ।

जिन तन कृपा कटाच्छ चितै तुम लफै दिग बैठाई ॥ २

प्रस्तुत पद में प्रयुक्त 'हरिनी' शब्द राधा का प्रतीक है। कवि ने राधा की श्रीकृष्ण की नोद हरण करने वाली के रूप में चित्रित किया है। कवि की उत्कृष्ट कल्पना का साकार रूप दर्शनीय है।

कवि की प्रतीक योजना के सन्दर्भ में हम एक सकते हैं कि उसकी रचना के अन्तर्गत अधिकतर राधा और कृष्ण के सन्दर्भ में ही निम्न निम्न प्रतीकों का जायज मनोहारी रंग से रूपा है। कवि के इस प्रकार के वर्णन में उसकी विशिष्ट काव्यशास्त्रीय प्रतिभा का परिचय मिलता है।

दोष : शास्त्रीय विवेक

परमानन्द सागर में काव्य दोषों की अवस्थिति के विवेकन से पूर्व, दोष के स्वल्प एवं भेदादि का संक्षिप्त में परिचय करना भी आवश्यक जान पड़ता है।

१- परमानन्द सागर पद ८२५

२- .. पद ८५८

### दोष का स्वरूप

‘ गुण ’ की तरह ‘ दोष ’ भी विषय वस्तु अपना स्वरूप भी विद्वानों का विवादार्थक रहा है। जिस प्रकार रीति का सम्बन्ध गुण के साथ होता है। वैसी ही गुण का सम्बन्ध दोष के साथ होता है। गुण के स्वरूप में समय समय पर जो परिवर्तन देखने में आते हैं उसी प्रकार दोष के स्वरूप में भी कासमय परिवर्तन होते रहे हैं।

दोष के स्वरूप निर्धारण के विषय में दो प्रकार के विचारों वाले विद्वानों में देखने में आते हैं। ज्वनि पूर्ववर्ती जो कि दोष का सम्बन्ध गुण के रूप स्थापित करते हैं। ज्वनि पश्चवर्ती - जिन्होंने दोष का सम्बन्ध रस के साथ माना है।

मरु दोष की कोई जलम स्पष्ट रूप न मान कर ‘ गुण दोषों से विपर्यस्त हैं ’ कह कर धृष्ट होती देखने में आते हैं।

वामन का कथन मरु के उक्त कथन से भिन्नता रखता है जो इस प्रकार है। दोष गुण से विपर्यय युक्त होते हैं। विपर्यय शब्द के दो रूप हैं : १- अभाव २- वैपरीत्य। इस प्रकार वामन दोष को गुण से विपरीत तत्त्व मानते हैं।

ज्ञानार्थ वृद्धी भी दोष को गुण से विपरीत

१- स्ते दोषास्तु दिश्या-- स्त स्व विपर्यस्ताः गुणाः । ना० भा० १७, ६५

२- गुणविपर्ययात्मनो दोषाः । का० भू० २-१-१

मानते हैं। उनका कथन इस प्रकार है। गुण काव्य की सम्पत्ति कर्णात् सौन्दर्य विधाक तत्त्व है, तो दोष उसकी विपत्ति कर्णात् सौन्दर्यविधातक तत्त्व<sup>१</sup> ।

शानन्दबोध ने इस के व्यकरण और अपकरण के आधार पर इस दोषों की गणना निम्नित की ।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि 'दोष' को विषय वस्तु काव्य में गुण के विपरीत रूप में होती है। गुण इस का उत्कर्ष कर्ता है तो दोष काव्य में इस के व्यकरणकारक होते हैं। परन्तु कभी कभी दोष व्यकरण करके के रूप में नहीं भी होते देखे जाते हैं।

दोष की रचना इस के व्यकरण करने की स्थिति में होती है। काव्य में परिस्थितियाँ वहाँ ऐसे प्रसंग भी आते हैं, जहाँ दोषों की उपादेयता भी मिल ही जाती है।

दोषों के साराण स्वल्प आदि के विवाद की तरह उनके भेदों के विषय में भी आचार्यजन एक मत नहीं रहे हैं। यहाँ हम इस विवादास्पद सामग्री को न प्रस्तुत करते हुए संक्षिप्त में उनके सर्वमान्य प्रसुत भेदों की वीर ही दृष्टिपात करेंगे :

दोषों के वर्गीकरण में आचार्य मम्मट द्वारा प्रतिपादित वर्गीकरण ही जयिक उत्तेजनीय है- उन्होंने दोषों को निम्नलिखित पाँच वर्गों में विभक्त किया है :

१- फल गत

२- फलित गत

१- दोषाः विषये तत्र गुणाः सम्पत्ति कर्ता ।। का० आ० ३-१२४

२- ध्वन्या० २३१ , ३, १८, १६

३- वाक्यगत

४- वर्णगत

५- रसगत

रसगत दोष रस का उपकर्ण प्रसृत रूप से करते हैं। अष्टमि चार प्रकार के दोष रस का उपकर्ण गीण वर्णात् अस्मात् रूप से करते हैं।

### कतिपय प्रसृत दोष

#### १- पदगत दोष

पदगत दोष १६ प्रकार के होते हैं- धुति कटु, च्युत, र्धकृति, अप्रसृत, असमर्थ, निरुतार्थ, अनुचितार्थ, निरर्थक, अवाक्य, अश्लील, अन्विग्न, अप्रतीति, ग्रास्य, नेपार्थ, पितृष्ट, अविमृष्ट-विधेयांश, विरुद्धमति कृत ।

धुति कटु से नेपार्थ तक के दोष पदगत तथा अतिम तीन अभासगत दोष होते हैं। च्युत र्धकृति, अप्रसृत और निरर्थक को छोड़कर शेष तेरह दोष पदगत होने के अतिरिक्त वाक्यगत भी होते हैं, तथा इन्हीं में से कुछ पर्याप्तगत भी होते हैं। इनमें से कतिपय प्रसृत निम्नोक्त हैं :

#### (१) धुतिकटु

श्रवण में कानों की कठोर, कटु लगने वाले

१- स्वस्वीत्कर्णाकर्णहितु गुणदोषी भवत्या श्रवणार्थी : ॥

- काव्यानुशासन पृ० १६

प्रयुक्त शब्दों की हृति कटु दोष के अन्तर माना जाता है- जैसे, पृष्टता, विपरीतपृष्टता आदि ।

### (2) व्युत्पत्ति

व्याकरण द्वारा सम्मत शब्दों के प्रयोग में व्युत्पत्ति दोष उत्पन्न होता है। क्या- (१) तम पुत्र की सौन्दर्यता होती है आनन्द । इसमें सौन्दर्यता क्लृप्त है सौन्दर्य शब्द का प्रयोग होना चाहिए था । (२) द्विषी स्तर में एक पावक रक्त कण-कण छूम । 'पावक' शब्द पुल्लिङ्ग है यहाँ उसका स्त्रीलिङ्ग में प्रयोग होने से क्लृप्त है।

### (3) वप्रयुक्त

व्याकरण सम्मत, परन्तु कवियों द्वारा अस्वीकृत ( अज्ञात ) अर्थात् वप्रयुक्त शब्दों के प्रयोग होने पर वप्रयुक्त दोष माना जाता है।

१- नीलता- लो-लिताचरण, टकराता, फिलता  
क्षमान ।

२- राबहुत निशाचरण से लगा मति पेट ।

क्षमान ( क्षम ) और निशाचरण [ निशाचर ] शब्द शुद्ध हैं, परन्तु कवियों द्वारा वप्रयुक्त हैं।

### (4) विवक्षता

जब रचना में अत्यन्त दुर्बोध शब्दों का प्रयोग हो तथा उनके प्रयोग से काँ अर्थ होने में अश्वधान होता है, यहाँ विवक्षता दोष होता है।

कथा- कृष्ण-पान-कुमारी-सहीदर जानन देखि लवात तिहारो ।

कृष्ण ( जगत्पति कृष्ण ) के पान ( समुद्र ) की कुमारी ( लक्ष्मी )  
का माँ के ब्यात् चन्द्रमा , तुम्हारे मुख की देखकर लवाता है।

### (२) वाक्य दोष

इनके २२ उद्देश्य होते हैं- प्रतिकूल वर्ण ,  
उपलब्ध विवर्ण , लुप्त विवर्ण , विवर्णित , उत- वृत्त , न्यून पद , अधिक पद ,  
कथित पद , फलप्रकर्ष , समाप्तपदात्त , वर्णान्तरिकापक्ष , अव्यक्ततत्त्वान्ध ,  
वर्णान्तर , अनिश्चितवाक्य , अव्यक्ततत्त्वपद , अव्यक्ततत्त्वपदात्त , संकीर्ण , निर्मित ,  
प्रतिद्विष्ट , अन्तर्ग्रह , लक्ष्य , अन्तर्ग्रहार्थ ।

इनमें से प्रमुख दोष निम्नीकृत हैं :

### (१) वर्ण-प्रतिकूलता

जब वर्णन में वर्णनीय रस के प्रतिकूल वर्णों  
का प्रयोग हो । कथा-

मुष्ट की उटक लटक विधि कुण्डल की ।

पौर की मटक नेकि बालि दिहाऊ रे ॥

उक्त पैक्तियों में ' ट ' कठोर वर्ण का प्रयोग शृंगार, वात्सल्य रस के  
प्रतिकूल है। क्योंकि इस वर्ण का प्रयोग पीर रस में उपयुक्त होता है।

### (२) न्यूनपक्षता

एक वाक्य के कारण न्यून पक्ष दीख माना जाता है। यथा-

सहसा मैं उठ लड़ा हुआ बोल जाता हूँ ।

यथा मैं तुमसे शर्त, नहीं कुछ भी पाता हूँ ।।

द्वितीय व्यक्ति में 'पाता हूँ' से स्वस्ति 'कह' पक्ष का प्रयोग होना बाहिर ।

### (३) अधिकपक्षता

एक वाक्य में आवश्यक पक्ष के प्रयोग से अधिक पक्ष दीख होता है। यथा-

हमें तिरहारे लड़ को सङ्गलता बहिराज ।

उक्त व्यक्ति में 'लता' पक्ष के बिना भी कर्म की वास्तविकता में कोई परिवर्तन नहीं होता ।

### (४) संकीर्ण

एक वाक्य के पक्ष का जब दूसरे वाक्य में प्रयोग होता है, वहाँ संकीर्ण दीख होता है।

### (५) गर्भित

एक वाक्य के बीच में दूसरे वाक्य के भावों से गर्भित दीखमाना जाता है।

### (६) कथितपदता

एक बार कहे हुए पद की प्रकारान्तर से पुनः कह देने से कथितपद बोलहीता है।

### (७) समाप्तपुनराकृति

जब वाक्य समाप्ति पर भी उसी से सम्बन्धित पदों का प्रयोग ही वहाँ यह बोलगाना जाता है।

### (३) व्यंशदीर्घ

व्यंशदीर्घ के निम्नलिखित २३ व्यंश पद हैं :

अपुष्ट, कष्ट, व्यास्त, पुनरुक्त, दुष्कर्म, श्राप्य, अन्दिग्य, निर्हित, प्रसिद्धि विरुद्ध, विषा विरुद्ध, अव्योक्त, अनियमपरिवृत्त, अनियमपरिवृत्त, विशेष परिवृत्त, अविशेषपरिवृत्त, सार्वज्ञा, अप्रत्यक्ष, अक्षरविन्म, प्रकारान्तर विरुद्ध, विध्यवृत्त, अनुवादवृत्त, त्यक्तपुनःस्वीकृत, अश्लील ।

उक्त दीर्घों में से प्रयुक्त निम्न प्रकार से व्यक्त है :

### (१) पुनरुक्त

जब विभिन्न शब्द-प्रयोग द्वारा अर्थ की जावृत्ति होती है, तो वही पुनरुक्त बोलचाल वा जाता है। यथा-



है धन्य कलक-वीन जीना एक साण का,

युग- युग जीना कलक धिक्कार है ॥

प्रथम पंक्ति है भावार्थ की वाङ्मि दूसरी पंक्ति में हो गयी है।

### (२) दुष्क्रम

जब रचना में लोक अथवा शास्त्र-विह्वल क्रम पाया जावे वहाँ पर यह दोष होता है। यथा-

नृप । मीकौ हम दीविर अथवा पर गेन्द्र ।

गज का प्रयोग अथ है पूर्व होना चाहिए क्योंकि लोक में हाथी के पञ्जातु ही घोड़े का स्थान जाता है। अतः पहले हाथी फिर घोड़े की याचना करनी उचित थी ।

### (३) संदिग्ध

जब कवि में सम्बन्ध पूर्ण स्थिति उत्पन्न हो ।  
यथा- जीना चाहौ देख छित या इन्द्रिय सुख हेतु ।

उक्त रचना पंक्ति में यह स्पष्ट नहीं हो रहा है कि वक्षता देख छित के पदा में है वक्षता विषय- वासना में रह रहने के पदा की बात कह रहा है।

### (४) रस-दोष

वाचार्यो ने रस- दोष की संख्या पन्द्रह निश्चित की है। व्यभिचारिभाव, रस तथा स्थायीभाव की स्वशब्द-

वाच्यता, अनुभावी तथा विभावी की अभिव्यक्ति में कष्टकरता, प्रकृति  
रस के विरुद्ध विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव वर्णन, कंगूसा रस की  
पुनः पुनः दोषिता, कवसर में रस विस्तार, कवसर में रस- विच्छेद, उपधान  
का अत्यन्त विस्तृत वर्णन, प्रधान का विस्मरण, प्रकृतिगत वीचित्य के  
प्रतिश्रुत वर्णन , रस के अनुकारक का वर्णन ।

उपरोक्त दोषों में से कतिपय प्रसृत निम्नीकृत  
प्रकार से व्यक्त हैं :

#### (१) स्वशब्दवाच्य

जब किसी रत्नान्तर्गत रस, स्थायीभाव,  
विभाव, अनुभाव और संनारीभाव में से किसी का स्वशब्द से अभिव्यक्ति  
की जाती है। यथा-

(१) बाः कितना ससुराण मुख था । जाई सरीख बहण मुख था।

(२) कौशल्या बसा कली थी, कुछ कुछ धीरज धरती थी ।

उक्त पंक्तियों में कहुण और धीरज आदि  
संनारी भावों के प्रयोग दोषपूर्ण हैं तथा मोरु कवन में इन सरसतापूर्ण  
शब्दों का प्रयोग भी रचना के प्रतिकूल है।

#### (२) प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण

वर्ण्य रस के विरोधी रस की विभावादि  
के प्रयोग से प्रतिकूल विभावादि ग्रहण दोष होता है। यथा-

मान जाओ, तनिक मुस्कुराओ प्रिये ,  
यह बीता समय लौट सकता नहीं ।।

अर्धा शृंगार रस के प्रसंग में बीते जीवन का वर्णन शान्त रस की विषय-  
वस्तु का शीतल है जो दोषपूर्ण है।

### (३) रस की बार बार दीप्ति

जब रचना में किसी रस, भावके पुष्ट हो जाने  
पर भी बार बार उसके वर्णन करने को रस की बार बार दीप्ति 'दीप्ति'  
कहते हैं।

### (४) क्काण्ड ( अवसर ) पर रस का प्रतिपादन

किसी मरण आदि अर्थात् शोक पूर्ण वर्णन  
के प्रारम्भ हो जाने पर शृंगार रस का वर्णन करने लग जाना । जैसे-  
" रामचन्द्रिका " में दशरथ मरण के शोक प्रसंग में राम का कौशल्या के  
प्रति उपदेश । तथा " देवी संहार " नाटक में वीरों के मरण का प्रसंग  
प्रारम्भ होने पर दुर्योधन और भानुमती के सम्मोह शृंगार का वर्णन आदि ।

### दीप्ति परिहार अथवा गुणत्व

किसी परिस्थिति में जब दीप्ति गुण बन  
जाता है तो उस स्थिति को दीप्ति परिहार कहते हैं।

दीप्ति के विषय में निष्कर्ष स्वरूप कह

सकते हैं कि जहाँ काव्यशास्त्र में दोषों को हेतु कहा गया है तो काव्य के लक्षणों में दोषों को साहित्य में स्थान भी मिला है। भामह ने इसकी पुष्टि इन शब्दों में की है। असाधु फलार्थ भी (साधु) वाक्य के समर्थ से शोभा को धारण कर लेता है- काला वस्त्र सुनका के नयनों के संग १ ॥ अर्जुन सौन्दर्य प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार सुतिदुष्टता दुर्गार रस के वर्णन में दोषमाना जाता है तो वही रोग रस में गुण का रूप हो जाता है। भोजराज ने १६ फल दोषों, १६ मायय दोषों, १६ वाक्यार्थ दोषों में गुणात्वं स्थापित किया है। मम्मट ने दोषोंकी विपरीत स्थिति इस प्रकार निश्चित की है। कहीं ये दोष नहीं रहते तथा कहीं ये न दोष रहते हैं और न गुण। वाचार्यों के उक्त कथन के आधार पर हम निःसंदेह यह कह सकते हैं कि ये गुण, रस की तरह दोष का चित्र केवल दोष तक हो सीमित नहीं है, वरन् कहीं कहीं ये गुण रूप बन जाते हैं, अतः उन्हें हम साहित्यिक अंग अथवा साहित्य का एक तत्त्व भी कह सकते हैं।

#### परमानन्दसागर में दोषों की अवस्थिति

परमानन्ददास जो मुक्तः भक्त कवि है। अतः उन्होंने राधा कृष्ण, गोप तथा गोपियों को आधार बनाकर भक्ति की पूर्ण सन्ध्या पूर्ण स्थिति में भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं को मुक्त कण्ठ से गाया है। ऐसी स्थिति में उन्होंने श्रीकृष्ण, राधा के रूप वर्णन तथा समस्त ब्रज बोधन लौकिक एवं तलौकिक रूप में दोनों प्रकार से स्तुति की है। इसके अतिरिक्त उन्होंने ब्रजभूमि में स्थित गोवर्धन पर्वत यमुना तथा तत्सम्बन्धित सप्त शृङ्ग आदि की शोभा का वर्णन भी भक्ति भावना के परिप्रेक्ष्य में ही किया है। अतः कवि ने अपनी इसी भक्ति पूर्ण भावना से

प्रति होकर जो शुक भी कहा है वह उस रूप में ठीक ही जाना जायेगा।  
 इस कारण से परमानन्द जैसे उच्च स्तरीय मन्त्र-कवि की रचनाओं में दोष  
 दूढ़ता जैसा दोष निश्चित करना प्रम हो सिद्ध होगा। परन्तु यदि हम  
 उनकी रचनाओं की शास्त्रीय कर्ताओं से परत कर दें तो कतिपय ऐसे स्वतः  
 व्यक्त ही मिल जाते हैं जो कि पूर्णतः तो नहीं उतरते हैं। कवि की रचना  
 के ऐसे क्षेत्र निम्नलिखित हैं :

सुख सेज पाँदे श्रीवल्लभ रंग लिए श्री नवनीत प्रिया ।  
 ज्यों क्षुमति सुत नैर्दन्दन की रच्यो प्रसूति मनलाय दिया ॥  
 हृत्तरावत हृत्तरावत नावत केशुरि अ दिलाय दिया ।  
 कस्त न की देखा दुग नैनन सौ सुत विहरत सुत होत दिया ॥१॥

उपरोक्त रचना की दोनों पंक्तियों से 'कषाण्ड'  
 ( कवसर ) पर उस का प्रतिपादन दोष दिलायी दे रहा है। क्योंकि  
 प्रथम पंक्ति में श्रीवल्लभ नवनीत प्रिया के साथ शयन करने का वर्णन होने  
 के कारण संयोग दुगार की अभिव्यक्ति होती है। द्वितीय पंक्ति में यशोदा  
 सुत की देखकर प्रसन्न मुद्रा का वर्णन होने से वात्सल्य उस की व्यंजना प्राप्त  
 हो जाती है।

तुर्थ पंक्ति में 'अधिक पदता' दोष की  
 प्रतीति होती है, क्योंकि 'देखत दुग नैनन सौ' को हम 'देखत नैनन की'  
 कहें तो भी अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता। अतः 'दुग' पद का बाधित  
 प्रतीत होता है।

ये जीवन केशि की जल ज्यों अशुपाल मणि तन दीर्घ ॥२॥

उक्त रचना की पंक्ति की फ़ावली " जो वन  
 लीला की फल ज्यों " में कवि जीवन की वसिष्ठता की अभिव्यक्ति कर  
 रहा है। कवि की ज्ञान और उपेक्षात्मक शैली के मूल में शान्त रस की व्यंजना  
 का आभास होता है। परन्तु आगे की फ़ावली " जब गुपाल मणि तब दोषे "   
 द्वारा कवि ने जी संयोग शृंगार का रूप दे दिया है। इस प्रकार कवि जिस रस  
 को लेकर चल रहा है, उसे उसका रूप परिवर्तित कर दिया है। इसी रस-परि-  
 णामि के कारण यहाँ क्लृप्ति ( अवसर ) रस पर शीघ्र चिह्न होता है।

(१) जाकी कृपा करे कटाक्ष वृन्दावन केनाथ ।

बस होन बहीरों लै मिलि के साथ ॥ १

(२) जिन तन कृपा कटाक्ष चित्त तुम बपी टिंग बैठा है ॥ २

उक्त पंक्तियों में वर्णित कटाक्ष शब्दों में " ट " कठोर वर्ण , वर्णनीय  
 रस ( शृंगार रस ) के प्रतिकूल प्रमाण हुआ है। अतः यहाँ वर्ण-प्रतिकूलता  
 दोष है। " ट " वर्ण का प्रयोग वीर रस में होता है।

तू मेरी ठाकुर जहानन्दन के तू है जगन जीवन । ३

उक्त रचना पंक्ति के अर्थ में सन्देह होने के कारण अर्थ में संदिग्ध दोष है।

बात कहत रस रंग उच्छ्रिता ॥ ४

उक्त रचना में " उच्छ्रिता " शब्द अप्रयुक्त  
 है। अतः यहाँ " अप्रयुक्त दोष " है।

१- परमानन्द शानर पद = ३४

२-        "                      = ५८

३-        "                      = ८०

४-        "                      = ७७

उन्कलितता के स्थान पर 'उन्कलता' कथना  
'उन्कलता' 'अथवा' 'अलकलता' शब्दों का प्रयोग उपयुक्त था ।

कपी हाथ की में मारी । १

उक्त पंक्ति में 'कपी' शब्द का पुनः प्रयोग प्रकारान्तर उसी से सम्बन्धित  
'पे' शब्द द्वारा वाक्य की समाप्ति पर कर दिया गया है। जबकि ये  
के स्थान पर 'की' शब्द का प्रयोग होना चाहिए था । अतः यहाँ समा-  
प्तपुरुषत्वता दोष माना जायेगा ।

उक्त दोषों के वृत्तिगत परमानन्द सागर में  
कतिपय स्थलों में च्युत संस्कृति दोष के उदाहरण भी मिल जाते हैं। ऐसी  
उदाहरणों में प्रयुक्त होने वाले दोष युक्त शब्द निम्नोक्त हैं :

पवन ( पुल्लिंग ) से तथा कृपा स्त्रीलिंग से परन्तु कवि  
ने 'पवन कृपा कंसों को' द्वारा इसकी अभिव्यक्ति की है। इसी प्रकार  
शोध शब्द के स्थान पर शोधना शब्द का वाचोपन किया है।

जैसाकि हम इसी प्रकार के प्रारम्भ में वर्णन  
कर चुके हैं कि 'परमानन्द सागर' का रचयिता उत्कृष्ट प्रेणी का भक्त  
कवि है, उसकी रचना में जो भी दोष लक्षित होते हैं, उनके मूल में वही  
उसकी भक्ति विनीता ही माना जायेगी । कवि को इसी मूल भावना ने  
कवि का ध्यान कतिपय स्थलों में शास्त्रीय च्युत कर दिया है। कवि का पूर्ण  
जीवन राधा कृष्ण से ही मग्न था । अतः कवि के मानसस्थल पर उन्हीं  
के छिया कलापों के जीक जीक चित्र वर्तमान वर्तित होते रहते हैं । कवि को

कल्पना के इन्हीं चित्रों ने काव्य रूप धारण कर लिया । कवि की इस प्रकार की मनःस्थिति में काव्य के गुणदोषों के लिए विशेष स्थान नहीं था । निष्कर्षतः कवि की रचना का मुख्य रस गहन शास्त्रीय निरीक्षण ही हमें कतिपय दोषों से परिचय कराता है।

भवत कवि की दृष्टि से कवि की रचनाओं के दोषों को दोष रूप में स्वीकार न करती हुए उन्हें उनके गुणात्त्व वक्ता दोष परिहार के रूप में ही मानना पड़ेगा ।

#### ५- सौन्दर्यास्वीय विवेक

##### सौन्दर्य का अर्थ

समस्त दृष्टि के अन्तर्गत जिसका भी सौन्दर्य दिखायी देता है। वह सार्वजनीन अनुभूति का विषय है। जो कि मानव मात्र के हृदय को प्रभावित, जादृष्टि और स्पर्शित करता है। अतः सौन्दर्य को मानव मन की सहज वृत्ति भी कह सकते हैं। सौन्दर्यानुभूति से मानव-मन ऐसा प्रभावित हो जाता है कि बुद्धि के उत्प्रेक्षा अवगाहन करना कठिन हो जाता है। कवि जयदेव प्रसाद के शब्दों में :

वह ऐसी उत्कृष्ट है,  
जिससे सुकृष्ट नहीं है। १

सौन्दर्य की व्याख्या सम्बन्धी इसी कठिनाई को दृष्टि पथ पर रखी हुए शिष्टों का कथन निम्नलिखित है :



" The road to beauty is packed with graves of theories, but the ghosts walk, and as the road is always misty, few can tell the vital from the dead (The works of art wing high and clear to the goal.)"

व्युत्पत्ति की दृष्टि से विद्वानों ने सौन्दर्य शब्द का अर्थ मन को आर्द्र करने वाला निश्चित किया है।

‘ सुष्ठु उनन्ति आर्द्रा करोति चित्पिति । ’ १

व्यवहार में सौन्दर्य शब्द प्रसंगानुसार पृथक्-पृथक् अर्थों में प्रयुक्त होता है।

१- साधारणतः वह रूप की विशेषता है जिससे वस्तु दर्शनीय बनती है।

२- सौन्दर्य वस्तु के किसी एक विशिष्ट मूल्य को प्रकट करता है। जैसे कोई बात या वस्तु हमें सुन्दर लगती है तो उसे सुन्दर कह कर साधुवाद देते हैं। “ बापू जी कुछ कहा बहुत सुन्दर है।

३- रूप- सौन्दर्य के द्वारा विशिष्ट आनन्द की अनुभूति होती है। रूप के अतिरिक्त जब भाव और कर्म से भी विशिष्ट आनन्द की अनुभूति प्राप्त होती है, तो भाव और कर्म को भी सुन्दर कहते हैं। दोनों के अमूर्त होने पर भी उन्हें सुन्दर कहा जाता है।

साहित्य के क्षेत्र में सौन्दर्य शब्द का प्रयोग उसके अर्थ विस्तार का एक और प्रमाण होता है। जैसे- ‘ चित्पिति के

१- Dictionary of world literature, Joseph J Shipley, p88

२- शब्द कल्पद्रुम - पैरव सप्ल ५० ३७३

काव्य में सौन्दर्य का चित्रण मिलता है, " यहाँ सौन्दर्य शब्द का सम्बन्ध वस्तु तथा वातम्बन से है। यदि हम इस वाक्य को इस प्रकार कहें, " विद्या-पति के काव्य में सौन्दर्य है " इस वाक्य में सौन्दर्य शब्द रूप या भावाभि-व्यक्ति की मार्मिकता का प्रतीक है।

अंग्रेजी में सौन्दर्य को ' ब्यूटी ' कहा जाता है जिसका अर्थ है मानवीय सुख, रूप या स्तर वस्तुओं में वाकृति, अनुपात, रंग आदि गुणों का संयोग, जो बर्तों को आनन्द प्रदान कराता है, जो नैतिक तथा बौद्धिक भावना का भी परिशीलन करता है।

सौन्दर्य की आन्तरिक तत्त्व रूप में स्वीकार करने वाले प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो की दृष्टि इस सम्बन्ध में आख्यात्मक है। उनके अनुसार -

**" If anything is beautiful it is beautiful for no other reason than that it partakes of absolute beauty."**

प्लेटो ने सौन्दर्य को दिव्य माना है, और शिव से उसे पृथक् कर दिया है। उनका कथन है कि अनुकरण होने के कारण कलाओं में उस परम सत्य, शिव और सौन्दर्य का प्रत्यक्षीकरण नहीं हो सकता ।

युक्रात के अनुसार सौन्दर्य का वाकर्षण ओष्ठ उद्देश्य को पूर्ति में है <sup>3</sup> :

**' The beautiful is that which is fitting and answers to the end required.'**

१- A.C. Bradley, Oxford Lectures on poetry p 40

२- Joseph T Shipley-Dictionary of World Literature p 36

३- Crow/Aesthetic-Historical Summary p 255

### भारतीय मत

प्राचीन सौन्दर्यशास्त्री कवि कालिदास ने हनुमती को 'सौन्दर्यिणी दीप शिखा' कह कर सौन्दर्य की हफ्त वान्तरिक ज्योति को और संकेत दिया है।<sup>१</sup> आचार्य मित्र ने सौन्दर्य की बाह्य रूप की विशेषता मानकर उस से निम्न स्थान देने का प्रयास किया है। रमणीयता के प्रतिपादक पंडित राज जगन्नाथ ने सौन्दर्य को उस से कुछ ऊपर रखा है।<sup>२</sup> सौन्दर्य कला की प्रकृति को पोषित करता है।

### सौन्दर्यानुभूति

सौन्दर्यानुभूति आश्रय पर आधारित होती है, क्योंकि आश्रय को मानसिक विशेषताएँ वस्तु के रूप को सौन्दर्यानुभूति को निर्धारित करती हैं। सौन्दर्य ग्राह्यता आश्रय के व्यक्तित्व पर निर्भर होती है। वर्तमान व्यक्तित्व वस्तु के बाह्य रूप और उसकी सामाजिकता को महत्व देता है और अन्तर्मुखी व्यक्तित्व रूप के अन्तर्दशन के साथ सौन्दर्य को भावना में सकल हो जाता है। सौन्दर्यानुभूति के लिए बौद्धिक तथ्यपरक दृष्टि बाधक होती है, भावना शीत एवं कल्पनाशील दृष्टि रूप गत सूक्ष्म सौन्दर्य की मन में प्रतिस्थापना करने में साधक होती है।

### सौन्दर्य बोध

#### मानव का सौन्दर्य बोध रेन्द्रिय संवेदनाओं

१- कालिदास- रघुवंश सं० ६-६७

२- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मित्र- बाह्योपमय विमर्श पृ० १६८-१६९

३- जगन्नाथ : रस गंगाधर पृ० २०

और मानसिक भावना आदि पर बाधास्तित होता है, क्योंकि वस्तु रूप से दार्शनिक हन्द्रियाँ प्रभावित होती हैं। अतः इस प्रभाव से दर्शक के मन में वस्तु के प्रति रूप चिन्तन या भाव चिन्तन होने लगता है। हन्द्रियजन्य संवेदना और मानसिक भावों की समाविष्टि से ही रूप सौन्दर्य का बोध होता है। इस सम्मिलित प्रक्रिया में कल्पना भी भावना का एक अंग बन जाती है। कल्पना से ही रूपगत सौन्दर्य का सूक्ष्म बोध होता है। कल्पना के सर्जनशील होने पर ही बिम्ब का निर्माण होता है।

राजेश्वर ने कल्पना के इन दोनों रूपों को भावयित्री और कारयित्री प्रतिभा की संज्ञा दी है। पारञ्जाल्य सौन्दर्य-शास्त्रियों ने भावयित्री को ही 'व्यभिर्हृदि' कहा है। श्रोत्रि व्यभिर्हृदि और प्रतिभा को तत्त्वतः एक होमानती हैं। उनका कथन इस प्रकार है :

**" The activity of judgement which criticises and recognizes the beautiful is identical with what produces it..... the activity which judges is called taste, the productive activity is called genius. Genius and taste are therefore substantially identical. "**

सौन्दर्य बोध के लिए व्यभिर्हृदि का होना आवश्यक है। सौन्दर्य के प्रति यह व्यभिर्हृदि ऐन्द्रिय संवेदन, मानसिक भावना और कल्पना से ही प्राप्त होती है। कवि के सौन्दर्यबोध का विकास अनुभवों के आधार पर होता है। कवि के सौन्दर्य बोध का विकास अनुभवों के आधार पर होता है। सौन्दर्य बोध वृष्टिगत और क्लान्त होता है। वृष्टि सौन्दर्य के अन्तर्गत प्रकृति और

मानवीय रूप के नैसर्गिक, स्वस्थान्द और सजीव सौन्दर्य के सूक्ष्म अनुशीलन से नावक के मन में चेतना का विकास होता है। मनुष्य प्रकृति और मानव समाज का एक अंग है। उसके मन पर प्रकृति जैसा समाज का प्रभाव किसी न किसी रूप में पड़ता रहता है। कलस्वरूप उसे प्राकृतिक तथा सामाजिक संस्कारों से सौन्दर्य बोध होता है। सौन्दर्य नैसर्गिक जैसा प्राकृतिक ही नहीं सामाजिक भी होता है। समाज की सन्ध्या और संस्कृति उसका स्वरूप निश्चित करती है। सौन्दर्य बोध समाज की सांस्कृतिक भावनाओं से अभिभूत ( प्रभावित ) होता है। सौन्दर्य बोध देशकाल से भी प्रभावित होता है। उसमें परिवर्तन भी हो जाता है। एक राष्ट्र का सौन्दर्य दूसरे राष्ट्र के लोगों को दृष्टि में उसका आकर्षण रूप या अधिक हो सकता है।

सौन्दर्य बोध बार्हिक परिस्थितियों से भी प्रभावित होता है, क्योंकि उच्च वर्गीय संस्कारों को सुझाता है सौन्दर्य का बोध करती हैं। और निम्न वर्गीय संस्कार रूप की स्वस्थ मासलता और शक्ति में उसका अनुभव करती हैं।

#### सौन्दर्य बोध के विकास का तीसरा प्रोत

मानव का व्यक्तित्व और जीवन होता है। मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्तित्व दो प्रकार का होता है : (१) बाह्यव्यक्तित्व (२) वान्तरिक व्यक्तित्व । बाह्य व्यक्तित्व वस्तु की यथार्थता पर केन्द्रित रहता है और वान्तरिक व्यक्तित्व भावनाशील और कल्पनाशील होकर वस्तु की अपेक्षा उसे सम्बन्धित जगहों अनुभूति में केन्द्रित रहता है। परिणामस्वरूप वान्तरिक व्यक्तित्व वाला मनुष्य वस्तु के सौन्दर्य को अनुभूति करके कलाकार का रूप ले लेता है।

#### व्यक्ति के सौन्दर्य बोध का विकास प्राकृतिक

बीर सामाजिक परिस्थितियों की अपेक्षा व्यक्तित्व बीर जीवन के अनुभवों के अनुसार बढिके होता है। उसकी प्रौढ़ता व्यक्ति की भावना, कल्पना आदि पर निर्भर होती है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्राकृतिक बीर सामाजिक सौन्दर्य - केतना कलाकार के सौन्दर्य बोध की आधार भूमि है तो व्यक्तित्व उसको विशिष्ट दशा की निश्चित करने में सहायक होता है। कला सर्जन की परम्परा जयवा कर्तकार योजना उसे परिपुष्ट करती है।

साहित्यकार का सौन्दर्य बोध अपनी कलात्मक भावना के अनुसृत सांस्कृतिक रूप विधान करता है। रूप- सौन्दर्य की जामा शब्द प्रयोग, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता, अप्रस्तुत योजना, प्रतीक विधान, बिम्ब विधान आदि काव्य तत्त्वों पर निर्भर करती है। इसी प्रकार रीति वस्तु के रूप का विशेषण उसके गुण, धर्म और क्रिया उसकी गतिशीलता का चित्र प्रस्तुत करती है। लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता बीर वाक्य बद्धता सौन्दर्य बोध की प्रौढ़ता के परिचायक होती है, जिससे अभिव्यक्ति का स्वरूप नितर जाता है। कर्तकार योजना बीर प्रतीक विधान अप्रस्तुत के माध्यम से प्रस्तुत की मूर्त रूप देती है जिससे प्रस्तुत की रूप सौन्दर्य में वृद्धि हो जाती है।

दूसरी प्रकार बिम्ब रूप कल्पना का सौन्दर्य सांख्यिक आन्तरिक तत्व है। काव्य के अन्तर्गत जब वाक्य रस-रंग या रक्त भास से पूर्णतः सजीव हो उठती है, तब बिम्ब का निर्माण हो जाता है। बिम्ब की अवस्थिति मस्तिष्क में होती है। बिम्ब रचना में वाक्य का आन्तरिक संगठन होता है। उसका आयोजन वस्तु की बीर न होकर भावनात्मक या केतनात्मक होता है, उसमें कलाकार की कल्पना बीर केतना का सहयोग रहता है। उसकी प्रौढ़ता कलाकार के सौन्दर्य बोध की प्रौढ़ता का प्रतीक होती है। कलाकार की रचना का सौन्दर्य - बोध कन्हो के प्रयोगों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

वस्तु या वास्तव्य के आधार पर रूप सौन्दर्य को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है : सृष्टिगत और मानव निर्मित वस्तुगत । सृष्टि का रूप- सौन्दर्य अधिक नैसर्गिक और सजीव होता है जबकि मानव निर्मित वस्तु का रूप- सौन्दर्य सार्थक और पूर्ण है।

सृष्टिगत रूप सौन्दर्य के मानवीय और मानवैतरेय या प्राकृतिक दो उपवर्ग हैं- मानवीय सौन्दर्य को पुरुष और नारी सौन्दर्य के रूप में विभाजित किया जा सकता है। क्योंकि पुरुष और नारी की प्रकृति और व्यवस्थित्व में बहुत अन्तर है। एक का रूप सौन्दर्य कोमल और माधुर्यमय है तो दूसरे का जीवस्वी और भीमता लिए है। स्त्री का रूप सुन्दर ( ब्यूटीफुल ) तो पुरुष का सुगठित ( इन्डसम ) ।

प्रकृति ईश्वरीय या स्वातः प्रेरणा से सृजित है। अतः उसका रूप सौन्दर्य नैसर्गिक, स्वच्छन्द और पूर्ण है। वाय्यात्मिक सृष्टि से वह ईश्वरीय देन है। प्रकृति की रहस्यमयता मानव के मन में वाय्यात्मिक जिज्ञासा उत्पन्न करती है , जिसे रहस्यवाद का विकास हुआ है। प्रकृति के वाच्य रूप में कील वाकृतियाँ, सौष्ठवता, रंग संयोजन आदि लोक आकर्षक पदार्थ हैं जिनसे कलाकार प्रभावित होकर अपनी कला के सौन्दर्य बोध का आधार बना लेते हैं। प्रकृति में नारी के समान कमनीयता और कोमलता है तो उसमें पुरुष की जीवस्वता की तरह उग्रता भी है।

मानव निर्मित वस्तुगत सौन्दर्य को भी दो भागों में विभक्त किया गया है :

- १- सज्जित कला कृतियों का सौन्दर्य
- २- उपयोगी वस्तुओं का सौन्दर्य

सहित कलाओं का उद्देश्य मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति है तो उपयोगी वस्तुओं का उद्देश्य भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति है। कलाकृति के रूप में सार्थकता मानसिक आनन्द प्रदान करती है तो उपयोगी वस्तुओं के रूप की सार्थकता भौतिक सुख दायी है।

### परमानन्द सागर में सौन्दर्य- निरूपण

परमानन्द सागर में 'सौन्दर्य- निरूपण' मानवीय तथा मानवैतर दोनों ही रूपों में दर्शनीय है। मानवीय सौन्दर्य- बाल लोला मात्तलोला, बभिसार तथा व्याह आदि के पदों में प्रसृत रूप से वर्णित है। इन पदों में श्रीकृष्ण, राधा, तथा गीष गीषियों से सम्बन्धित उनके कील सुन्दर चित्रों का निरूपण हुआ है।

मानवैतर सौन्दर्य मन्दिर की शोभा, उष्णकाल, हुफ्तरी के पद, जूँ के पद, झुम्भी कटा के पद, श्याम घटा आदि के पदों में प्रसृत रूप से वर्णित है। इन पदों में कवि ने प्राकृतिक दृश्यों का मनोहारी वर्णन किया है। गंगा तथा यमुना के माहात्म्य के परिधिष्व में कलिपय पदों में उनकी सुन्दरता का वर्णन भी मिलता है।

परमानन्द सागर में कलिपय ऐसे भी पद हैं जिनमें मानवीय तथा मानवैतर सौन्दर्य का मिश्रित रूप देखने को मिलता है। इन पदों में कवि ने श्रीकृष्ण तथा राधादि की सौन्दर्यमयी भावकियाँ, वृन्दावन के सप्त निधुँवों, यमुना के किनारे स्थित कदम्ब के वृक्षों तथा उनमें प्रवाहित होतल मंद सुगन्धित समीर के परिवेश में प्रस्तुत की है।

परमानन्द सागर में 'सौन्दर्य' को अवस्थिति है



परिचित होने के पश्चात् जब हम सर्वप्रथम उसके मानवीय सौन्दर्य पर क.  
उदाहरण प्रस्तुत करते हैं :

देखा ब्रजनाथ बदन कौटि वारी ।

जलज निकट नैन मन उपमा विचारी ॥

धुण्डल सीस घूर उदित उघटन की घटना ।

हुँतल बलि पाल तापे मुहुरी कल रटना ॥

जलद कँठ सुन्दर पीत वसन दामिनी ।

बनपाल सङ्काप पीही सब भामिनी ॥

सुखतापनि हार नैलित तारागण पाँति ।

परमानन्द स्वामी गीपाल सब विचित्र पाँति ॥ १

उक्त पद में कवि की सौन्दर्य भावना अन्तर्मुखी,  
भावना, शील, और स्वाभाविक व्यक्त मानवीय है। संयोग शृंगार के  
बीच में भी वह कल्पना से गीत है। कल्पना और रूप शाय्य की संयुक्त  
बीजना प्रत्येक पंक्ति में पुष्प पुष्प द्रष्टव्य है। भिन्न भिन्न प्राकृतिक  
उपमानों के समन्वित आवीर्ण से कृष्ण का रूप सौन्दर्य साकार हो उठा  
है। गीतारण के इस प्रसंग को प्रथम दो पंक्तियों में कवि ने अपनी कल्प-  
नाओं को 'जलज निकट नैन मन' शब्दों के प्रयोग द्वारा व्यक्त किया है।  
तृतीय और अर्ध पंक्तियों में प्रसूत सम्भावली हुँतल सीस घूर उदित ' में  
विभिन्न सुन्दरतम उपमानों द्वारा कृष्ण के कृण्डलों के सौन्दर्य की अनुपम  
विविध्यवित की है। अन्त पंक्ति में 'जलद' 'वारी' 'दामिनी' उपमानों  
के प्रयोग से कृष्ण के रूप सौन्दर्य पर वर्णों का आरोपण सिद्ध होता है।  
श्रीकृष्ण के गति में बनपाला इन्द्रधनुष के समान तथा पणिमय तारागणों

की पैलितर्यों के समान सुशीलित है। ऐसी सौन्दर्यमयी सुखी वादन करती है  
कृष्ण के विविध रूप ने सभी ब्रज युवतियों के मन पीढ़ लिए हैं।

गोकृष्ण के रूप सौन्दर्य की उपर्युक्त तन्निष्पत्ति से  
श्रेष्ठतम वीर बना ही सकती है। निःसन्देह कवि को इस प्रकार की सौन्दर्य-  
कल्पना तथा सौन्दर्याभिप्रेक्षित साहित्य जगत् में वद्वितीय है।

रूप साम्य और प्रभाव साम्य का एक समन्वित चित्र  
द्रष्टव्य है :

सुखित केरी सुदैस बदन पर बीच बीच कत बूँदें हैं ,  
मानो कमल पत्र पर भीली, सज्जन निष्ठ सजीति गई ।  
गोपी नैन मृग रूप लम्पट उड़ि उड़ि परत बदन माली ॥१॥

उपर्युक्त पैलितर्यों में प्रयुक्त उक्तान कृष्ण सौन्दर्य  
की समीक्षा की ग्यस्त करती है। कृष्ण मुख-कमल, उद्य पर सुशीलित कत  
कण पास हो में सज्जन पत्नी की उपस्थिति के जायीजन से यह योजना  
कृष्ण के रूप सौन्दर्य की तन्निष्पत्ति के साथ साथ एक सरीवर के सज्जन  
दृश्य का भी उद्घाटन करती है। तन्निष्पत्ति में कवि ने गोपियों के प्रेम  
रूपों नैर्जी का कृष्ण के कलत्रवत मुख की वीर स्वाभाविक आकर्षण की  
व्यंजना की है जो समासवित का एक समश्लेष उदाहरण है।

जादिन ते जगिन रत्न पैल्यो सी जसोदा की मूतरी ।  
जब ते गृह भूनाली हूट्यो बैसे कचिँ फूल रो ।  
कलि गिरात वारिष तौज पट राजत काजर रेत रो ।  
रञ्ज दे मकरन्द रेत मनी कलि गोलक के पैय रो ॥

रञ्जित है है दूध की दलियाँ जगमग जगमग होत री ।  
मनी महातम मन्दिर में परी स्तनन की ज्योति री ॥

०

०

मानहु कुमुदिनी काफ़ी पूजी पूरन चन्द्रहि पाय री ।  
परमानन्द देखि सुन्दर तन जानन्द उर न समाय री ॥ १

उक्त रचना में प्रेमासक्ति और क्लेशासक्ति के भावों की समन्वित रूप चित्रण सुन्दर उपमानों के सहयोग से अत्यन्त मनोहारी बन गया है। बाल-कृष्ण के रूप विधान में कितना सहज आकर्षण है कि राधा उनकी स्तन देखकर ही अपने घर से सम्यन्ध विच्छेद कर देती है। बाल कृष्ण का यह सौन्दर्य वसाधारण कौटि का है, उनके विशाल नेत्र कमल के सदृश्य हैं। उनमें काजल की रेखाएँ शोभनीय हैं। उनके मुँह में दो दो दूध के दाँत बन्धकार युक्त घर में रत्नों की ज्योति के समान दीप्तिमान हैं। इस प्रकार कवि ने श्रीकृष्ण के रूप-सौन्दर्य को और भी अन्य सुन्दर उत्प्रेक्षाओं के योग से सँवारा है जिससे रूप माधुर्य की अन्त तहरे उठकर नेत्रों के माध्यम से मन की आर्द्र तथा इस विभोर कर देती है। बाल कृष्ण के रूप और उनकी चेष्टाओं के स्वाभाविक वर्णन सौन्दर्य भावना की मानवीय सार्वभौमिकता और निष्काम दृष्टि के प्रमाण हैं। शिशु सुलभ चेष्टाओं ने श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य को जो गतिशीलता प्रदान की है उसके कारण रूप का आकर्षण बढ़कर प्रेम के चरम बिन्दु तक पहुँच गया है। बाल सौन्दर्य की ये कार्यक्रियाँ कितनी स्वाभाविक हैं।

सुन्दरता गोपालहि सोहे ।

कहत न को नैन मन जानन्द जा देखत रति नायक  
सोहे ।

सुन्दर चरन कमल गति सुन्दर, सुन्दर गुंजाफल अवतंस ।  
 सुन्दर बनमाला उर मंडित सुन्दर गिरा मनी कल छंद ॥  
 सुन्दर केतु मुकुट मनि सुन्दर सुन्दर सब लीग ख्याम सरीर ।  
 सुन्दर बदन अवलोकनि सुन्दर सुन्दर ते बलबीर ॥  
 वेद पुराण निरूपत बहु विधि ब्रह्म नराकृति रूप निवास ।  
 बलि बलि जाऊँ मनीहर मुरति हृदय बसी परमानन्द ॥११

परमानन्ददास जी ने श्रीकृष्ण के फलुर पक्ष को ग्रहण किया है, इसलिए उनके वर्णन में सौन्दर्य वर्णन की अधिक संभावनाएँ हो गयी हैं। उनकी आनन्दवादी दृष्टि सौन्दर्य और प्रेम की ही आश्रित है। कवि ने आनन्द के इन दोनों श्रोतों के कौने कौने को भाँक कर उनका सह-स्योद्घाटन किया है।

प्रस्तुत रचना में कवि ने श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व और रूप सौन्दर्य का सहस्र वर्णन किया है। कृष्ण का व्यक्तित्व ऐसा है कि कवि ने उसमें सुन्दरता का पूर्णरूपण आरोपण किया है। उनके वपुर्ष सौन्दर्य ने कामदेव की भी मोह लिया है। उनके कमलवत चरण सुन्दर हैं तथा उनकी गति भी सुन्दर है। उनकी गर्दन कल छंद की गर्दन के समान सुन्दर है तथा उसमें फली हुई बनमाला भी सुन्दर है। मुरली मणिमय मुकुट तथा उनका प्रत्येक लीग प्रत्येक आदि सभी कुछ सुन्दर है। श्रीकृष्ण के ऐसे रूप सौन्दर्य का कौन प्रकार के वेद पुराणों में भी निरूपण हुआ है। श्रीकृष्ण का यह नर रूप सौन्दर्य ब्रह्म का ही स्वरूप है।

श्रीकृष्णके रूप सौन्दर्य का ऐसा मार्मिक एवं उत्कृष्ट

वर्णन परमानन्द सागर के उक्त पद में हुआ है वैसे हिन्दी साहित्य जगत् में अन्यत्र मिलना कठिन है।

कवि ने श्रीकृष्ण का रूप सौन्दर्य वर्णन  
दुल्हे के रूप में किस प्रकार किया है, जिम्न पद में द्रष्टव्य है :

सोहे सोस मुहावनों दिन दुल्हे तरे ।  
मनि मोतिन की सेहरा सोहे बसियो मन मेरे ॥  
मुक्त पुन्यो की चन्दा है मुक्ताएल तारे ।  
उनके नयन च्कोर है सब देखन हारे ॥ १

०

०

कवि ने कृष्ण सौन्दर्य की भाँति भाँति से व्यञ्जना की है।

श्रीकृष्ण सौन्दर्य की भाँति कवि ने "राधा" के सौन्दर्य वर्णन में भी अपनी कुशल काव्य कला का परिचय दिया है। का-

धनि यह राधिका के चरन ।  
हैं सुभग सीतल बति सुकोमल कमल के से चरन ॥ २

०

०

राधा वन्दना की प्रस्तुत पंक्तियों में राधा के चरणों के विषय में कवि- उक्तियाँ सौन्दर्य की सजीवता की व्यक्त करती हैं।

परमानन्द सागर में मानवीय वीर मानवैतर

सौन्दर्य निरूपण का समन्वित रूप निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा द्रष्टव्य है :

सौभाग्य सिन्धु न जगत रही री ।  
 नंद भवन परि उपट सखी री ब्रज की वीथि फिर  
 बही री ।  
 देखन बाज गई हुती सखी केन गीत न भिन्न रही री ।  
 कहा कहि कहीं जतु सखी री कहत न मुत सखिहु न  
 लहोरी ॥ १

श्रीकृष्ण के जन्म के समय ऐसा प्रतीत हो रहा है कि नन्द भवन के सौन्दर्य के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी सौन्दर्य रहा ही नहीं है। इस सौन्दर्य-सागर की इतनी लक्ष्मिता होगयी है कि उम्ह उम्ह कर ब्रज की गलियों तक को प्रभावित कर दिया है। 'गुरु सखि हुत लहो री' में मानवीय सौन्दर्य है। अतः प्रस्तुत रचना में मानवीय तथा मानवैतर दोनों का समन्वित रूप दर्शनीय है।

सौख्य नव कुंज इवि मारी ।  
 जम्बुत रूप समात जो लिपटी, कनक बेलि सुकमारी ।  
 बदन सरोज हलहल लोचन निरस्त इवि सुकमारी ।  
 परमानन्द प्रभु मा मधुप हैं वृणभानु सुता सुलवारी ॥ २

प्रस्तुत रचना में मानवीय तथा मानवैतर

१- परमानन्द सागर पृष्ठ ८

२- " ४१२

सौन्दर्य की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति हुई है। श्रीकृष्ण समाप्त वृत्ता के समान है जिस पर स्वर्गिक वेलि के समान राधा के संयोग का आयोजन हुआ है। राधा का मुकुलित जीवन कृष्ण का पुरुषात्त्व मधुम और फुलवारी जैसे सुन्दर उपमानों के प्रयोग के दोनों का सौन्दर्य वर्णन दर्शनीय है।

बादल मल जले हैं पानी ।

श्याम घटा झूँ और हैं आवत वैति सबै रति माने ।

दादुर पीर कोकिला कलख करत कोलाहल मारी ।

हन्ड धनुष बग पाँति श्याम श्वि लागत है मुन्कारी ॥

कदम वृत्ता कलख श्याम घन सला मँडतो रंग ।

वाजत केन लल लल्लुत हुआ पुर गरजत गगन मृदंग ॥

रितु बाँधे मन भारी सबै प्रिय कहत केति बति मारी ।

निरिखार को या श्वि ऊपर परमानन्द बलिकारी ॥९

कवि ने 'श्याम घटा के पद' में वर्णा

श्रु का समग्र विषय उपस्थित कर दिया है। वर्णा श्रु में काले काले बादल पानी भरे हुए उड़ रहे हैं। चारों ओर काली काली घटारें छाई हुई हैं जो सबके हृदय में प्रेम उद्दीप्त कर रही हैं। चारों ओर मँदक, पीर, पपीहा, कोकिल का मधुर राग सुनायी पड़ रहा है। सबकुछ वाकाज में हन्ड धनुष की शीशा, श्यामल घटा के बीच उड़ते हुए धूल रंग के बगुलों की पैयित्तों का सौन्दर्य दिखाई दे रहा है। ऐसे रंगीन वातावरण में अपनी सलाखों के साथ लल्लुतमयी मुरली वादन करती हुए कृष्ण ऊपर के मृदंग के समान गरजन करती बादल सबके हृदय को आनन्दित कर रहे हैं। प्रस्तुत रचना में मानवीय

और मानवैतर सौन्दर्य को मिलित रूप से व्यञ्जना हुई है।

परमानन्दसागर में मानवैतर सौन्दर्य निम्नोक्त  
निम्नोक्त पंक्तियों में व्यञ्जित है :

वति मंजुल कल प्रवाह मनीषर सुत अवगाह्य राक्षत वति  
तरणि नैदिनी ।  
स्याम वरुण भस्मकल रूप लोल लहर वर क्षुप सेवित सेतत  
मनीष वायु मंदिनी ॥  
क्षुद क्षुण्ण वन विकार मंदिन सुवास कूजत वति हंस  
कोक मधुर मंदिनी ॥

प्रफुल्लित अरविंद पुंज कोकिल कल सार गुंज गावत ।  
वति मंजु पुंज विबुध नैदिनी ॥ १

उक्त यमुना के सौन्दर्य वर्णन में कवि ने  
अनेकों उपमानों का आश्रय किया है। यमुना के पवित्र जल की महानता  
के साथ साथ वन सौन्दर्य तिलि हृद कमल तथा उनके ऊपर प्रमरी की गुंजन  
वंदना, हंस तथा कोयलों का मधुर राग आदि की भी सुन्दर व्यञ्जना की  
गयी है। कवि ने अपने इस वर्णन में यमुना के लौकिक तथा अलौकिक दोनों  
पक्षों की सुन्दर विवेचना की है।

‘मन्दिर की लीला’ के एक पद में  
मानवैतर सौन्दर्य की श्रुति देली योग्य है :

वने माध्री केमहल ।  
जेठ मास वति जुहात माघ मास कल ॥



दूरि भये देखित बाहर के ये फल ।

बीच बीच हरित ख्याम जमुना के ये वल्ल ।।

ब्रजपति के कहा अनुप यह बात सहल ।

परमानन्ददास तहाँ करत फिरत टल ।। १

प्रस्तुत पद में शीघ्र और जलद मनु में मन्दिरों का सौन्दर्य निरूपण हुआ है। दूर से इन मन्दिरों के दृश्य बावलों के देर से दिखायो देते हैं। मन्दिरों के बीच में ख्यामल जलवाली यमुना के प्रवाहित होने से इनका सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है। इस प्रकार के सौन्दर्य निरूपण में कवि की सौन्दर्यानुभूति साकार हो उठी है।

परमानन्द सागर में सौन्दर्य भावना के लौकिक बलौकिक दोनों पक्षों की अभिव्यक्ति दर्शनीय है। लौकिक दृष्टि से लीलाली में नग्न वासना की भाँसक मिल सकती है, परन्तु पर्यादा का वह अतिक्रमण व्याध्यात्मिक दृष्टि से मानव की भक्ति के पथ पर चलने की प्रेरणा देता है। इस प्रकार सौन्दर्यानुभूति मानव कोभक्ति का गीतक है। कवि की सौन्दर्य-भावना आत्म केन्द्रित सन्ध्या की पराकाष्ठा तक पहुँच गयी है। उनको सौन्दर्य भावना नैसर्गिक और स्वच्छन्द है। उसमें कृष्ण के लौकिक और बलौकिक स्वरूप के दर्शन होते हैं, राधा गोपियों में सौन्दर्य दर्शन की जो लालसा सदैव बनी रहती है, वह संयोग की नहीं साहचर्य की है। बार बार दर्शन की व्याकुलता सन्धी सौन्दर्यानुभूति की परिचायक है। अनुभूति की वह चोखता सौन्दर्य को अनन्तता का बोध कराती है। कवि की कल्पना के माध्यम से सौन्दर्यानुभूति अत्यन्त सजीव हो उठी है।

## बिम्ब : शास्त्रीय विवेचन

### बिम्ब का अर्थ

हिन्दी का 'बिम्ब' वस्तुतः अंग्रेजी के 'लेंस' का पर्यायवाची है। लेंस से मानसिक प्रतिकृति, मानस प्रत्यक्ष तथा किसी वस्तु की सादृश्यता आदि अर्थ व्यक्त होते हैं। संस्कृत के आचार्यों ने बिम्ब शब्द का अर्थ छाया, प्रतिच्छाया माना है।

मनोविज्ञान के परिप्रिय में सी० डब्ल्यू के कुशार 'बिम्ब' से सूक्ष्म स्मृतियाँ हैं जो मूल प्रेरक की अनुपस्थिति में किसी पूर्व प्रत्यक्ष को पूर्णतः अथवा स्रष्टुः उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार मानस चित्र या प्रतिमा प्रत्यक्षानुभव की छाया मान है, जो यथार्थ के अनु-<sup>१</sup> रूप होती-हुँ भी यथार्थ नहीं हैं।

साहित्य के अन्तर्गत बिम्ब मनोवैज्ञानिक बिम्ब से भिन्न अर्थ में प्रयोग किया जाता है। पार्श्व-काव्यशास्त्र के अन्तर्गत 'परिच्छिन्न' में लॉगिनुस ने बिम्ब को कल्पना चित्र माना है। बिम्ब से उनका अभिप्राय यह है 'जो कृक हम वर्णन कर रहे हैं, उसे साक्षात् देख रहे हैं, और अपने धोलाओं के आगे भी प्रत्यक्ष कर रहे हैं।'<sup>२</sup>

आलोचक सी० डी० लेविंस का कथन , "

१- सहाय्यलीपीडिया ब्रिटानिका , वॉल्यूम १२ पृ० १०३

२- काव्य में उदात्त रस- डा० नगेन्द्र पृ० ६६

कवि का विम्ब विधान न्यूनाधिक रूप में एक ऐन्द्रिक शब्द चित्र है। वह एक सीमा तक जीवमयसूक्त होता है, तथा संदर्भतः किसी न किसी मानवीय जीवन से आम्सुत रहता है। यह किसी काव्यात्मक जीवन से अथवा भाव से भी परिपूर्ण रहता है एवं उसे पाठक तक संप्रेषित करता है।<sup>१</sup>

इस कथन में जीवमयसूक्त से अभिप्राय सभी सादृश्य विधायक साधनों से है। रूपक, उपमा, मानवीकरण, विशेषण - विपर्यय, उल्लङ्घना, अन्योक्ति रूपक, कल्पना दृश्य, स्वप्न, प्रतीक, कल्प-कथा ( मिथ ) मुहावरे, लोकोक्ति चिह्न आदि सभी साम्य विधायक तत्त्व विम्ब में कृतमुक्त किया जा सकते हैं। रागात्मक अवस्थिति के समय कवि की अमूर्त संज्ञानुभूतियाँ विम्बों के द्वारा साकार होकर दृष्टिगोचर हो जाती हैं।

डा० नगेन्द्र विम्ब को एक प्रकार का चित्र मानते हैं, जो किसी पदार्थ के साथ विभिन्न इन्द्रियों के सम्पर्क से प्रमाता के चित्र में उद्बुद्ध हो जाता है।<sup>२</sup>

विद्वानों के उपर्युक्त कथनों से निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जब विम्ब काव्य में प्रयुक्त होता है, तो वह चित्र है, दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि कवि की अनुभूतियाँ, मानस, शक्तियाँ, भावों आदि का इन्द्रिय ग्राह्य रूप लब्ध करने वाला वह एक तत्त्व भी है, जो वस्तु विशेष के सन्दर्भ में सादृश्य विधायिनी कार्यांगी प्रतिभा के संयोग से उद्बुद्ध होता है। विद्वानों ने विम्ब विधान की रचना के मूल तत्त्व निर्धारित

१- द पौडटिक इमिज- पृ० २२

२- काव्य विम्ब - डा० नगेन्द्र पृ० ५

किये हैं, जो निम्नीयत हैं :

- १- अनुसृति
- २- भाव
- ३- आवेग
- ४- ऐन्द्रियकता

उपर्युक्त चारों तत्त्वों को यौगदान से बिम्ब का गठन या निर्माण होता है।

### अनुसृति

कवि के सौन्दर्य चेतना की अभिव्यक्ति उसके सांसारिक अनुभवों पर निर्भर करती है। ये अनुभव लौकिक ही वथवा अलौकिक पार्थिव ही वथवा दिव्य उसके काव्य के विषय बन जाते हैं। कुमारी रविध रिक्ट के अनुसार, 'बिम्ब विधान अभिव्यक्ति की एक, प्रणाली है, जिसमें अनुसृतियों का चिह्न मानसिक दिग्ग में किया जाता है।<sup>१</sup> कुमारी रमण के अनुसार प्रत्येक कवि के पास बिम्बों की एक झुल्ला होती है।<sup>२</sup> यह बिम्ब स्मृति में बागल अनुसृतियों हैं। बिम्बों का सम्बन्ध हमारे पूर्वानुभवों से होता है। इनका निर्माण वास्तविक और काल्पनिक दोनों प्रकार की अनुसृतियों से होता है। बिम्बों के सृजन में वैयक्तिक रुचि का भी महत्व होता है।

### भाव

डा० गैन्ड्र ने भाव के विषय में लिखा है,

१- न्यू मोड ऑफ द स्टडी ऑफ लिटरेचर पृ० २७

२- सैक्सपीयरर्स एंजरी एण्ड व्हाट स्ट टेलस - पृ० १३

“ काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कल्पना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानव हवि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है। रिचर्ड्स के अनुसार- बिम्ब का महत्त्व ही विचार और भावना को प्रभावित करने में है।

### आवेग

साहित्यिक तथा ऐतिहासिक विवरणों के बीच आवेग ही व्यावर्तक तत्त्व है। आवेग के अभाव के कारण इतिहास में एक प्रकार की तटस्थता दिखाई देती है। भावावेश की स्थिति में आकर बिम्ब काव्य के लिए उपयोगी होते हैं।

### रेन्द्रियता

सम्पूर्ण बिम्ब विन्यास रेन्द्रिक आस्वाद से सम्बद्ध होता है। रेन्द्रियमयता के कारण ही बिम्ब काव्य में सामान्य वर्णन से विशिष्ट रूप में प्रयुक्त होता है।

अतः काव्य में बिम्ब चतुःश्रवणीन्द्रियाँ, रसना, प्राणेन्द्रियाँ एवं स्पर्श के माध्यम से रेन्द्रिय अनुभूतियों की व्यञ्जना है। यही कारण है कि बिम्ब विधान काव्य में प्रत्येक प्रकार के संवेदनों की स्फूर्ण करने में समर्थ होता है।

### बिम्बों का वर्गीकरण

डा० नौमन्ड के अनुसार , बिम्ब को पाँच

१- काव्य बिम्ब - पृ० ५

२- रिचर्ड्स के आलोचना विद्वान्त - सम्प्रनाथ भाग पृ० ७९

वर्गों में विभाजित किया है : प्रथम वर्ग- ऐन्द्रियता के आधार पर जिसमें दृश्य, श्रव्य, स्पर्श, प्रातः्य और रस्य बिम्ब हैं। सर्वकल्पना के आधार स्मृततथा कल्पित बिम्ब हैं। इन्हीं के आधार पर लक्षित तथा अलक्षित बिम्ब हैं। प्रत्येक अनुभूति के आधार पर सरल, म्लि, जटिल तथा समाकलित बिम्बों को योजना की है। उन्होंने कुछ लघुलिखित बिम्ब भी स्वीकार किये हैं। इनके अतिरिक्त छटना तथा प्रकरण बिम्ब भी स्वीकार किये हैं। बिम्बों का यह विभाजन उचिततम रूप में ही रह गया है। जैकॉ बिम्बों का ज्ञान समावेश न होने के कारण यह विभाजन अपूर्ण ही है।

#### राजिन स्कैल्टन का वर्गीकरण -

१- साधारण बिम्ब २- अमूर्त विधान,  
३- तत्प्राण बिम्ब ४- अस्पष्ट बिम्ब ५- निष्काम बिम्ब ६- मिश्रित बिम्ब ७- संश्लिष्ट बिम्ब ८- मिश्रित निष्काम बिम्ब ९- संश्लिष्ट निष्काम बिम्ब १०- निष्काम संश्लिष्ट एवं मिश्रित निष्काम बिम्ब<sup>१</sup>।

राजिन का यह विभाजन अस्पष्ट है तथा ज्ञान में अन्तरावलम्बन है।

बिम्बों का व्यापक तथा पूर्ण वर्गीकरण निम्नलिखित है :

१- वायु २- आवण ३- प्राणापरक

१- काव्य बिम्ब

२- राजिन स्कैल्टन - द पोइटिक फ़ैर्न पृ० ६०-६१

४- स्पर्शपरक ५- वात्वादपरक ६- सहस्रविदनात्मक ७- गत्वर ८- स्थिर  
 ९- वेगीदमेदक १०- शब्द बिम्ब ११- वर्ण बिम्ब १२- समानुधुतिक  
 १३- संश्लिष्ट १४- एकल १५- सामासिक १६- प्रसृत १७- प्रस्तुत  
 १८- वप्रस्तुत १९- जैव तथा २०- वादि बिम्ब ।

बिम्ब निर्माण के साधनों में साम्यावित  
 अलंकारों- उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, दृष्टान्त, मानवीकरण,  
 अन्योक्ति, सर्व लक्षणा, व्यंजना, उपलक्षणा विशेषण विपर्यय, लोको-  
 वित, मुहावरे, विवरण, रूपकथा, प्रतीक वादि का विशेष योगदान  
 रहता है।

### परमानन्द सागर में बिम्ब-विधान

बिम्ब के संक्षिप्त शास्त्रीय विवेचन के पश्चात्  
 परमानन्दसागर में बिम्बों की व्यवस्थिति निम्नोक्त पदों द्वारा द्रष्टव्य है :

श्रीदुत कान्ध कमल जगिन ।

निज प्रतिबिम्ब बिलोकि किलकि धावत फरस की परकावन ।

फरस धावत, द्रुमिती होत तब जावत उसटि लाल तहँ हावन ।

परमानन्द प्रभु की यह लीला निरखत जलमति हँसि मुखकावन ।।।

प्रस्तुत रचना के अन्तर्गत श्रीकृष्ण की बाल  
 श्रीदुत के बिम्ब की वाभा दर्शनीय है। स्वर्णित जगिन में घुटनों के बल चलकर

हँसते किलकिले श्रीकृष्ण अपनी परछायाँ को पकड़ने की चेष्टा कर रहे हैं।  
अपनी विम्बों का स्पर्श करने के लिए कृष्ण के गतिशील रूप में गत्वर लीर  
स्पर्श विम्ब का सामूहिक रूप कनक अंगन द्वारा व्यंजित रूपक वर्तकार की  
भाव भूमि में वर्णित है :

बाल विनोद लीर जिय पावत ।

मुख प्रतिविम्ब फरिषे को हरि हलचि छुटहन

धावत ॥

कमल में न मालन के कात करि करि सैन बनावत ।

सबद जोरि बोल्यो चाहत मुख प्रगट बदन नहिं आवत ॥

कोटि ब्रजलस लख को महिमा सिधुता माहि दुरावत ।

परमानन्द स्वामी मनमोहन जसुमति प्रीति बढ़ावत ॥१॥

उक्त पद की भाँति ही प्रस्तुत पद में श्री  
कृष्ण की बाल विनोद लीला का वर्णन है। कृष्ण के मणिमय अंगन  
( जो यहाँ वस्तुतः है ) में छुटनों के बल चलने से उनके जो विम्ब बनते हैं,  
उन्हीं से पकड़ते फिरते हैं, इसी प्रकार अन्य बाल चेष्टाओं के विम्ब भी  
कवि ने प्रस्तुत किये हैं। मातृ-सुदय में सहज वास्तव्य के कारण विम्ब में  
आनन्दित होने का भाव व्यक्त हुआ है।

उक्त प्रात मातजसोदा मंगल भोग दैत दीउ कौरा ।

मालन मिश्री मलाईं दूध भरे दीउ कनक कटौरा ॥

कल्लू सात कल्लू मुख लपटावत दैत दुराये मिति कस्त निहौरा ।

परमानन्द प्रभु भावकि दृग भरत सात भुज करत कलौला ॥ २



प्रस्तुत रचना में कवि ने श्रीकृष्ण की माला लीला का मनोहारी बिम्ब उपस्थित किया है, साथ ही माता यशोदा के हृदय में उमड़ते हुए वात्सल्य भाव का बिम्ब 'फवकि वृग भरत लाल' शब्दावली द्वारा वैकित किया है।

बानन्द मगन रहत प्रीतम रंग बीस न जानी शरी ।  
परमानन्द सुधाकर हरि मुख पीषत हूँ न ब्यासी ॥ १

उक्त पंक्तियों में राधा, कृष्ण के युगल चित्र में कवि ने 'सुधाकर हरि मुख' शब्दों द्वारा कृष्ण-सौन्दर्य में बिम्ब उपस्थित किया है। कृष्ण का यह सौन्दर्य असाधारण सर्वत्र वर्गीक है, जिसके सतत दर्शन से राधा की कभी भी तृप्ति नहीं होती है।

माहे री कमल नैन श्याम सुन्दर भूतत है फलना ।

०

०

लाल बीगूठा गहि कमल पानि भैलत मुख माहि ।

अपनी प्रतिबिम्ब देखि पुनि पुनि मुसिकाहं ॥ २

उक्त पंक्तियों में कवि ने श्रीकृष्ण के शिशु काल में पालने में भूतते समय की भाव पैगिमाओं को बिम्बित किया है, जिनमें उनके ही द्वारा अपने बीगूठे को मुख में देना, अपनी प्रतिबिम्ब को देखकर के मुस्कराना आदि शिष्यीय मनोभावों का बिम्बितन हुआ है। कवि के इस बिम्ब - विधान में वाचीपान्त बहुत दर्शनीय है।

सुनि राधा एक बात बली ।

तु जिन डरै तेन बंधियारी मेरि पछिवाउ बली ॥

तहाँ ते जाऊँ मदन मोहन पे मे बैली एक बैक गली ॥

सपन निर्झुज कुसुमनि रुचि भूतल बाझी बिटप तली ॥

हरि की कृपा ही मोहि मरीसी प्रेम कतुर चित करत

बली ।

परमानन्द स्वामी की मिलिकै मित्र उदै जैसे कमल कली ॥१॥

उक्त रचना में कवि ने कृष्ण अभिसार की योजना की राधा की सखी के माध्यम से प्रस्तुत किया है। पद की प्रथम पंक्ति की शब्दावली 'राधा' और उसकी सखी (दोनों) की पारस्परिक वार्ता बिम्ब उपस्थित कर देती है। सखी द्वारा राधा की प्रेम व्यापार की युक्ति सुनाने के कारण शब्द योजना में आवण बिम्ब की प्रतीति होती है। तृतीय पंक्ति टढ़ी मढ़ी गली के बिम्ब का गीतन करती है। चतुर्थ पंक्ति में 'सपन निर्झुज तथा सुष्पी से रचित भूतल' की सुन्दरता में बिम्ब दर्शनीय है। इसी प्रकार 'मित्र उदै जैसे कमल कली' शब्दावली उपमायुक्त बिम्ब प्रस्तुत करती है।

कवि के इस प्रकार के सजीव वर्णन में उसकी महान् कल्पना एवं उत्कृष्ट बिम्बों के वर्णन होते हैं :

हालरी हलरावै माता ।

बलि बलि जाऊँ पीस सुल दाता ।

० ०

बार बार सुल कमल निहारे ॥ २

यहीदा शिशु कृष्ण को पालने में भुलाती  
हुई उनकी सुनमा में वात्स्य विस्मृत हो गयी हैं। सब वात्सल्य भाव के  
कारण चाक्षुष बिम्ब में आनन्दित होने का भाव व्यक्त हुआ है।

परमानन्द सागर के उपर्युक्त बिम्बों के  
उदाहरणों के अतिरिक्त उसमें औरों प्रकरण ऐसे हैं जिनमें कवि की बिम्ब  
योजना का उत्कृष्ट रूप देखा जा सकता है। इस प्रकार के प्रकरणों में गंगा  
यमुना की स्तुति के पद बाल लीला के पद, पत्ता के पद, माता की अभि-  
लाषा आदि के पद विशेष उल्लेखनीय हैं।

### परमानन्द सागर में वाध्यात्मिकता

मधितकाल पुनर्जागरण का युग था जिसमें सामाजिक मान्यताओं तथा रुढ़ियों के बन्धनों में मुक्त होकर नवीन वाध्यात्मिक सांस्कृतिक चेतना के विकास का प्रयास किया गया। इस स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा में नवीन सौन्दर्य बोध का उन्मेष हुआ जो अन्तर्मुखी वाध्यात्मिक भावना के संपर्क से कहीं कहीं उदात्त के धरातल पर पहुँच गया। यह उदात्तता लौकिक नहीं, वाध्यात्मिक उदात्तता थी। मधितकाल आत्म प्रेरणा का फल है जिसमें सत्, जित् और ज्ञानन्द की प्रतिस्थापना का प्रयत्न हुआ।

परमानन्द सागर की रचनाओं का अध्ययन करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि परमानन्ददास जोकेवल मधितपरक एवं शृंगारिक भावनाओं के ही कवि नहीं हैं, अपितु वह मानव जीवन के चिरन्तन सत्य को स्पर्श करने वाली वाध्यात्मिकवादी चिन्तनधारा के भी कवि हैं। उनको वाध्यात्मिक विचारणा एवं चिन्तनधारा का एक बहुत बड़ा वैशेष्य है। उनके प्रज्जुमि के प्रति आस्था, प्रज्जवासियों का माहत्म्य, विनय, माहात्म्य, शरणागति तथा गंगा यमुना आदि के पदों में मिलता है। इन पदों में मधित, वाध्यात्मिक एवं दार्शनिक भावनाओं का जो विमेलन हुआ है, वह मानव को भौतिकवाद के झूठे लोभलेपन से छटाकर जीवन के वास्तविक परमानन्द ( मोक्षा ) के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है। कवि की इस वाध्यात्मिक चेतना की इस व्यावहारिकता को उनकी रचना की सर्वोच्च विशेषता कह सकते हैं, क्योंकि किसी भी कवि कृति की वैशेष्यता उसमें प्र-

चित वादार्थान्मुखी भावना में ही मानी जाती है, जो कि मानव-जीवन का पथ प्रदर्शन करती है। कवि के इस प्रकार के चिन्तन में कवि का तत्त्व स्पष्टतः 'तुम तजि कौन नृपति पै बाझ' 'कैसी उचित धारा पूर्ण' 'वात्म-समर्पण' का रहा है, जो कि मानव-जीवन का परम आनन्द का तत्त्व है। कवि की यह चिन्तनधारा गूर की इस उक्ति 'मेरी मन कत कहीं सुल पावै' से साम्य भाव रखता है। मीराबाई की इस उक्ति 'मेरी तो गिरिधर गोपाल दूसरी न कोई' में भी वही भावना का प्रतिपादन हुआ है। इस प्रकार परम आनन्द तक पहुँचने के मार्ग में मानव-मन में जो विकार बाधक होते हैं, उनका पूर्ण रूप से बहिष्कार किया है।

ब्रह्म, जीव एवं माया से सम्बन्ध रखने वाली विनाशधारा में परमानन्ददास जी ब्रह्म को सदा की ही सर्वोच्च माना है। उनके इस ब्रह्म का स्वरूप सत्य, चिह्नित, सर्वव्यापक, सर्वत्र एवं अविनाशी है। वह सर्वशक्तिमान तथा निर्गुण, सगुण रूपों में व्याप्त है, जीवात्मा उसी का क्षेत्र भाग है। जीव इस संसार में जन्म लेकर काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह वृष्णा आदि विकारों में कैदकर उस परम ब्रह्म की भूल जाता है, उसके चिन्तन ध्यान तथा गुरु की कृपा से ही जीव का उद्धार हो सकता है। यही कारण है कि परमानन्द दास जी ने जीवत्लभासारं जी (गुरु) की स्थल स्थल पर प्रभु महाप्रभु कहा है। या-  
 प्रातः समै उठि करिह श्री लक्षण सुत गान ।  
 प्रकट भये श्री बल्लभ प्रभु दैत भगति की दान ॥  
 प्राी विट्ठलेश महाप्रभु रूप के निधान ।

०

०

परमानन्द निरख लीला थीं सुर विमान ॥ १

परमानन्दसागर की इस प्रकार की भक्ति की उर्वरक भाव भूमि में ही हमें आध्यात्मिक विचारणा के दर्शन होते हैं।

### परमानन्दसागर में आध्यात्मिक विवेचन

ब्रजवासी जाने इस रीति ।

जाके हृदय और कहु नाहीं नंद सुवन पद प्रीति ॥

करत पहल मैं टहत निरंतर जाम जाम सब दीति ।

सर्वभाव आत्मा निवेदित रहे त्रिगुणातीति ।

इन्की गति और नहीं जानत बीच जवनिका भीति ।

कहुत लहत दास परमानन्द गुरु प्रसाद पसीति ॥ १

ब्रजवासियों के माहात्म्य के इस पद में

ब्रजवासियों के हृदय में पूर्ण भक्ति की विभोरता के दर्शन होते हैं। पद की द्वितीय पंक्ति उनकी इस भक्ति भावना का रहस्योद्घाटन करती है, इसके साथ साथ 'जाके हृदय और कहु नाहीं' शब्दावली ईश्वर और जोव के प्रति तादात्म्यकी परिचायक भी है। उनकी भक्ति की तन्मयता में सर्व भाव समर्पण एवं आत्म निवेदन ही दिखायी देता है। उनका यह रूप त्रिगुणातीत है। ब्रजवासियों के इन्हीं भावों में आध्यात्मिकता के दर्शन होते हैं :

जहिं जहिं चरन काल माधीके तहों तहीं फन मोर ।

जे फन कमल फिरत वृन्दावन गोधन संग किसीर ।

चिन्तन करी ज्योदा नन्दन मुदित सभि बह मोर ॥ १

कवि ने पद की प्रथम पंक्ति में श्रीकृष्ण के चरण कमलों की गतिशीलता के साथ साथ मन के संवरण की जी बात कही है, इसमें उसकी वात्मीयता के दर्शन होते हैं। कवि की यह वात्मीयता मानव मन की अहर्निश श्रीकृष्ण भगवान् के प्रति चिन्तन की प्रेरणा देती है। यह वह प्रेरणा है जो मनुष्य को मोक्ष प्रदान करती है, कवि के इसी तथ्य में उसका आध्यात्मिक चिन्तन परिलक्षित होता है।

श्री बल्लभ रतन जतन करि पायी ( बरी में )

बह्यो जात मोहि राखि लियी है पिय संग हाथ गहायी ॥

दुस्संग सब दूरि किएैं चरन सीस नवायी ।

परमानन्द दास को ठाकुर नयन प्रगट दिखायी ॥ २

प्रथम पंक्ति में 'गुरु' से साक्षात्कार प्रदर्शित करी हुए द्वितीय पंक्ति के अन्तर्गत में उनके द्वारा स्वयं को कुमार्ग से हटायी जानेका भाव व्यक्त किया है। इसी पंक्ति के उत्तरार्द्ध में प्रयुक्त शब्दावली 'पिय के संग हाथ गहायी' में गुरु के द्वारा भक्ति की प्रेरणा का सहस्रानुपादन किया है। इसी प्रेरणा से भक्ति पथ पर चलता हुआ कवि अपनी इष्ट देव ( श्रीकृष्ण ) से साक्षात्कार कर सका है। आत्मा का परमात्मा से यह मिलन विन्दु ही कवि की आध्यात्मिक चिन्तन धारा का अवसन्त प्रमाण है।

कवि अपनी इस आध्यात्मिक चिन्तनधारा

में माया, वृष्णा, कुसंगति आदि का बहिष्कार करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण के स्मरण, गुण गान करते रहने की प्रेरणा देते हैं। उनके इन विचारों की उद्घोषणा निम्नोक्त पद में व्यक्त है :

गहं न बास पाप्मि जैसे ।

तजि सेवा वैकुंठ नाथ की नीच लोक के संग रहे है ॥

जिन की भुल देखें दुख लागे तिनहीं राजाराम कहै है ।

फिर मंद मूढ़ अधम अभिमानी बासा लागि दुर्वचन सहै है

नास्ति कृपा स्यामसुन्दर की जपे लागे जात बहै है ।

परमानन्द प्रभु सब सुख दाता गुन विनार नहीं भैम गहै है ॥१॥

उक्त पद में कवि ने मानव के दुख के मूल कारणों पर प्रकाश डाला है। जीवन में सत्य क्या है ? और उसके क्या परिणाम होते हैं आदि । इसी प्रकार के जीवनीपर्ययी तथ्यों का उद्घाटन किया है। कवि की इस प्रकार की जीवन दृष्टि से उसकी दार्शनिक विचार-धारा का भी परिचय मिलता है।

तुम तजि कौन नृपति पै जाऊँ ।

जाके द्वारा पैठि धिर नाऊँ परहय कहाँ विकारूँ ॥

०

०

तुम ते को दाता को समर्थ जाके दिशे कषाऊँ ।

परमानन्द हरिनागर तजि कै नदी सरन कत जाऊँ ॥ २

प्रस्तुत रचना में आधीपान्त पूर्ण आत्म समर्पण का भाव व्यक्त हुआ है जो कि कवि की आध्यात्मिक चिन्तन धारा का ही प्रतीक है।



### परमानन्द सागर में दार्शनिकता

कृष्ण काव्य की सामग्री की बाधा रहित संक्षिप्त दार्शनिक विचारधारा के विवेचन के पश्चात् हम परमानन्द सागर का दार्शनिक पक्ष प्रस्तुत करेंगे। विषयवस्तु के बाधार पर यदि हम परमानन्द सागर का अध्ययन करें तो हमें प्रतिपाद के प्रसूतः तीन रूप देखने को मिलते हैं :

१- अनुभूत्यात्मक

(अ) राग प्रधान

(ब) अनुभूतिमूलक -कल्पना प्रधान

२- दार्शनिक ( व्याख्यात्मक )

३- विवरणात्मक

काव्य का अनुभूत्यात्मक रूप दो प्रकार का मिलता है :

१- राग तत्त्व प्रधान

२- अनुभूतिमूलक कल्पना प्रधान

राग तत्त्व प्रधान के अन्तर्गत वे स्थल हैं जिनके अन्तर्गत कवि ने राधा, यशोदा, गोपियाँ के साथ अपनी हृदय का तादात्म्य स्थापित करके उनके हृदय के भावों को व्यक्त की है। हमें कवि ने प्रसूतः दाम्पत्यासक्ति के बाधार पर सयोग वर्णन को अधिक महत्व दिया है। इसके अतिरिक्त वात्सल्यासक्ति को स्थान दिया है। सत्यासक्ति के उदाहरण चित्त भी परमानन्द सागर में मिलते हैं, परन्तु इस क्षेत्र में कृष्ण भक्त कवियों में सुर ने ही सर्वाधिक विवेचन किया

है। दूसरे पक्ष के अन्तर्गत वे स्थल लिये जा सकते हैं, जहाँ गोपियों (बाण्य) का तादात्म्य श्रीकृष्ण तथा उनकी सीतावों (बासन्धन) के साथ कल्पना के द्वारा किया है। कवि की कल्पना प्रधान रचना का उदाहरण हम कल्पना के प्रकरण में प्रस्तुत कर चुके हैं। परन्तु प्रसंगवश एक उदाहरण निम्नलिखित है :

जा दिन कन्हैया मीं तो मैया कहि बोलिगी ।  
ता दिन बति बानन्द गिनीरी माईं रुनक भुनक  
प्रज गलिन मैं डोलिगी ।

परमानन्द प्रभु नवल कुँवर धेरी ग्वालिन फैसंग बन में  
बिलीसिगी ॥ १

कृष्ण के शारीरिक एवं बौद्धिक विकास के प्रति यशोदा का उत्सुकतापूर्ण मातृत्व का कल्पना प्रधान चित्रण है। परमानन्द दास जी का उक्त पद भूसागर जी के निम्नोक्त पद से अत्यन्त साम्य भाव रखता है, जो इस प्रकार है :

जमुमति मन वमिलाण करे ।

श्व धेरी लाल छुटुवन रंगे कब धरती फा दीकधरे ॥ २

इसी प्रकार परमानन्द सागर में जमुमति और कल्पना के भी लीकॉ वर्णन मिले हैं, जो कि इसी प्रसंग ही में हुए की रचना से साम्य रखते हैं। यथा परमानन्द सागर से उद्धृत एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

१- परमानन्द सागर पद के

२- भूसागर, पद ६६४

श्रीरक्त कान्ह कनक बीजन ।

निज प्रतिबिम्ब विली कि बिलकि धावत फहरन की परावित ।

०

०

परमानन्द प्रभु की यह लीला निरस्त बहुमति ईति मुखकावत ॥१॥

### प्रतिपाद्य का दार्शनिक-रूप

परमानन्द सागर के प्रकीर्ण पदों के परिप्रेक्ष्य में ही हमें कवि की आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारधारा के दर्शन होते हैं। परमानन्ददास की रचना में वर्णित यह ऐसे प्रसंग हैं जिनके अन्तर्गत कवि को जीवन दृष्टि जीवन के सात्त्विक एवं वास्तविक पक्ष की ओर केन्द्रित होती दिखायी पड़ती है। कवि की रचना का यह वह पक्ष है जो मानव-कल्याण का पथ प्रकाश करता है। कवि की रचना की कुशलता यह है कि कवि ने राधा कृष्ण एवं गोप गोपियों के माध्यम से ही अपनी इस विशिष्ट प्रतिमा की भागवत के छिद्धान्तों के अन्वय ही मनुष्य जीवन की वास्तविकता ( भगवत प्रेम ) का रहस्योद्घाटन किया है। कवि ने एक दर्शनशास्त्री की भाँति जीवन दृष्टि के क्षेत्र में व्यावितगत रूप से कुछ नहीं लिखा है। परमानन्द सागर के कतिपय प्रसृत उदाहरण निम्न प्रकार से द्रष्टव्य हैं जिनमें कवि की आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारधारा का स्वर मुखरित हुआ है :

मनुज पराये बस पर्यो नैननि के बाले ।

रघाम धाम में सुनि रघुयो पे पर्यो प्रेम के बाले ॥

निरस्त कठिन कहा करो समुझायो नहि माने ।

कमल पैर में पड़ि रघुयो गुररु सुसहि न जाने ॥

सुख उपज्यो बानन्द देखि बसि बदन सुनानी ।

परमानन्द उपज्यो तहाँ फिर तहाँ बनानी ॥ १

उक्त रत्ना में कवि की लाज्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारधारा का विकास मिलता है। कवि ने एक दर्शनशास्त्री की भाँति मानव जीवन की समस्त कमजोरियाँ ( मोह, ममता, अज्ञानता ) का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है। अंतिम पंक्ति में कवि ने जीवन की नश्वरता पर प्रकाश डालते हुए जन्म से मृत्यु पर्यन्त तक की बात को कितने सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। कवि ने मनुष्य की मोह के आवरण में कीचड़ में कमल के समान फँस रहने की बात की है। वह जीवन के वास्तविक मूल ( मोक्ष ) को भूल जाता है। इस तथ्य को कवि ने " सुखहि न जाने " शब्दों द्वारा अभिव्यक्त किया है। उसका जीवात्मा भीतिक दुर्गों को देखकर ईश्वर को भूल जाता है। अन्त में वह जहाँ उत्पन्न होता है वही उसका नाशवान शरीर नष्ट हो जाता है। कवि ने जीवन के सारे रहस्य को छोड़े से ही शब्दों में कितने प्रभावपूर्ण ढंग से व्यक्त किया है। जीवन-दर्शन का इससे निष्पत्तय उदाहरण और क्या हो सकता है ?

यह बालक अवतार पुरुषा है कृष्ण नाम बानन्द लइयो । २

परमानन्ददास जी के उक्त कथन में " कृष्ण " अवतार रूप में व्यक्ति है, जिसके नाम लेने से सुख, बानन्द की प्राप्ति होती है।

मोहन नन्द राय कुमार ।

प्रसिद्ध निरुद्ध नायक भक्त हित अवतार ॥

१- परमानन्द सागर पृष्ठ ४२२

२- " " ५५

दास परमानन्द प्रभु हरि निगम झोलत नेत ॥ १

प्रस्तुत पंक्तियों में भी कवि ने श्रीकृष्ण की मक्त जगती के सितार्य जगतार रूप में पूर्ण ब्रह्म की परिकल्पना की है, जिसका आधार पैद है। श्रीकृष्ण का यह ब्रह्म स्वस्व दर्शनीय एवं वन्दनीय है।

तु मेरी ठाकुर तु मेरी बालक तौहि विस्वमेर राते ॥ २

कवि ने यशोदा के द्वारा कृष्ण की दो रूपों में अभिव्यक्ति की है। पार्थिव, अपार्थिव । पार्थिव रूप में मधुर मानव रूप होता है जिसके लिए कृष्ण का बालक रूप है, अपार्थिव रूप में ब्रह्म रूप है जिसको कवि ने 'ठाकुर' शब्द से अभिव्यक्ति की है।

### निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'परमानन्द सागर' वाध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारधारा से भी वञ्छित नहीं है। कवि ने अपनी इस प्रकार की विचारणा में जीवन के उन प्रमुख चिरन्तन कर्तव्यों पर प्रकाश डाला है, जो कि मानव की कल्याणकारी हो सकते हैं जगत् मनुष्य जीवन का जो परम लक्ष्य हो सकता है। इस परम लक्ष्य की सिद्धि में कवि ने ब्रह्मू मि में प्रसिद्ध गोप गोपियों की धन्यता है और उन्हीं के द्वारा कवि ने भक्ति के मार्ग से लीलावतारी पूर्ण ब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण तथा राधादि की अपनी रत्ना का केन्द्र बिन्दु बनाया है। इसके अतिरिक्त 'गुरु' की पूर्ण ब्रह्म तथा प्रातः स्मरणार्थ कह कर सम्बोधन किया है, जिसकी असीमित कृपा से मनुष्य भव-सागर से पार होता है। परमानन्द सागर के अन्तर्गत वाध्यात्मिक और दार्शनिक विचारधारा की यही महानता है।

परिशिष्ट

प्रधानमन्त्रिणा

पुस्तक

हिन्दी

कृषि

संस्कृत

उपाध्याय, बलदेव	भारतीय दर्शन, शारदा मन्दिर, वाराणसी
चौधरी, सत्यदेव	रुद्रण प्रणीत काव्यालंकार वासुदेव प्रकाशन, मण्डल टाउन, दिल्ली, १९६५
मम्पटाचार्य	काव्यप्रकाश वाराणसी
मिश्र, रामदत्त	काव्यदर्पण, ग्रन्थ माला कार्यालय, पटना
मीतीलाल कारसीदास	भारत का नाट्यशास्त्र, दिल्ली
पाण्डेय, रामेश्वर प्रसाद	कुन्दःशास्त्र श्री इन्द्रप्रस्थ विद्यापीठ, दिल्ली
वात्स्यायन	भारतीय दर्शन, सरस्वती सदन, पल्लूरी
विश्वनाथ	साहित्यदर्पण, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३३
सिंह, राजकिशोर	आचार्य भट्ट जीर काव्य प्रकाश, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, १९७१
शास्त्री, धरानन्द	श्री भट्ट कैदार विरचित वृत्तरत्नाकर की भूमिका जवाहरनगर, दिल्ली, १९७२

### हिन्दी

कुमार विमल	सौन्दर्य शास्त्र के तत्त्व, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६७
गुप्त, गणपति चन्द्र	रस सिद्धान्त का पुनर्विचिन नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९७१
गुप्त, दीन दयालु	वष्टकाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग २, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
कुप्ता, ऊष्मा	हिन्दी के कृष्ण सवितिकालीन साहित्य में संगीत, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
गुलाबराय	सिद्धान्त और नव्यस्य, वागरा, १९५५
गोस्वामी, कृष्णकुमार	काव्यशास्त्र, दिल्ली
चतुर्वेदो, सीताराम	समीक्षाशास्त्र, काशी, सं० २०१०
चीधरी, सत्यदेव	ऊर्लकार रीति और वङ्गीवित्, ऊर्लकार प्रकाशन, दिल्ली, १९७३



चौधरी, सत्यदेव	भारतीय काव्यशास्त्र, कशोक प्रकाशन, दिल्ली
चौधरी, सत्यदेव तथा गुप्त, शान्तिस्वरूप	भारतीय तथा पाश्चात्य काव्य शास्त्र का संक्षिप्त विवेचन, कशोक प्रकाशन, दिल्ली
जैन, निर्मला	रस सिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र : तुलनात्मक विश्लेषण, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
फा, शम्भूनाथ	रिचर्ड्स के आलोचना सिद्धान्त, भारती भवन, पटना
टंडन, मायारानी	अष्टाश्वप काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन , हिन्दो साहित्य मण्डार, लखनऊ
तिवारी, भीलानाथ	भारतीय भाषा विज्ञान की भूमिका, नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
तिवारी, हजारी प्रसाद	काव्यशास्त्र , भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली
नगेन्द्र (डॉ०)	भारतीय काव्यशास्त्र , नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
..	अरुण का काव्यशास्त्र , नैशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

नगेन्द्र ( डा० )	काव्यालंकार सूत्रवृत्ति नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
..	अन्यालोक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
..	काव्य में उदात्त तत्त्व नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
..	काव्य में विम्ब नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, १९६६
पै, सुमित्रानन्दन	पल्लव की भूमिका, प्लाहाबाद, सन् १९५८
पाण्डेय, सुधाकर	काव्य प्रभाकर, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं० २०२८
पाण्डेय, राजकुमार	रामचरित मानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन, अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, १९६३
प्रि, भगीरथ	हिन्दीकाव्यशास्त्र का इतिहास, लखनऊ
..	हिन्दी काव्यशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

- मिश्र, जनार्दन      भारतीय प्रतीक विद्या,  
बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना,  
१९५६
- मिश्रा, सरोजिनी      साहित्यशास्त्र के सिद्धान्त,  
दिल्ली, योगेन एण्ड कम्पनी, १९५६
- रघुवीर (छा०)      शब्द कल्पद्रुम, प्रथम सङ्घ  
दिल्ली
- वर्मा, धीरेन्द्र      हिन्दी साहित्य कोश, भाग २  
ज्ञानमण्डल, वाराणसी
- सिन्हा, सावित्री      ब्रज भाषा के कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यञ्जना  
शिल्प,  
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
- सिंह, केदारनाथ      वाधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान,  
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, १९७३
- शर्मा, हरबंश लाल      भागवत दर्शन,  
भारत प्रकाशन मंदिर, जलौगढ़
- ..      दूर और उनका साहित्य,  
भारत प्रकाशन मंदिर, जलौगढ़  
द्वितीय संस्करण

शर्मा , सुशीला

तुलसी साहित्य में बिम्ब- योजना,  
कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली

शर्मा, कृष्ण कुमार

ध्वनि सिद्धान्त का काव्य शास्त्रीय सौन्दर्य,  
लभितव्यमार्ती प्रकाशन, झांझाबाद,  
१९७५

शुक्ल, रामचन्द्र

काव्य में रसस्यवाद  
नागरी प्रचारिणी सभा , काशी सं० १९८६

शुक्ल, गीर्धन नाथ

परमानन्द सागर(संग्रह )  
भारत प्रकाशन मंदिर, जलौगढ़  
प्रथम संस्करण

ENGLISH

- C.M. Bowra            Romantic Imagination  
Oxford University Press,  
London , 1964.
- Robin, Skelton        The Poetic Pattern,  
Routledge and Kelgan Paul,  
1966.
- Reader & Special Poetic Emotion or passion  
The Poetic Image  
Jonathan Cape , London,  
1965.
- Webster's            New World Dictionary of the  
American Language ,  
The World Publishing Co.  
New York. 1958.